श्रीनवद्वीपधाम–माहात्म्य
(परिक्रमा–खण्ड)
सीमन्तद्वीप
मोदद्रुमद्वीप
जह्नुद्वीप
ऋतुद्वीप
कोलद्वीप
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य

(परिक्रमा-खण्ड)

श्रीश्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर
रचित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीयमठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयचार्य केशरी
नित्यलीला प्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा
अनुवादित एवं सम्पादित

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्रकाशक—

श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज

प्रथम संस्करण— ५००० प्रतियाँ

श्रीगौर जयन्ती

श्रीचैतन्याब्द ५२०

३ मार्च, २००७

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)
०५६५–२५०२३३४

श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ
सेवाकुञ्ज, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५–२४४३२७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकुण्ड रोड
गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०५६५–२८१५६६८

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰बं॰)
०९३३३२२२७७५

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी–३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११–२५५३३५६८

खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
०५६५–२४४३१०१

समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुकी कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म

नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी

प्रेरणासे
यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।
श्रीगुरुपादपद्मकी अपनी ही वस्तु उन्हींके
श्रीकरकमलोंमें समर्पित है।

विषय-सूची

प्रस्तावना

परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी अनुकम्पा और प्रेरणासे उन्हींकी प्रीतिके लिए आज सप्तम गोस्वामी गौर-शक्ति स्वरूप सच्चिदानन्द श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य (परिक्रमा-खण्ड) नामक बँगला ग्रन्थका अभिनव हिन्दी-संस्करण प्रकाशित करते हुए अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ।

श्रीगौर और श्रीकृष्ण अभिन्न तत्त्व हैं, उनमें कोई भी भेद नहीं है। माधुर्यविग्रह श्रीकृष्ण ही साक्षात् औदार्यविग्रह श्रीगौरसुन्दर हैं और औदार्यविग्रह श्रीगौरसुन्दर ही माधुर्यविग्रह श्रीकृष्ण हैं। उसी प्रकार श्रीकृष्णधाम वृन्दावन और श्रीगौरधाम नवद्वीप भी अभिन्न हैं। श्रीनवद्वीपधामको ही गुप्त-वृन्दावन कहा जाता है। अतएव दोनों तत्त्व और दोनों धाम ही नित्य हैं। इनमें प्राकृतिक स्थान-काल-पात्र आदिका कोई विचार नहीं है।

"कृष्णनाम करे अपराधेर विचार।"—अपराधी व्यक्ति करोड़ों-करोड़ों जन्मों तक कृष्णनाम-कीर्त्तन करनेपर भी कृष्णप्रेम प्राप्त नहीं कर सकते हैं; किन्तु "गौर-नित्यानन्देर नाहि ए सब विचार। नाम लैले प्रेम देन, बहे अश्रुधार॥" अर्थात् श्रीगौर-नित्यानन्द प्रभु अपराधोंका विचार नहीं करते, उनका नाम ग्रहण करनेके साथ-ही-साथ हृदयमें प्रेम उदित हो जाता है तथा नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। श्रीगौरहरिकी ही भाँति गौरधाम भी परम उदार और महावदान्य हैं। श्रीगौरहरि और उनके धाम—श्रीनवद्वीपके भजन तथा कृपाके बिना श्रीवृन्दावनके दर्शन और कृपा प्राप्त करना असम्भव है।

श्रीकृष्णधाम वृन्दावन और श्रीगौरधाम नवद्वीप अभिन्न हैं, अतएव श्रीनवद्वीपधाम भी श्रीवृन्दावनकी भाँति सोलह कोसका है। वृन्दावनमें जिस प्रकार श्रीयमुना, श्रीगोवर्धन, श्रीरासस्थली, श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड और विविध उपवन आदि विद्यमान हैं, श्रीनवद्वीपधाममें भी उसी प्रकार उपरोक्त समस्त स्थान गुप्त रूपमें नित्य विराजमान हैं। श्रीगौरसुन्दर

इस धाममें नित्य विहार करते हैं। शुद्ध गौरभक्तोंके आनुगत्यमें नामसङ्कीर्त्तनके माध्यमसे सौभाग्यशाली जीव श्रीमन् महाप्रभु द्वारा की जा रही नित्य-लीलाओंको अनुभव कर सकते हैं।

भक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले साधकोंको नाम-अपराध, सेवा-अपराध, धाम-अपराध आदिका सम्पूर्ण रूपसे त्याग करना चाहिये। जो लोग श्रीधाम दर्शन और परिक्रमा आदिकी आकांक्षासे श्रीधाममें आगमन करते हैं, उन्हें धाम-अपराध करनेसे बचना चाहिये। इसलिए उनकी जानकारीके लिए दस धाम-अपराधोंका निर्देश दिया जा रहा है—(१) श्रीधाम प्रदर्शनकारी श्रीगुरु और साधुकी अवज्ञा करना, (२) श्रीधामको अनित्य समझना, (३) श्रीधामवासी और परिक्रमा करनेवाले भक्तोंके प्रति हिंसा और जातिबुद्धि करना, (४) श्रीधाममें वासकर सांसारिक विषयी कार्योंका अनुष्ठान करना, (५) श्रीधाम-सेवाके छलसे व्यापार और अर्थोपार्जन करना, (६) श्रीधामको जड़बुद्धिसे किसी जड़प्रदेश अथवा अन्य तीर्थस्थलके समान समझना और धामको मापनेकी चेष्टा करना,

(७) श्रीधाममें रहकर पाप करना, (८) श्रीनवद्वीपधाम और श्रीवृन्दावनधाममें भेद देखना, (९) श्रीधामका माहात्म्य वर्णन करनेवाले ग्रन्थोंकी निन्दा करना, (१०) श्रीधाम-माहात्म्यके प्रति अविश्वास करते हुए उसमें अर्थवाद करना और उसे काल्पनिक समझना।

परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्मने जैवधर्म ग्रन्थकी स्वलिखित भूमिकामें उल्लेख किया है कि आधुनिक पाठकोंकी मानसिक अवस्था ऐसी है कि जब तक वे लेखकका परिचय प्राप्त न कर लें, तब तक उनके द्वारा लिखित विषयोंके प्रति उनकी श्रद्धा उदित नहीं होती। इसलिए मैं श्रीगुरुपादपद्मकी बातका स्मरण करके प्रायः सभी ग्रन्थोंके निवेदनमें लेखकके सम्बन्धमें दो-एक बातें अवश्य लिखता हूँ।

ग्रन्थकारका संक्षिप्त जीवन चरित्र

सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका जन्म श्रीमन् महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी आविर्भाव-स्थली योगपीठ मायापुरके समीप 'वीरनगर' नामक गाँवमें

हुआ था। उनकी शिक्षा कोलकाता नगरीमें हुई। वे बड़े ही कुशाग्र (तीव्र) बुद्धिके थे। बचपनसे ही इनमें धार्मिक भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। छात्रावस्थामें ही वे विभिन्न स्कूलों, कॉलेजों तथा अन्य स्थानोंमें आवश्यकतानुसार बँगला अथवा अँग्रेजी भाषामें धर्म-सम्बन्धी प्रतिभाशाली वक्तृता दिया करते थे। विद्या-शिक्षाके उपरान्त वे उड़ीसा प्रदेशमें चले गये तथा वहाँपर डिप्टी मजिस्ट्रेटके रूपमें विशेष राज-कर्मचारी नियुक्त हुए। वहींपर वे राज्य सरकारके द्वारा वहाँके प्रसिद्ध श्रीजगन्नाथ मन्दिरके व्यवस्थापक भी नियुक्त किये गये। उनके समयमें भगवान् श्रीजगन्नाथकी सेवा बड़े ही सुन्दर और सुचारु ढङ्गसे व्यवस्थित हुई थी। उसी समयमें उड़ीसामें एक घने जङ्गलमें वास करनेवाले विष्वकसेन नामक तथाकथित योगीने स्वयंको श्रीकृष्ण कहकर और कहलाकर एक पूर्णिमाकी रातमें रास रचानेकी घोषणा कर दी। उस क्षेत्रके आस-पासकी स्त्रियाँ भी उस रासमें योगदान करनेके लिए बड़ी ही उतावली होने लगीं। ऐसा

देखकर समस्त ग्रामिणोंने राज्य सरकारको अपनी चिन्ता बतलायी। राज्य सरकारने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरको ही जाँच व्यवस्थाके लिए नियुक्त किया। उन्होंने उसे दोषी पाकर दण्डित किया तथा वह कारागृहमें अपने आप अनशनकर मर गया।

वे जहाँ-जहाँ भी गये, वहींपर उन्होंने श्रीमन् महाप्रभुके आचरित और प्रचारित शुद्धभक्ति-धर्मका प्रचार किया। राज्य-कार्यसे अवसर लेनेपर उन्होंने वृन्दावनमें जाकर भजन करनेका संकल्प लिया। श्रीवृन्दावनकी ओर यात्रा करनेपर मार्गमें ही पश्चिम बङ्गालकी सीमाके अन्तर्गत तारकेश्वर नामक स्थानमें परमभक्त महादेवने उन्हें स्वप्न-आदेश दिया—"तुम अभी वृन्दावन जा रहे हो, किन्तु तुम्हें यहाँपर रहकर बहुत-से कार्य करने हैं। अभी तक श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आविर्भाव-स्थली श्रीमायापुर योगपीठका प्रकाश नहीं हुआ। तुम्हें नवद्वीपके नौ द्वीपों और उनकी महिमाको प्रकाशित करना है।" श्रीमहादेवके इस आदेशको पाकर वे वहींसे लौट आये और नवद्वीपके गोद्रुम-कुञ्जमें एक कुटिया बनाकर भजन करने लगे। वहीं रहते

समय उन्होंने श्रीधाम मायापुर योगपीठको प्रकाश किया। श्रीयोगपीठका सन्धान प्राप्तकर उसे किसी श्रेष्ठ वैष्णव आचार्य द्वारा प्रमाणित करनेके लिए उन्होंने व्रजसे वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजीको बुलवाया। उस स्थानपर पहुँचकर एक सौ चौवालीस वर्षकी आयुवाले श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज उद्दण्ड नृत्य करते-करते कहने लगे—"यही मेरे आराध्यतम शचीनन्दन श्रीगौरहरिका जन्मस्थल है।" इस प्रकार उन्होंने श्रीमन् महाप्रभुकी जन्मस्थली योगपीठको प्रकाश किया। तदुपरान्त श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने लोक-समाजमें श्रीगौर-जन्मस्थली योगपीठ मायापुरका प्रचार किया। उन्होंने जगत्को श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीको प्रदान करके एक और भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी इच्छा-पूर्तिके लिए श्रीमन् महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्धभक्ति और नाम-प्रेमका केवल बङ्गाल और भारतमें ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार किया।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस ग्रन्थमें लिखा है—

भक्तगणे आज्ञा दिल चैतन्य-इच्छाय।
नदीया माहात्म्य वर्णि भक्तेर कृपाय॥

जे अवधि श्रीचैतन्य अप्रकट हैल।
धाम-लीला प्रकाशिते भक्ते आज्ञा दिल॥

(श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य १/९, ११)

“श्रीचैतन्य महाप्रभुने स्वयं अप्रकट होनेके बाद अपने भक्तोंको श्रीनवद्वीपधामको जगत्‌में (पुनः) प्रकट करनेके लिए—प्रकाशित करनेके लिए आज्ञा दी थी तथा उन भक्तोंने मुझे श्रीनवद्वीपधामका माहात्म्य प्रकाश करनेके लिए आदेश दिया। भक्तोंके आदेशको श्रीमन् महाप्रभुका ही आदेश मानकर मैं श्रीनवद्वीपधामका माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ।”

विशेषकर श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीकी आज्ञासे ही श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने श्रीनवद्वीप-धामकी महिमाका प्रकाश और प्रचार किया। उन्होंने स्वयं लिखा है—

नित्यानन्द–श्रीजाह्नवा–आदेश पाइया।
वर्णिलाम नवद्वीप अति दीन हइया॥
(श्रीनवद्वीपधाम–माहात्म्य १८/७३)

"दीन–हीन होनेपर भी मैंने श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके आदेशसे ही श्रीनवद्वीपधामका वर्णन किया है।"

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने विभिन्न भाषाओंमें एक सौ से अधिक ग्रन्थोंकी रचना की है। उनके द्वारा रचित प्रधान–प्रधान ग्रन्थ हैं—श्रीभक्तितत्त्वविवेक, श्रीमन् महाप्रभुकी शिक्षा, श्रीचैतन्यशिक्षामृत, श्रीजैव–धर्म, श्रीभजनरहस्य, श्रीनवद्वीपभावतरङ्ग, शरणागति, कल्याण–कल्पतरु, गीतावली, यामुन भावावली, वैष्णव–सिद्धान्त–माला, श्रीनवद्वीपधाम–माहात्म्य, भागवतार्कमरीचिमाला, आम्नाय–सूत्र, कृष्णसंहिता, दत्त–कौस्तुभ, प्रेम–प्रदीप, श्रीहरिनामचिन्तामणि, तत्त्वसूत्र, श्रीचैतन्यचरितामृतका अमृत–प्रवाह भाष्य तथा गीताका रसिक–रञ्जन भाष्य इत्यादि।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका यह मूल ग्रन्थ बँगला भाषामें है। यद्यपि इसके बहुत–से संस्करण

बँगला भाषामें प्रकाशित हो चुके हैं, तथापि हिन्दी भाषामें इस ग्रन्थका यही प्रथम संस्करण है। श्रीमान् अच्युतानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान् कृष्णकान्त ब्रह्मचारी और बेटी मालतीप्रिया दासीने कम्पोजिंग की है। श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी और श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारीने प्रूफ संशोधन किया है। बेटी शान्ति दासीने अक्लान्त परिश्रम द्वारा ले-आउट आदि सेवा कार्य किये हैं। मुख पृष्ठका चित्र बेटी मञ्जरी दासीने तथा डिजाइन श्रीमान् कृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारीने प्रस्तुत किया है। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी और श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इन सबपर प्रचुर कृपा आशीर्वाद करें—उनके श्रीचरणोंमें मेरी यही कातर प्रार्थना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थके पठन-पाठनसे श्रद्धालुजन श्रीनवद्वीप-धामकी आश्चर्यजनक महिमा और शचीनन्दन श्रीगौरहरिको व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णसे अभिन्न जानकर श्रील रूप गोस्वामी द्वारा प्रदर्शित भजन-प्रणालीसे भजन करनेकी प्रेरणा प्राप्त करेंगे। इसके अतिरिक्त वे लोग श्रीमन् महाप्रभु तथा

भजन–सम्बन्धी अनेकानेक नवीन तथ्य भी जान सकेंगे। अलमति विस्तरेण।

श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी
महाराजकी तिरोभाव तिथि
१८ फरवरी २००७ ई.
५२० चैतन्याब्द

श्रीवैष्णव–कृपालेश–प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण
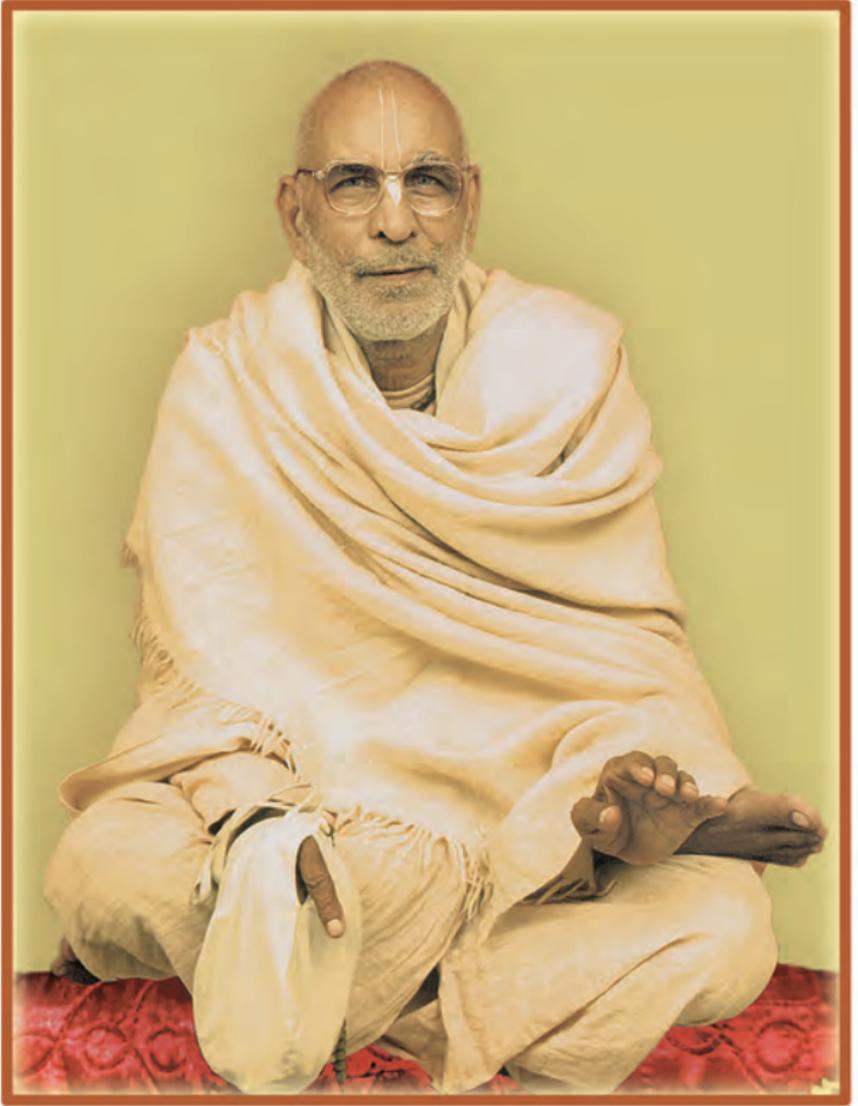
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज
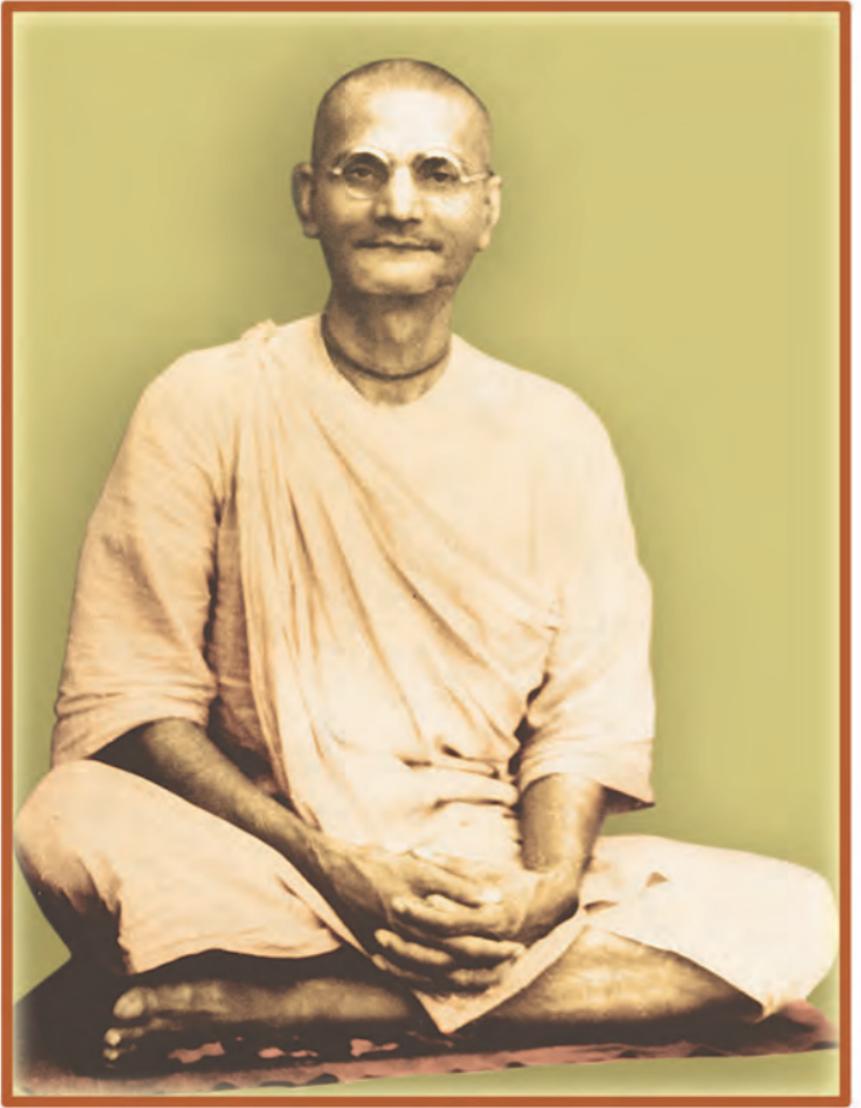
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज
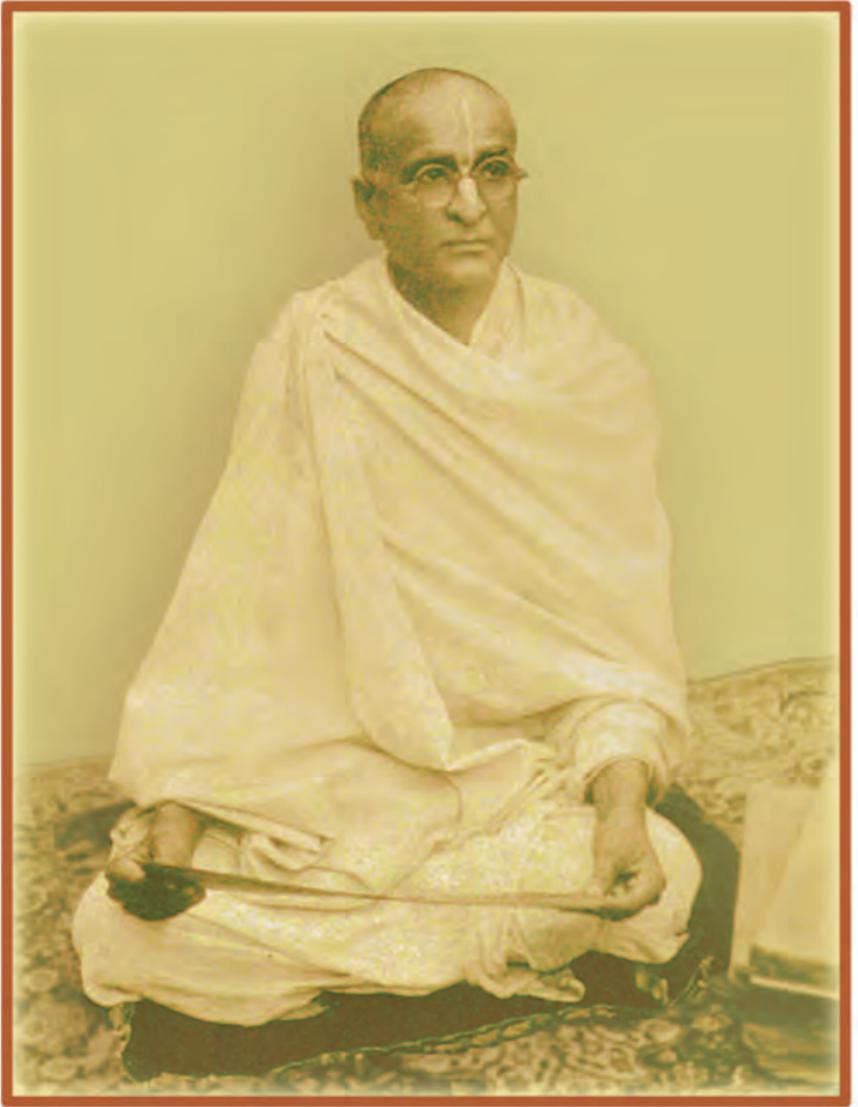
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद'
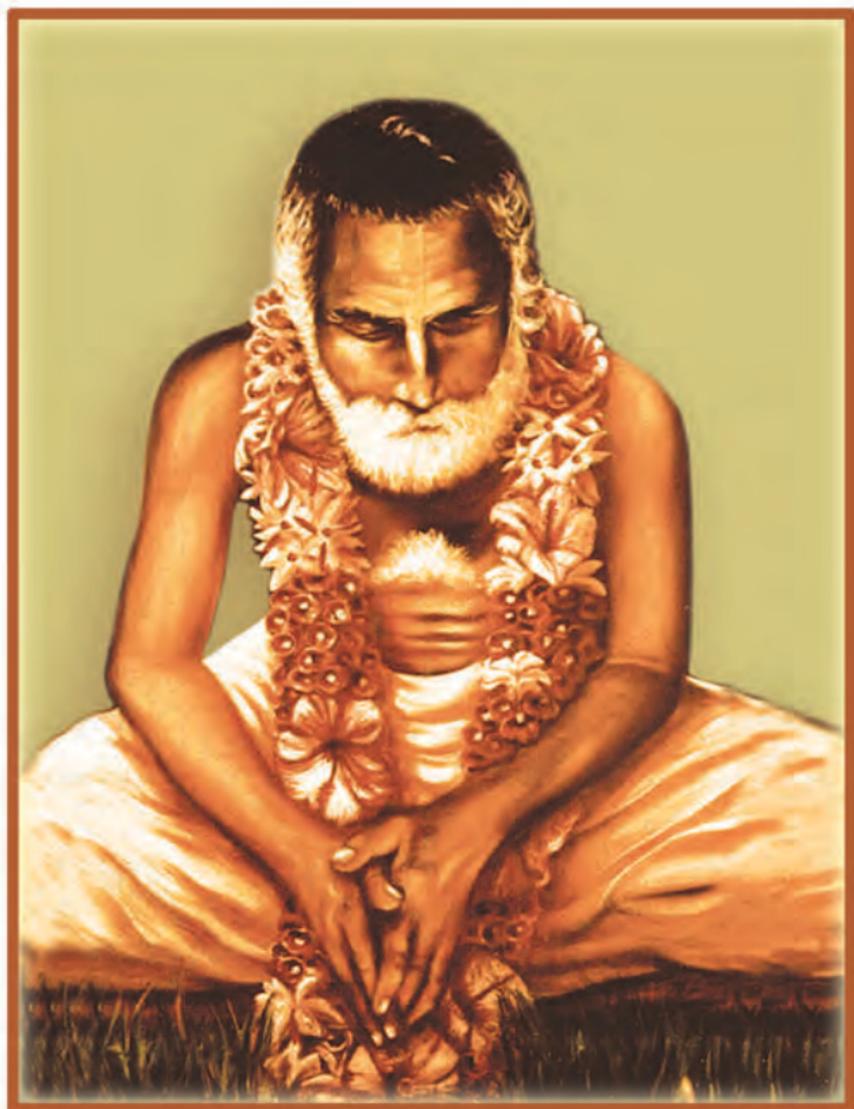
ॐ विष्णुपाद परमहंस
श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज

ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर

श्रील जीव गोस्वामी

योगपीठमें सेवित पंचतत्त्व

प्रथम अध्याय
श्रीधाम-माहात्म्य

मङ्गलाचरण—

जय जय नवद्वीपचन्द्र शचीसुत।
जय जय नित्यानन्दराय अवधूत॥१॥

श्रीनवद्वीपके चन्द्रस्वरूप श्रीशचीनन्दनकी जय हो! जय हो। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो! जय हो॥१॥

जय जय श्रीअद्वैत प्रभु महाशय।
गदाधर श्रीवास पण्डित जय जय॥२॥

श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी जय हो! जय हो। श्रीगदाधर पण्डित तथा श्रीवास पण्डितकी जय हो! जय हो॥२॥

प्रभुके लीलाधाम श्रीनवद्वीपकी वन्दना—

जय नवद्वीपधाम सर्वधाम सार।
जय नवद्वीपवासी गौर परिवार॥३॥

अन्यान्य सभी धामोंके सारस्वरूप श्रीनवद्वीप-धामकी जय हो। नवद्वीपवासी गौरपरिवारकी जय हो॥३॥

भक्तोंकी कृपासे सभी कार्य सम्भवपर—

सकल भकतपदे करिया प्रणाम।
संक्षेपे वर्णिब आमि नवद्वीपधाम॥४॥

सभी भक्तोंके श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम करके मैं (श्रीभक्तिविनोद ठाकुर) संक्षेपमें श्रीनवद्वीपधामके माहात्म्यका वर्णन करूँगा॥४॥

नवद्वीपके माहात्म्यका वर्णन करनेमें असमर्थता ज्ञापन—

नवद्वीप मण्डलेर महिमा अपार।
ब्रह्मा आदि नाहि जाने वर्णे साध्य का'र॥५॥

श्रीनवद्वीपधामकी महिमा अपार है। जब ब्रह्मादि भी इसकी महिमाको नहीं जानते, तब इसकी महिमाका वर्णन करनेकी क्षमता किसमें हो सकती है?॥५॥

शेष और महादेव भी नवद्वीपकी महिमा वर्णन करनेमें असमर्थ—

सहस्र वदने शेष वर्णिते अक्षम।
क्षुद्र जीव आमि किसे हइब सक्षम॥६॥

जब भगवान् शेष भी अपने सैकड़ों मुखोंके द्वारा इसका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं, तब मेरे जैसा क्षुद्र जीव किस प्रकार समर्थ होगा? ॥६॥

सत्य वटे नवद्वीप महिमा अनन्त।
देव देव महादेव नाहि पाय अन्त॥७॥

यद्यपि यह सत्य है कि श्रीनवद्वीपधामकी महिमा अनन्त है और देव-देव महादेव भी इसका अन्त नहीं पाते॥७॥

भगवत्-इच्छा ही सर्वस्व—

तथापि चैतन्यचन्द्र-इच्छा बलवान्।
सेइ इच्छावशे भक्त आज्ञार विधान॥८॥

तथापि श्रीचैतन्यचन्द्रकी इच्छा बहुत बलवान है, उन्हींकी इच्छाके अनुरूप ही भक्त किसीको आज्ञा प्रदान करते हैं॥८॥

भगवान्‌की इच्छा ही भक्तोंकी इच्छा—

भक्तगणे आज्ञा दिल चैतन्य-इच्छाय।
नदीया-माहात्म्य वर्णि भक्तेर कृपाय॥९॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी इच्छासे ही भक्तोंने मुझे (श्रीनवद्वीपधामके माहात्म्यका वर्णन करनेकी)

आज्ञा प्रदान की। मैं उन्हीं भक्तोंकी आज्ञारूपी कृपासे ही श्रीनवद्वीपधामके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ॥९॥

ग्रन्थकार द्वारा गूढ़ रहस्यका उद्घाटन—

आर एक कथा आछे गूढ़ अतिशय।
कहिते ना इच्छा हय, ना कहिले नय॥१०॥

और भी एक बहुत रहस्यपूर्ण बात है। यद्यपि कहनेकी इच्छा नहीं है, तथापि कहे बिना भी नहीं रहा जाता॥१०॥

जे अवधि श्रीचैतन्य अप्रकट हैल।
धाम—लीला प्रकाशिते भक्ते आज्ञा दिल॥११॥

जिस समय श्रीचैतन्य महाप्रभु अप्रकट हुए, उस समय उन्होंने भक्तोंको श्रीनवद्वीपधामकी लीलाको प्रकाशित करनेके लिए आज्ञा प्रदान की॥११॥

मायादेवी द्वारा श्रीगौरलीलासे सम्बन्धित शास्त्रोंको छिपाकर रखना—

सर्व अवतार हैते गूढ़ अवतार।
श्रीचैतन्यचन्द्र मोर विदित संसार॥१२॥

मेरे परमाराध्य श्रीचैतन्य महाप्रभुका अवतार अन्यान्य सभी अवतारोंसे अत्यधिक गूढ़ है, यह सम्पूर्ण विश्वमें प्रसिद्ध है॥१२॥

गूढ़लीला शास्त्रे गूढ़रूपे उक्त हय।
अभक्तजनेर चित्ते ना हय उदय॥१३॥

गूढ़लीला शास्त्रोंमें गूढ़ रूपसे ही वर्णन की जाती है। ऐसी गूढ़ लीलाएँ अभक्तोंके चित्तमें उदित नहीं होतीं॥१३॥

से लीला–सम्बन्धे जत गूढ़ शास्त्र छिल।
मायादेवी बहुकाल आच्छादि' राखिल॥१४॥

उस लीलाके सम्बन्धमें जितने भी गूढ़–शास्त्र थे, मायादेवीने बहुत समय तक उन्हें छिपाकर रखा॥१४॥

अप्रकट शास्त्र बहु रहे यथा तथा।
प्रकट शास्त्रेओ जत चैतन्येर कथा॥१५॥
से–सकल मायादेवी पण्डित–नयन।
आवरिया राखे गुप्त भावे अनुक्षण॥१६॥

यद्यपि श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कथाएँ प्रकाशित और इधर–उधर रखे हुए अप्रकाशित ग्रन्थोंमें

बहुत स्थानोंपर वर्णित थी, तथापि मायादेवीने उन सभी कथाओंको पण्डितोंके नेत्रोंसे ओझलकर सदैव गुप्त रूपमें रखा॥१५-१६॥

श्रीमन् महाप्रभुकी इच्छासे मायादेवी द्वारा अपना जाल उठाना—

गौरेर गम्भीर लीला हैले अप्रकट।
प्रभु-इच्छा जानि' माया हय अकपट॥१७॥

उठाइया लैल जाल जीवचक्षु हैते।
प्रकाशिल गौरतत्त्व ए जड़ जगते॥१८॥

श्रीगौरसुन्दरकी गम्भीर लीलाके अप्रकट होनेके पश्चात् महाप्रभुकी इच्छानुसार मायादेवीने निष्कपट होकर जीवोंके नेत्रोंके सामनेसे अपना मायारूपी जाल उठाकर इस जड़जगत्में गौरतत्त्वको प्रकाशित कर दिया॥१७-१८॥

गुप्तशास्त्र अनायासे हइल प्रकट।
घुचिल जीवेर जत युक्तिर सङ्कट॥१९॥

सभी गुप्तशास्त्र अनायास ही प्रकट हो गये और जीवोंकी तर्क करनेकी प्रवृत्ति भी नष्ट हो गयी॥१९॥

परम करुणामय श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा—

बड़इ दयालु प्रभु नित्यानन्दराय।
गौरतत्त्व प्रकाशिल जीवेर हियाय॥२०॥

परम दयालु श्रीनित्यानन्द प्रभुने जीवोंके हृदयमें गौरतत्त्वको प्रकाशित कर दिया॥२०॥

ताँ'र आज्ञा पेये माया छाड़े आवरण।
सुभक्त पण्डितगण पाय शास्त्रधन॥२१॥

उनकी (श्रीनित्यानन्द प्रभुकी) आज्ञा प्राप्त करके मायादेवीने अपने आवरणको हटा लिया और सद्भक्त पण्डितोंको शास्त्ररूपी धनकी प्राप्ति हो गयी॥२१॥

इहाते सन्देह जा'र ना हय खण्डन।
से अभागा वृथा केन धरय जीवन॥२२॥

इतना सुनकर भी इस विषयमें जिसका सन्देह दूर नहीं होता, वह अभागा वृथा ही अपने जीवनको क्यों धारण करता है?॥२२॥

जे—काले ईश्वर जेइ कृपा वितरय।
भाग्यवन्त जन ताहे बड़ सुखी हय॥२३॥

भगवान् अपनी इच्छानुसार जिस समय जिस प्रकारकी कृपा वितरण करते हैं, भाग्यवान व्यक्ति उनकी उसी कृपाको प्राप्त करके बहुत आनन्दित होता है॥२३॥

दुर्भागे व्यक्तिके लक्षण—

दुर्भागा—लक्षण एइ जान सर्वजन।
निज—बुद्धि बड़ बलि' करिया गणन॥२४॥

"मैं ही सबसे अधिक बुद्धिमान हूँ", ऐसा माननेवाले व्यक्तिको ही सबसे बड़ा दुर्भाग्यशाली समझना चाहिये॥२४॥

ईश्वरेर कृपा नाहि करय स्वीकार।
कुतर्के मायार गर्त्ते पड़े बारबार॥२५॥

जो ईश्वरकी कृपाको स्वीकार नहीं करता, वह अपने कुतर्कसे बार—बार मायाके गड्ढेमें गिरता है॥२५॥

प्रेमदाता शिरोमणि श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा आह्वान—

एसो हे कलिर जीव, छाड़ कुटिनाटि।
निर्मल गौराङ्ग—प्रेम लह परिपाटि॥२६॥

हे कलियुगके जीवो! आओ। कुटिनाटिको[१] छोड़कर निर्मल गौराङ्गप्रेमकी परिपाटीको स्वीकार करो॥२६॥

एइ बलि नित्यानन्द डाके बारबार।
तबु त' दुर्भागा–जन ना करे स्वीकार॥२७॥

ऐसा कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु बार–बार पुकार रहे हैं, तब भी दुर्भागे व्यक्ति उसे (गौराङ्गप्रेमको) स्वीकार नहीं करते॥२७॥

केन जे एमन प्रेमे करे अनादर।
विचार करिया देख हइया तत्पर॥२८॥

वे किसलिए ऐसे प्रेमका अनादर करते हैं? आप स्वयं ही सावधानीपूर्वक इसका विचार कीजिये॥२८॥

तुच्छ सुख–प्राप्ति हेतु बद्धजीवों द्वारा किये जानेवाले अनेक प्रकारके उपाय—

सुख लागि' सर्वजीव नाना युक्ति करे।
तर्क करे, योग करे, संसार–भितरे॥२९॥

---

[१] कुटिनाटि—जितने प्रकारके "कु" अर्थात् भक्ति विरोधी विचार हैं और "ना" अर्थात् अभक्ति पूर्ण नास्तिक विचार हैं, उन्हें छोड़ना ही कुटिनाटि छोड़ना है।

संसारमें सभी जीव सुखकी प्राप्तिके लिए ही अनेक प्रकारकी युक्ति, तर्क और योग आदिका साधन करते हैं॥२९॥

सुख लागि' संसार छाड़िया वने जाय।
सुख लागि' युद्ध करे राजाय राजाय॥३०॥

सुखकी प्राप्तिके लिए ही संसारको छोड़कर वनमें जाते हैं और सुखकी प्राप्तिके लिए ही एक राजा, दूसरे राजासे युद्ध करता है॥३०॥

सुख लागि' कामिनी–कनक पाछे धाय।
सुख लागि' शिल्प आर विज्ञान चालाय॥३१॥

सुखकी प्राप्तिके लिए ही वे कामिनी (स्त्री) और कनक (स्वर्ण, धन–सम्पत्ति) के पीछे भागते हैं तथा सुखकी प्राप्तिके लिए ही शिल्प एवं विज्ञानको अपनाते हैं॥३१॥

सुख लागि' सुख छाड़े क्लेश शिक्षा करे।
सुख लागि' अर्णव–मध्येते डुबे मरे॥३२॥

कुछ लोग सुखको ढूँढ़ते–ढूँढ़ते अन्तमें सुखकी आशाको त्यागकर दुःखको सहन करनेकी शिक्षा

प्राप्त करते हैं और कुछ लोग तो सुख प्राप्तिके लिए समुद्रमें डूबकर आत्महत्या तक भी कर लेते हैं॥३२॥

वास्तविक सुख-प्राप्तिका उपाय—

नित्यानन्द बले डाकि' दु'हात तुलिया।
एसो जीव कर्म-ज्ञान-सङ्कट छाड़िया॥३३॥

नित्यानन्द प्रभु अपने दोनों हाथोंको उठाकर पुकारते हुए कहते हैं कि हे जीव! कर्म और ज्ञानरूप झंझट एवं संकटको छोड़कर मेरे समीप आ जाओ॥३३॥

सुख लागि' चेष्टा तव आमि ताहा दिब।
तार विनिमये आमि किछु ना लइब॥३४॥

जिस सुखको प्राप्त करनेके लिए तुम इतना प्रयास कर रहे हो, मैं तुम्हें वह सुख अनायास ही दे दूँगा और उसके बदलेमें मैं तुमसे कुछ भी नहीं लूँगा॥३४॥

कष्ट नाइ, व्यय नाइ, ना पा'बे यातना।
श्रीगौराङ्ग बलि' नाच नाहिक भावना॥३५॥

इसमें तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा, तुम्हारा कुछ खर्च भी नहीं होगा तथा न ही तुम्हें किसी प्रकारकी कोई यातना सहन करनी पड़ेगी। सब प्रकारकी चिन्ताओंको छोड़कर केवल श्रीगौरहरिका नाम लेकर नृत्य करो॥३५॥

जे सुख आमि त' दिब, तार नाइ सम।
सर्वदा विमलानन्द, नाहि तार भ्रम॥३६॥

मैं तुम्हें जो सुख प्रदान करूँगा, उसके समान और कोई सुख हो ही नहीं सकता। उसमें सदैव विमल आनन्द है, तथा किसी प्रकारका कोई भ्रम नहीं है॥३६॥

दुर्भागे व्यक्तिकी अवस्था—

एइरूपे प्रेम याचे नित्यानन्दराय।
अभागा करम-दोषे ताहा नाहि चाय॥३७॥

इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु ब्रह्मा आदिके लिए भी दुर्लभ प्रेमका वितरण करना चाहते हैं, तथापि दुर्भागा व्यक्ति अपने ही कर्मदोषके कारण उसे लेना नहीं चाहता॥३७॥

गौराङ्ग निताइ जेइ बले एकबार।
अनन्त करम–दोष अन्त हय ता'र॥३८॥

जो एकबार भी श्रीगौराङ्ग–निताइ नामका उच्चारण करता है, उसके अनन्त कर्मोंके दोष नष्ट हो जाते हैं॥३८॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी लीला ही कलियुगके जीवोंके लिए उपादेय—

आर एक गूढ़ कथा शुन सर्वजन।
कलिजीवे योग्यवस्तु गौरलीला–धन॥३९॥

आप सभी और एक गूढ़ रहस्य सुने। कलियुगके जीवोंके लिए गौरलीलारूपी धन ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है॥३९॥

गौरहरि राधा–कृष्णरूपे वृन्दावने।
नित्यकाल विलास करये सखी–सने॥४०॥

श्रीगौरहरि वृन्दावनमें श्रीराधाकृष्णके रूपमें सखियोंके साथ नित्य विलास करते हैं॥४०॥

शास्त्रेते जानिल जीव ब्रजलीलातत्त्व।
राधाकृष्ण–नित्यलीला ब्रजेर महत्त्व॥४१॥

शास्त्रोंके माध्यमसे जीव व्रजलीलाके तत्त्व और व्रजमें हुई श्रीराधाकृष्णकी नित्यलीलाकी महिमाको समझता है॥४१॥

कृष्णनाम, कृष्णधामकी अपार महिमा होनेपर भी अपराधी व्यक्तिका उद्धार असम्भव—

कृष्णनाम कृष्णधाम—माहात्म्य अपार।
शास्त्रेर द्वाराय जाने सकल संसार॥४२॥

शास्त्रोंके माध्यमसे पूरा संसार जानता है कि कृष्णनाम और कृष्णधामकी महिमा अपार है॥४२॥

तबु कृष्णप्रेम साधारणे नाहि पाय।
इहार कारण किवा चिन्तह हियाय॥४३॥

फिर भी सभी लोगोंको कृष्णप्रेमकी प्राप्ति नहीं होती, इसका क्या कारण है? हृदयमें इसपर थोड़ा विचार तो करो॥४३॥

इहाते आछे त' एक गूढ़तत्त्व—सार।
मायामुग्ध जीव ताहा ना करे विचार॥४४॥

इसमें एक गूढ़ तत्त्व है। मायामुग्ध जीव उसपर विचार नहीं करते॥४४॥

बहु जन्म कृष्ण भजि' प्रेम नाहि हय।
अपराध-पुञ्ज ता'र आछये निश्चय॥४५॥

यदि बहुत जन्मों तक श्रीकृष्णका भजन करनेपर भी प्रेम नहीं होता है, तब यह निश्चित है कि ऐसे व्यक्तिने अनेकों अपराध किये हैं॥४५॥

अपराधशून्य ह'ये लय कृष्णनाम।
तबे जीव कृष्णप्रेम लभे अविराम॥४६॥

यदि जीव अपराधशून्य होकर कृष्णनाम लेता है, तभी वह बिना किसी बाधाके कृष्णप्रेम प्राप्त करता है॥४६॥

अपराध रहनेपर भी प्रेमकी प्राप्तिका उपाय—

श्रीचैतन्य-अवतारे बड़ विलक्षण।
अपराधसत्त्वे जीव लभे प्रेमधन॥४७॥

किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुके अवतारमें एक बहुत ही विलक्षण बात है कि अपराध रहनेपर भी जीव प्रेम-धनको प्राप्त कर लेता है॥४७॥

निताइ चैतन्य बलि' जेइ जीव डाके।
सुविमल कृष्णप्रेम अन्वेषये ता'के॥४८॥

जो जीव “हा निताइ! हा चैतन्य!” कहकर पुकारता है, सुविमल कृष्णप्रेम उसे ढूँढ़ता-फिरता है॥४८॥

अपराध बाधा ता'र किछु नाहि करे।
निरमल कृष्णप्रेमे ता'र आँखि झरे॥४९॥

अपराध उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। निर्मल कृष्णप्रेममें उसकी आँखोंसे अश्रुओंकी धारा प्रवाहित होने लगती है॥४९॥

स्वल्पकाले अपराध आपनि पलाय।
हृदय शोधित हय, प्रेमे बाड़े ताय॥५०॥

थोड़े ही समयमें अपराध अपने आप दूर भाग जाते हैं। हृदय शुद्ध हो जाता है और उसमें प्रेमकी वृद्धि होती है॥५०॥

गौरनाम और गौरधामके बिना कलियुगके जीवोंका उद्धार असम्भव—

कलिजीवेर अपराध असंख्य दुर्वार।
गौरनाम बिना ता'र नाहिक उद्धार॥५१॥

कलियुगके जीवोंके अपराध असंख्य और भीषण हैं, गौरनामके बिना उनका उद्धार नहीं हो सकता॥५१॥

अतएव गौर बिना कलिते उपाय।
ना देखि कोथाओ आर, शास्त्र फुकारय॥५२॥

इसलिए शास्त्र बार–बार उच्च स्वरसे कह रहे हैं कि गौरनामके अतिरिक्त कलियुगके जीवोंके उद्धारका अन्य कोई भी उपाय दिखायी नहीं देता॥५२॥

नवद्वीपे गौरचन्द्र हइल उदय।
नवद्वीप सर्वतीर्थ–अवतंस हय॥५३॥

श्रीगौरचन्द्र नवद्वीपमें उदित हुए हैं, इसलिए श्रीनवद्वीपधाम सभी तीर्थोंका अवतंस (मुकुटमणि) है॥५३॥

अन्य तीर्थे अपराधी दण्डेर भाजन।
नवद्वीपे अपराध सदाइ मार्जन॥५४॥

अन्यान्य तीर्थोंमें अपराध करनेपर अपराधी व्यक्तिको दण्ड भोगना पड़ता है, किन्तु श्रीनवद्वीपमें सदैव अपराध दूर होते हैं॥५४॥

बिना किसी दण्डके अपराधी व्यक्तिका उद्धार—

ता'र साक्षी जगाइ–माधाइ दुइ भाइ।
अपराध करि' पाइल चैतन्य निताइ॥५५॥

इसके साक्षी जगाइ और माधाइ नामक दो भाई हैं। अपराध करके भी इन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपाको प्राप्त कर लिया॥५५॥

नवद्वीपके अतिरिक्त अन्यान्य सभी तीर्थोंमें अपराधी व्यक्ति द्वारा दण्डभोग अवश्यम्भावी—

अन्यान्य तीर्थेर कथा राख भाइ दूरे।
अपराधी दैत्य दण्ड पाय ब्रजपुरे॥५६॥

अन्यान्य तीर्थोंकी तो बात ही क्या? व्रजधाममें भी अपराधी दैत्योंको दण्ड मिलता है॥५६॥

नवद्वीपे शत शत अपराध करि'।
अनायासे निताइ—कृपाय जाय तरि'॥५७॥

किन्तु श्रीनवद्वीपमें (अनजानेमें) सैकड़ों अपराध करनेपर भी श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे अनायास ही उद्धार हो जाता है॥५७॥

ऋषियों द्वारा गौड़मण्डलकी स्तुति—

हेन नवद्वीपधाम जे गौड़मण्डले।
धन्य धन्य सेइ देश ऋषिगण बले॥५८॥

ऐसा श्रीनवद्वीपधाम जिस गौड़मण्डलके अन्तर्गत आता है, सभी ऋषि उस गौड़मण्डलको धन्य मानते हैं॥५८॥

नवद्वीपवासियोंका सौभाग्य—

हेन नवद्वीपे भाइ जाहार वसति।
बड़ भाग्यवान् सेइ लभे कृष्ण–रति॥५९॥

ऐसे श्रीनवद्वीपधाममें जो वास करता है, वह बहुत सौभाग्यशाली है। उसे कृष्ण–रतिकी प्राप्ति होती है॥५९॥

नवद्वीप जानेका फल—

नवद्वीपे जेबा कभु करय गमन।
सर्व अपराधमुक्त हय सेइ जन॥६०॥

जो कोई भी व्यक्ति श्रीनवद्वीपधाममें जाता है, वह सब प्रकारके अपराधोंसे मुक्त हो जाता है॥६०॥

नवद्वीप–स्मरणका फल—

सर्व तीर्थ भ्रमिया तैर्थिक जाहा पाय।
नवद्वीप–स्मरणे सेइ लाभ शास्त्रे गाय॥६१॥

सभी तीर्थोंमें भ्रमण करके तैर्थिक (तीर्थ करनेवाले) को जो फल प्राप्त होता है, श्रीनवद्वीपके स्मरणमात्रसे उस फलकी प्राप्ति हो जाती है—ऐसा सभी शास्त्र गान करते हैं॥६१॥

नवद्वीप-दर्शनका फल—

नवद्वीप दरशन करे जेइ जन।
जन्मे जन्मे लभे सेइ कृष्णप्रेमधन॥६२॥

जो व्यक्ति श्रीनवद्वीपधामका दर्शन करता है, उसे जन्म-जन्मान्तरमें कृष्णप्रेमरूपी धनकी प्राप्ति होती है॥६२॥

किसी भी कार्यवश नवद्वीप जानेका फल—

कर्म-बुद्धियोगेओ जे नवद्वीपे जाय।
नरजन्म आर सेइजन नाहि पाय॥६३॥

कर्म और बुद्धियोगसे या किसी भी कार्यकी सिद्धि हेतु यदि कोई नवद्वीप जाता है, तो उसे पुनः-पुनः जन्म-मृत्युके इस अनित्य संसारमें नहीं आना पड़ता॥६३॥

नवद्वीपमें एक-एक पग चलनेका फल—

नवद्वीप भ्रमिते से पदे पदे पाय।
कोटि अश्वमेधफल सर्वशास्त्रे गाय॥६४॥

श्रीनवद्वीपमें एक-एक पग चलनेके फल-स्वरूप कोटि अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है। ऐसा सभी शास्त्र गान करते हैं॥६४॥

नवद्वीपमें मन्त्रजप करनेका फल—

नवद्वीपे बसि' जेइ मन्त्र जप करे।
श्रीमन्त्र चैतन्य हय, अनायासे तरे॥६५॥

श्रीनवद्वीपमें बैठकर जो व्यक्ति मन्त्रजप करता है। उसका मन्त्र साक्षात् मूर्त्ति धारणकर उसके सामने प्रकाशित होता है और वह व्यक्ति अनायास ही भवसागरको पार कर लेता है॥६५॥

नवद्वीपमें तीन रात्रि रहनेका फल—

अन्य तीर्थे योगी दशवर्षे लभे जाहा।
नवद्वीपे तिन रात्रे साधि' पाय ताहा॥६६॥

अन्यान्य तीर्थोंमें योगी जो दस वर्षोंमें प्राप्त करता है, नवद्वीपमें तीन रात वास करनेपर ही वही फल प्राप्त हो जाता है॥६६॥

नवद्वीपमें भागीरथी-गङ्गामें स्नान करनेका फल—

अन्य तीर्थे ब्रह्मज्ञाने जेइ मुक्ति हय।
नवद्वीपे भागीरथी-स्नाने ता घटय॥६७॥

अन्यान्य तीर्थोंमें ब्रह्मज्ञानके कठोर साधनसे जिस मुक्तिकी प्राप्ति होती है, वह श्रीनवद्वीपमें भागीरथी (गङ्गा) में स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाती है॥६७॥

नवद्वीपमें बिना किसी ज्ञानके मुक्तिकी प्राप्ति—

सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्टि, सामीप्य निर्वाण।
नवद्वीपे मुमुक्षु लभये बिना ज्ञान॥६८॥

सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्टि, सामीप्य और जीव-ब्रह्मरूप ऐक्य—ये मुक्तियाँ नवद्वीपमें मुमुक्षुको बिना किसी ज्ञानके ही प्राप्त हो जाती हैं॥६८॥

भुक्ति और मुक्ति, शुद्धभक्तोंकी दासी—

नवद्वीपे शुद्धभक्त चरणे-पड़िया।
भुक्ति-मुक्ति सदा रहे दासीरूप हैया॥६९॥

नवद्वीपमें भुक्ति (सांसारिक भोग) और मुक्ति सदैव शुद्ध भक्तोंके चरणोंकी दासी बनकर रहती हैं॥६९॥

भक्तों द्वारा भुक्ति और मुक्तिकी उपेक्षा—

भक्तगण लाथि मारि' से दुये ताड़ाय।
भक्तपद छाड़ि' दासी तबु ना पलाय॥७०॥

भक्त अपने पैरोंकी ठोकर मारकर उन दोनोंको दूर भगाता है, तब भी वे उनके चरणोंको छोड़कर कहीं नहीं जातीं॥७०॥

नवद्वीपमें एक रात वास करनेका फल—

शतवर्ष सप्ततीर्थे मिले जाहा भाइ।
नवद्वीपे एक रात्र वासे ताहा पाइ॥७१॥

एक सौ वर्ष तक अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावती (द्वारका), इन सप्ततीर्थोंमें वास करनेपर जो फल प्राप्त होता है, अरे भाई! श्रीनवद्वीपमें एक रात्रि वास करनेसे ही वह फल प्राप्त हो जाता है॥७१॥

हेन नवद्वीपधाम सर्वधाम सार।
कलिते आश्रय करि' जीव हय पार॥७२॥

ऐसा श्रीनवद्वीपधाम अन्यान्य सभी धामोंका सारस्वरूप है। कलियुगमें जीव इस धामका आश्रय करके अनायास ही संसार पार हो जाता है॥७२॥

तारक पारक विद्याद्वय अविरत।
नवद्वीपवासीगणे सेवे रीतिमत॥७३॥

तारक (भवसागरसे पार करनेवाली विद्या) तथा पारक (सब प्रकारकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली विद्या) नामक दोनों विद्याएँ निरन्तर, बहुत सुन्दर रूपसे नवद्वीपवासियोंकी सेवा करती हैं॥७३॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा पदछाया जार आश।
से भक्तिविनोद गाय पाइया उल्लास॥७४॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे भक्तिविनोद द्वारा अत्यधिक उल्लासपूर्वक श्रीनवद्वीप-धामके माहात्म्यका गान किया जा रहा है॥७४॥

प्रथम अध्याय समाप्त।

द्वितीय अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय नवद्वीपचन्द्र शचीसुत।
जय जय नित्यानन्द राय अवधूत॥१॥

श्रीनवद्वीपके चन्द्रस्वरूप श्रीशचीनन्दनकी जय हो! जय हो। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो! जय हो॥१॥

जय जय नवद्वीप सर्वधाम सार।
से धामेर तत्त्व वर्णे साध्य आछे का'र॥२॥

अन्यान्य सभी धामोंके सारस्वरूप श्रीनवद्वीपकी जय हो! जय हो। इस धामके तत्त्वको वर्णन करनेका सामर्थ्य किसमें है? अर्थात् किसीमें नहीं है॥२॥

नवद्वीपधाम गौड़मण्डल-भितरे।
जाह्नवी-सेवित ह'ये सदा शोभा करे॥३॥

श्रीनवद्वीपधाम गौड़मण्डलमें स्थित है और श्रीजाह्नवीदेवी (गङ्गा) द्वारा सेवित है। श्रीगङ्गा-

देवी श्रीनवद्वीपधामकी शोभाको वर्धित करती हैं॥३॥

श्रीगौड़मण्डल एवं नवद्वीपधामका परिमाण

श्रीगौड़मण्डल एकविंशति योजन।
मध्यभागे गङ्गादेवी रहे अनुक्षण॥४॥

श्रीगौड़मण्डल इक्कीस योजन (चौरासी कोस अर्थात् एक सौ अड़सठ मील) परिधिवाला है और इसके मध्यमें श्रीगङ्गादेवी इधर-उधर सर्वत्र सदैव प्रवाहित होती रहती हैं॥४॥

शतदल पद्ममय मण्डल आकार।
मध्यभागे नवद्वीप अति शोभा तार॥५॥

श्रीगौड़मण्डल एक सौ पंखुड़ियों वाले कमल पुष्पके समान है और इसके मध्यभागमें बहुत सुन्दर श्रीनवद्वीप विद्यमान है॥५॥

पञ्चक्रोश हय तार केशर आधार।
परिमल पूर्ण पुष्प योजन चत्वार॥६॥

इस पुष्पके बीचमें पाँच कोस (दस मील) परिधिवाला (अन्तर्द्वीप) कर्णिकास्वरूप आधार है।

श्रीगौड़मण्डल
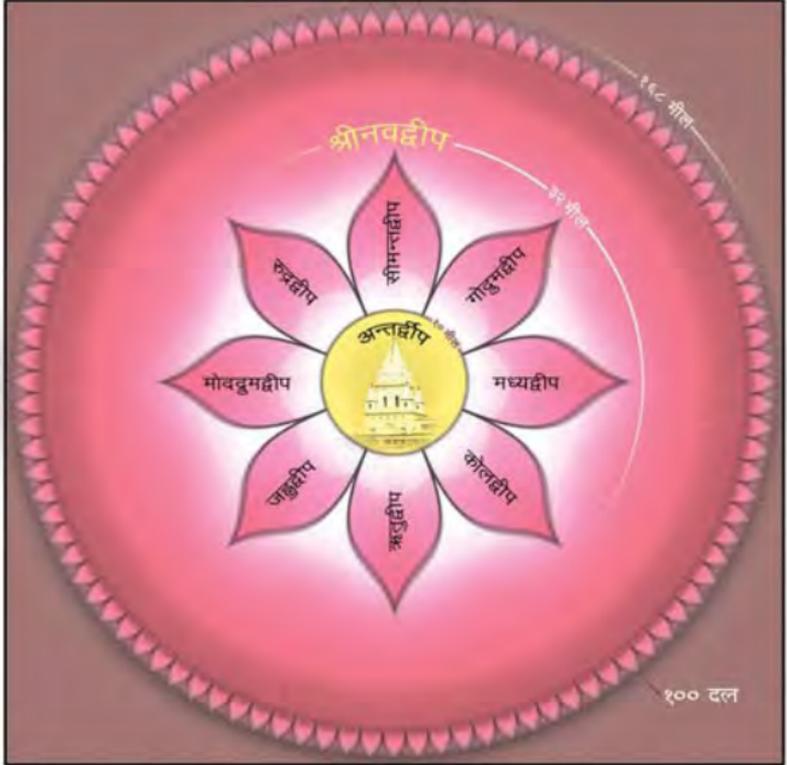
श्रीगौड़मण्डलकी परिधि—१६८ मील
श्रीअन्तर्द्वीपकी परिधि—१० मील
श्रीनवद्वीपकी परिधि—३२ मील

श्रीगौड़मण्डलका व्यास—५६ मील
केन्द्र बिन्दु—योगपीठ

प्रस्तुतकर्त्ता—श्रीमती वैजयन्ती माला दासी
श्रीमान् जय गोपाल ब्रह्मचारी

नवधा भक्तिपीठ स्वरूप—श्रीनवद्वीपधाम

सीमन्तद्वीप–श्रवणं, गोद्रुमद्वीप–कीर्तनं, मध्यद्वीप–स्मरणं कोलद्वीप–पादसेवनम् ऋतुद्वीप–अर्चनं
जह्नुद्वीप–वन्दनं मोदद्रुमद्वीप–दास्यं रुद्रद्वीप–सख्यं अन्तर्द्वीप–आत्मनिवेदनम्

अत्यधिक सुगन्धित आठ दल वाला यह पुष्प (श्रीनवद्वीप) चार योजन (सोलह कोस अर्थात् बत्तीस मील) परिधिवाला है॥६॥

बाहिर पापड़ि ता'र शतदल हय।
एकाधिक योजन विंशति विस्तारय॥७॥

इस कमलके पुष्पकी बाहरी पंखुड़ीरूप सम्पूर्ण गौड़मण्डल एक सौ दलका है और उसकी परिधि इक्कीस योजन (चौरासी कोस अर्थात् एक सौ अड़सठ मील) की है॥७॥

मण्डल परिधि हय सेइ परिमाण।
योजन सप्तक व्यास शास्त्रेर विधान॥८॥

व्यासार्द्ध–प्रमाण सार्द्ध तृतीय योजन।
मध्यबिन्दु हइते ता'र हइबे गणन॥९॥

मध्यबिन्दु नवद्वीपधाम मध्यस्थल।
योगपीठ हय ताहा चिन्मय विमल॥१०॥

शास्त्रोंके अनुसार श्रीगौड़मण्डलका व्यास सात योजन (अट्ठाईस कोस अर्थात् छप्पन मील) है तथा अर्ध व्यास साढ़े तीन योजन (चौदह कोस अर्थात् अट्ठाईस मील) है, तथा इस पुष्पके

मध्यबिन्दुपर मध्यस्थलमें श्रीनवद्वीपधामका वह स्थान विराजमान है, जहाँपर चिन्मय विमल योगपीठ (महाप्रभुका जन्मस्थान) शोभायमान है॥८-१०॥

श्रीनवद्वीपधामका स्वरूप

चिन्तामणिरूप हय ए गौड़मण्डल।
चिदानन्दमय-धाम चिन्मय सकल॥११॥

यह गौड़मण्डल धाम चिन्तामणिके समान और चिदानन्दमय है। यहाँकी सभी वस्तुएँ चिन्मय हैं॥११॥

जल-भूमि-वृक्ष-आदि सकलि चिन्मय।
सदा विद्यमान तथा कृष्णशक्तित्रय॥१२॥

यहाँका जल, भूमि और वृक्ष आदि सब कुछ चिन्मय हैं। यहाँपर श्रीकृष्णकी सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनी नामक तीनों शक्तियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं॥१२॥

चिन्मय धाम सन्धिनीशक्तिकी परिणति—

स्वरूप-शक्तिर जेइ सन्धिनी-प्रभाव।
तार परिणति एइ धामेर स्वभाव॥१३॥

स्वरूपशक्तिकी सन्धिनीके प्रभावकी परिणति ही इस धामका स्वभाव है अर्थात् यह चिन्मय धाम सन्धिनी शक्तिकी परिणति है॥१३॥

अविद्याग्रस्त बद्धजीवोंका धाम-दर्शन—

प्रभु-लीला-पीठरूपे धाम नित्य हय।
अचिन्त्य शक्तिर कार्य प्रापञ्चिक नय॥१४॥

तबे जे ए धामे देखे प्रपञ्चेर सम।
बद्धजीवे ताहे हय अविद्या-विभ्रम॥१५॥

श्रीमन् महाप्रभुकी लीलाभूमि होनेसे यह धाम नित्य है। यद्यपि अचिन्त्यशक्तिका कोई भी कार्य प्रापञ्चिक नहीं होता, फिर भी बाहरी रूपसे यह धाम अविद्याके भ्रममें भ्रमित बद्धजीवोंको प्रपञ्च जगत्के समान ही प्रतीत होता है॥१४-१५॥

मेघाच्छन्न चक्षु देखे सूर्य आच्छादित।
दिवाकर नाहि कभु हय मेघावृत॥१६॥

सेइरूप ए गौड़मण्डल चिदाकार।
प्रापञ्चिक जन देखे जड़ेर विकार॥१७॥

जिस प्रकार मेघसे आच्छादित नेत्रवाले व्यक्ति सूर्यको मेघ द्वारा आच्छादित समझते हैं, किन्तु

सूर्य कभी भी मेघ द्वारा आवृत नहीं होता। उसी प्रकार यह गौड़मण्डल भी चिन्मय है। जड़बुद्धि-विशिष्ट व्यक्ति ही इसे जड़मय देखते हैं॥१७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे चिन्मय धामके दर्शन—

नित्यानन्द–कृपा जा'र प्रति कभु हय।
से देखे आनन्द–धाम सर्वत्र चिन्मय॥१८॥

जिसके प्रति श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा होती है, वे इस आनन्दमय धामकी चिन्मयताके दर्शन करते हैं॥१८॥

गङ्गा–यमुनादि तथा सदा विद्यमान।
सप्तपुरी प्रयागादि आछे स्थाने स्थान॥१९॥

उन्हें ही दिखायी देता है कि यहाँपर गङ्गा, यमुना, सरस्वती और गोदावरी आदि पवित्र नदियाँ एक साथ मिलकर प्रवाहित होती हुई सदैव विद्यमान हैं, तथा विशेष-विशेष स्थानोंपर प्रयाग आदि सप्त पुरियाँ विराजमान हैं॥१९॥

साक्षात् वैकुण्ठतत्त्व ए गौड़मण्डल।
भाग्यवान् जीव ताहा देखे निरमल॥२०॥

भाग्यवान जीव इस गौड़मण्डलका निर्मल और साक्षात् वैकुण्ठ-तत्त्वके रूपमें दर्शन करते हैं॥२०॥

सभीको चिन्मय धामके दर्शन क्यों नहीं होते?—

स्वरूपशक्तिर छाया माया बलि जारे।
प्रभुर आज्ञाय निज प्रभाव विस्तारे॥२१॥

स्वरूपशक्तिकी छायाका नाम माया शक्ति है। वही माया प्रभुकी आज्ञासे अपने प्रभावका विस्तार करती है॥२१॥

बहिर्मुख जीवचक्षु करे आवरण।
चिद्धाम-प्रभाव सबे ना पाय दर्शन॥२२॥

वह माया बहिर्मुख जीवोंके नेत्रोंको ढक देती है, जिसके फलस्वरूप सभी लोग चिद्धामके प्रभावका दर्शन नहीं कर पाते॥२२॥

श्रीगौड़मण्डलवासियोंका स्वरूप

ए गौड़मण्डले जा'र वास निरन्तर।
बड़ भाग्यवान् सेइ संसार-भितर॥२३॥

इस गौड़मण्डलमें जो निरन्तर वास करते हैं, वे इस संसारमें बहुत सौभाग्यशाली हैं॥२३॥

देवगणे स्वर्गे थाकि' देखे सेइ जने।
चतुर्भुज श्यामकान्ति अपूर्व गठने॥२४॥

देवता लोग भी स्वर्गसे जब इस गौड़मण्डलमें वास करनेवाले लोगोंको देखते हैं तो उन्हें सभी चतुर्भुज धारण किये हुए, श्यामकान्ति और अद्भुत रूप तथा सुन्दर कद-काठीवाले दिखायी देते हैं॥२४॥

श्रीनवद्वीपधामवासियोंका स्वरूप

षोलक्रोश-नवद्वीपधामवासी जत।
गौरकान्ति, सदा नामसङ्कीर्त्तने रत॥२५॥

श्रीनवद्वीपधामके सोलह कोसमें वास करनेवाले सभी व्यक्ति गौरकान्तिसे युक्त हैं और सदैव नामसङ्कीर्त्तनमें रत रहते हैं॥२५॥

नवद्वीपवासियोंके प्रति श्रीब्रह्मा द्वारा की गयी स्तुति—

ब्रह्मा-आदि देवगणे अन्तरीक्ष हइते।
नवद्वीपवासीगणे पूजे नाना-मते॥२६॥

ब्रह्मा आदि देवता भी अन्तरीक्षसे नवद्वीप-वासियोंकी अनेक प्रकारसे पूजा करते हैं॥२६॥

ब्रह्मा बले,—"कबे मोर हेन भाग्य ह'बे।
नवद्वीपे तृण–कलेवर पाब जबे॥२७॥
श्रीगौर–चरणसेवा करे जत जन।
ता–सबार पदरेणु लभिब तखन॥२८॥

ब्रह्माजी कहते हैं—मेरा ऐसा सौभाग्य कब होगा, जब मैं भी नवद्वीपमें तृणके रूपमें जन्म प्राप्त करूँगा? यदि कोई कहे कि ब्रह्मा होकर ऐसे जन्मकी अभिलाषा क्यों करते हो? तो इसके उत्तरमें कहते हैं—हे भाई! तभी तो श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके चरणोंकी सेवामें लगे हुए सभी भक्तोंकी चरणरजकी प्राप्ति होगी। अन्यथा किसी भी प्रकारसे सम्भवपर नहीं है॥२७–२८॥

हाय, मोरे गौरचन्द्र वञ्चना करिया।
ब्रह्माण्डेर अधिपति राखिल करिया॥२९॥

हाय! हाय! श्रीगौरचन्द्रने मेरी वञ्चना करके मुझे ब्रह्माण्डका अधिपति बना दिया॥२९॥

कबे मोर कर्मग्रन्थि हइबे छेदन।
अभिमान त्यजि' मोर शुद्ध ह'बे मन॥३०॥

मेरे कर्मोंकी गाँठ कब कटेगी? अभिमानको त्यागकर मेरा मन कब शुद्ध होगा?॥३०॥

अधिकार–बुद्धि मोर कबे ह'बे क्षय।
शुद्ध दास ह'ये पाब गौर–पदाश्रय॥"३१॥

मेरी अधिकार–बुद्धि ("मैं इस जगत्का सृष्टि–कर्त्ता हूँ" ऐसी बुद्धि) कब नष्ट होगी? मैं कब शुद्धदास बनकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके श्रीचरण–कमलोंका आश्रय प्राप्त करूँगा?"॥३१॥

महामहिमान्वित श्रीनवद्वीपधाम—

देवगण, ऋषिगण, रुद्रगण जत।
स्थाने स्थाने नवद्वीपे वैसे अविरत॥३२॥

देवता, ऋषि और रुद्र आदि श्रीनवद्वीपमें स्थान–स्थानपर विराजमान हैं॥३२॥

चिरकाल तप करि' जीवन काटाय।
तबु नित्यानन्द–कृपा से सबे ना पाय॥३३॥

चिरकाल तक तपस्या करके जीवन व्यतीत करनेपर भी ये सब श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा प्राप्त नहीं कर पाते॥३३॥

अहङ्कार रहनेपर श्रीगौर–नित्यानन्दकी कृपा प्राप्त करना असम्भव—

देवबुद्धि जतदिन नाहि जाय दूरे।
जतदिन दैन्यभाव मने नाहि स्फुरे॥३४॥

ततदिन श्रीगौर–निताइ–कृपाधन।
ब्रह्मा–शिव नाहि पाय करिया यतन॥३५॥

क्योंकि जब तक देवबुद्धि ("मैं देवता हूँ") दूर नहीं होती और मनमें दैन्यभाव स्फुरित नहीं होता, तब तक अनेक यत्न करनेपर भी श्रीगौर–नित्यानन्दके कृपारूपी धनको जब ब्रह्मा–शिव आदि ही प्राप्त नहीं कर पाते, तब अन्योंका तो कहना ही क्या॥३४–३५॥

ग्रन्थकार द्वारा श्रद्धापूर्वक लीला श्रवण करनेके लिए अनुरोध—

एइ सब कथा आगे हइबे प्रकाश।
यत्न करि' शुन भाइ करिया विश्वास॥३६॥

ये सब विषय इस ग्रन्थमें आगे प्रकाशित होंगे। हे भाईयो! आप विश्वास करके यत्नपूर्वक इसका श्रवण करो॥३६॥

तर्किक व्यक्तिकी गति—

ए—सब विषये भाइ तर्क परिहर।
तर्क से अपार्थ अति अमङ्गलकर॥३७॥

हे भाईयो! इन सब विषयोंमें तर्क मत करो, क्योंकि तर्क व्यर्थ और अमङ्गल करनेवाला होता है॥३७॥

श्रीचैतन्य—लीला हय गभीर सागर।
मोचाखोला—रूप तर्क तथाय फाँपर॥३८॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीला गम्भीर सागरके समान है। मोचा खोला (केलेके फूलोंको एकसाथ जकड़कर रखनेवाले केवल छिलके ही छिलके) रूपी तर्क केवल कष्टप्रद है॥३८॥

तर्क करि' ए संसार तरिते जे चाय।
विफल ताहार चेष्टा, किछुइ ना पाय॥३९॥

तर्क करके जो व्यक्ति इस संसारसे उद्धार पाना चाहता है, उसकी सारी चेष्टाएँ विफल हो जाती हैं और उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता॥३९॥

साधु-शास्त्रका आश्रय स्वीकार करनेवाले व्यक्तिकी गति—

तर्के जलाञ्जलि दिया साधु-शास्त्र धरे।
अचिरे चैतन्यलाभ सेइ जन करे॥४०॥

जो व्यक्ति तर्कको जलाञ्जलि देकर केवल साधु और शास्त्रोंका आश्रय ग्रहण करता है, वही अतिशीघ्र श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपाको प्राप्त कर लेता है॥४०॥

श्रुति-स्मृति-तन्त्र-शास्त्र अविरत गाय।
नदीया-माहात्म्य नित्यानन्देर आज्ञाय॥४१॥

श्रुति, स्मृति, तन्त्र और अन्यान्य सभी शास्त्र निरन्तर श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आज्ञासे श्रीनवद्वीपके माहात्म्यका गान करते हैं॥४१॥

सेइ सब शास्त्र पड़ साधुवाक्य मान।
तबे त' हइबे तव नवद्वीप-ज्ञान॥४२॥

साधुओंके वचनोंपर विश्वास करके उन सभी शास्त्रोंको पढ़ो, तभी तो तुम्हें श्रीनवद्वीपकी महिमाका ज्ञान होगा॥४२॥

कलियुगमें केवल नवद्वीपधाम ही बलशाली—

कलिकाले तीर्थ-सब अत्यन्त दुर्बल।
नवद्वीप तीर्थ मात्र परम प्रबल॥४३॥

कलियुगमें सभी तीर्थ बहुत दुर्बल हैं। केवलमात्र श्रीनवद्वीपधाम ही अत्यधिक बलशाली तीर्थ है॥४३॥

प्रभुर इच्छाय सेइ तीर्थ बहु दिन।
अप्रकट महिमा आछिल स्फूर्तिहीन॥४४॥

भगवान्‌की इच्छासे यह धाम बहुत दिनों तक अप्रकट था और इसकी महिमा भी प्रकाशित नहीं थी॥४४॥

करुणामय परम दयालु भगवान् द्वारा जीवोंके मङ्गलकी चिन्ता—

कलिर प्रभाव जबे अत्यन्त बाड़िल।
अन्य तीर्थ स्वभावतः निस्तेज हइल॥४५॥

जीवेर मङ्गल लागि' पुरुषप्रधान।
मने मने चिन्ता करि' करिल विधान॥४६॥

जिस समय कलियुगका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया और अन्यान्य सभी तीर्थ स्वाभाविक रूपसे निस्तेज (शक्तिरहित) हो गये, उस समय

जीवोंके कल्याणका मन-ही-मन विचारकर परमेश्वरने एक उपाय ढूँढ़ा॥४५-४६॥

पीड़ा बुझि' वैद्यराज औषध खाओयाय।
कठिन औषध देय कठिन पीड़ाय॥४७॥

एबे कलि घोर हैल, रोग हैल भारी।
कठिन औषध बिना निवारिते नारि॥४८॥

भगवान्‌ने विचार किया कि जैसे वैद्यराज रोगी व्यक्तिकी पीड़ाको समझकर उसे औषधि खिलाता है और बहुत अधिक पीड़ित व्यक्तिको बहुत शक्तिशाली औषधि देता है, उसी प्रकार घोर कलियुगके कारण इन लोगोंका रोग बहुत बढ़ गया है, बहुत अधिक शक्तिशाली औषधिके बिना इनका रोग दूर नहीं किया जा सकता॥४७-४८॥

अतिशय गोपने राखिनु जेइ धाम।
अतिशय गोपने राखिनु जेइ नाम॥४९॥

अतिशय गोपने राखिनु जेइ रूप।
प्रकाश ना कैले जीव तरिबे किरूप॥५०॥

इसलिए अब तक मैंने जिस धाम, जिस नाम और जिस रूपको बहुत गुप्त रूपमें रखा है, यदि

अभी भी मैंने उसे प्रकाशित नहीं किया, तो इन जीवोंका उद्धार कैसे होगा? ॥४९-५०॥

भगवान् और जीवका नित्य सम्बन्ध—

जीव'त आमार दास, आमि तार प्रभु।
आमि ना तारिले सेइ ना तरिबे कभु॥५१॥

ये सभी तो मेरे ही दास हैं और मैं इन सबका प्रभु हूँ, यदि मैं इनका उद्धार नहीं करूँगा, तो फिर और कौन करेगा? अर्थात् मेरी कृपाके बिना इनका कभी भी उद्धार नहीं हो सकता॥५१॥

एइ बलि' श्रीचैतन्य हइल प्रकाश।
निज-नाम, निज-धाम, ल'ये निज-दास॥५२॥

ऐसा विचारकर श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने नाम, धाम और अपने दासोंको साथ लेकर श्रीधाम नवद्वीपमें आविर्भूत हुए॥५२॥

सत्य संकल्प भगवान्की प्रतिज्ञा—

प्रभुर प्रतिज्ञा एइ हय सर्वकाल।
तारिब सकल जीव घुचा'ब जञ्जाल॥५३॥

भगवान्‌की सदैव यही प्रतिज्ञा है कि सभी जीवोंका उद्धार करके, इनके सारे जञ्जालोंको समाप्त कर दूँगा॥५३॥

ब्रह्मार दुर्लभ धन बिला'ब संसारे।
पात्रापात्र ना बाछिब एइ अवतारे॥५४॥

जिस धनको प्राप्त करना ब्रह्माके लिए भी दुर्लभ है, उसे मैं इस संसारमें सभीको प्रदान करूँगा और इस अवतारमें उस (प्रेम) धनको वितरण करनेमें पात्र-अपात्रका भी विचार नहीं करूँगा॥५४॥

कलिके प्रभावको नष्ट करने हेतु श्रीमन् महाप्रभुकी प्रतिज्ञा—

देखिब किरूपे कलि जीवेर करे नाश।
नवद्वीपधाम आमि करिब प्रकाश॥५५॥

सेइ धामे कलिर भाङ्गिब विषदाँत।
कीर्त्तन करिया जीवे करि आत्मसाथ॥५६॥

मैं यह भी देखूँगा कि कलि किस प्रकार जीवोंका सर्वनाश करता है? मैं अपने नवद्वीपधामको प्रकाशित करूँगा और उसी धाममें ही कलिके

विषमय दाँतोंको तोड़ूँगा तथा कीर्त्तन करके जीवोंको आत्मसात् करूँगा॥५५-५६॥

श्रीमन् महाप्रभुकी भविष्यवाणी—

"जतदूर मम नाम हइबे कीर्त्तन।
ततदूर हइबे त' कलिर दमन॥"५७॥

जितनी दूर तक मेरे नामोंका कीर्त्तन होगा, उतनी दूर तक कलियुगका भी दमन होगा अर्थात् कलियुग उन-उन स्थानोंसे दूर भागेगा॥५७॥

एइ बलि' गौरहरि कलिर सन्ध्याय।
प्रकाशिल नवद्वीप स्वकीय मायाय॥५८॥

ऐसा विचारकर श्रीगौरहरिने कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें अपनी योगमायाके प्रभावसे श्रीनवद्वीपधामको प्रकाशित किया॥५८॥

छाया सम्वरिया नित्य स्वरूप-विलास।
गौरचन्द्र गौड़भूमे करिल प्रकाश॥५९॥

श्रीगौरचन्द्रने गौड़भूमिमें अपनी स्वरूपशक्ति योगमायाकी छाया महामायाको हटाकर अपने नित्य स्वरूप-विलासको प्रकट किया॥५९॥

सबसे अधिक दुर्भागा व्यक्ति—

एमन दयालु प्रभु जे–जन ना भजे।
एमन अचिन्त्य धाम जेइ जन त्यजे॥६०॥

एइ कलिकाले ता'र सम भाग्यहीन।
ना देखि जगते आर शोचनीय दीन॥६१॥

ऐसे परम दयालु प्रभुका जो व्यक्ति भजन नहीं करता और ऐसे अचिन्त्य धामको जो व्यक्ति त्याग देता है, इस कलियुगमें उसके समान भाग्यहीन तथा शोचनीय दीन और कोई नहीं है॥६०–६१॥

ग्रन्थकारका मनोऽभीष्ट—

अतएव छाड़ि' भाइ अन्य वाञ्छा रति।
नवद्वीप–धामे मात्र हओ एकमति॥६२॥

इसलिए हे भाईयो! अन्यान्य सभी प्रकारकी अभिलाषाओंको त्यागकर केवल श्रीनवद्वीपधामके प्रति एकान्त चित्त हो जाओ अर्थात् यहीं निवास करो॥६२॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट–प्रार्थना—

जाह्नवा–निताइ–पदछाया जार आश।
से भक्तिविनोद करे ए तत्त्व प्रकाश॥६३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे भक्तिविनोद द्वारा इस तत्त्वको प्रकाशित किया जा रहा है ॥६३ ॥

द्वितीय अध्याय समाप्त।

तृतीय अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय नवद्वीपचन्द्र शचीसुत।
जय जय नित्यानन्दराय अवधूत॥१॥

श्रीनवद्वीपके चन्द्रस्वरूप श्रीशचीनन्दनकी जय हो! जय हो। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो! जय हो॥१॥

जय जय श्रीअद्वैतप्रभु महाशय।
गदाधर, श्रीवास पण्डित जय जय॥२॥

श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो! जय हो। श्रीगदाधर पण्डित और श्रीवास पण्डितकी जय हो! जय हो॥२॥

जय जय नवद्वीपधाम सर्वधाम–सार।
जेइ धामसह गौरचन्द्र–अवतार॥३॥

अन्यान्य सभी धामोंके सारस्वरूप उस श्रीनवद्वीप–धामकी जय हो! जय हो। जिस धामके साथ श्रीगौरचन्द्र अवतरित हुए हैं॥३॥

सोलह कोसवाले श्रीनवद्वीपधाममें स्थित लीलास्थलियोंका वर्णन आरम्भ—

षोलक्रोश नवद्वीप—मध्ये जाहा जाहा।
वर्णिब एखन भक्तगण शुन ताहा॥४॥

सोलह कोस नवद्वीपमें जो—जो स्थान हैं, मैं अब उनका वर्णन करूँगा। हे भक्तो! आपलोग उसका श्रवण करें॥४॥

श्रीनवद्वीपमें प्रवाहित होनेवाली नदियाँ

षोलक्रोश—मध्ये नवद्वीपेर प्रमाण।
षोड़श प्रवाह तथा सदा विद्यमान॥५॥

सोलह कोस श्रीनवद्वीपधाममें सोलह प्रवाह (नदियाँ) सदैव विराजमान हैं॥५॥

मूल—गङ्गा पूर्वतीरे द्वीप—चतुष्टय।
ताँहार पश्चिमे सदा पञ्चद्वीप रय॥६॥

गङ्गाके पूर्व तटपर चार द्वीप और पश्चिम तटपर पाँच द्वीप सदैव विद्यमान हैं॥६॥

स्वर्धुनी—प्रवाह सब बेड़ि' द्वीपगणे।
नवद्वीपधामे शोभा देय अनुक्षणे॥७॥

स्वर्धुनी (भगवती–भागीरथी गङ्गा) सभी द्वीपोंको परिवेष्टित करती हुई प्रवाहित होती हैं तथा इस प्रकार नित्य–निरन्तर श्रीनवद्वीपधामकी शोभाको वर्द्धित करती हैं॥७॥

मध्ये मूल गङ्गादेवी रहे अनुक्षण।
अपर प्रवाहे अन्य पुण्यनदीगण॥८॥

नवद्वीपधामके मध्यमें मूल गङ्गादेवी सदैव प्रवाहित होती हैं, और अन्यान्य अनेक लोकपावनी नदियाँ श्रीनवद्वीपधाममें इधर–उधर बहती हैं॥८॥

गङ्गार निकटे बहे यमुनासुन्दरी।
अन्य धारा–मध्ये सरस्वती विद्याधरी॥९॥

भगवती–भागीरथी गङ्गाके साथ मिलकर पश्चिम तटकी ओर सुन्दर श्रीयमुना महारानी बहती हैं, और विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती अन्य एक धारामें प्रवाहित होती हैं॥९॥

ताम्रपर्णी कृतमाला ब्रह्मपुत्रत्रय।
यमुनार पर्वूभागे दीर्घ धारामय॥१०॥

यमुनाके पूर्व भागमें प्रबल प्रवाहवाली ताम्रपर्णी, कृतमाला और ब्रह्मपुत्र नामक तीनों नदियाँ प्रवाहित होती हैं॥१०॥

सरयू, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, गोमती।
प्रस्थे बहे गोदावरी सह द्रुतगति॥११॥

सरयु, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, गोमती आदि लोकपावनी पवित्र नदियाँ श्रीगोदावरीके साथ मिलकर प्रबल–वेगसे प्रवाहित होती हैं॥११॥

एइ सब धारा परस्पर करि' छेद।
एक नवद्वीपे नवविध करे भेद॥१२॥

ये सभी धाराएँ विभिन्न धाराओंके रूपमें एक नवद्वीपको नौ भागोंमें विभाजित करती हैं॥१२॥

प्रभुर इच्छाय कभु धारा शुष्क हय।
पुनः इच्छा हैले धारा हय जलमय॥१३॥

प्रभुकी इच्छासे कभी तो ये धाराएँ सूख जाती हैं और कभी पुनः प्रभुकी इच्छासे जलमय हो जाती हैं॥१३॥

प्रभुर इच्छाय कभु डुबे कोन स्थान।
प्रभुर इच्छाय पुनः देय त' दर्शन॥१४॥

प्रभुकी इच्छासे कभी कोई स्थान जलमें डूब जाता है और कभी पुनः प्रभुकी इच्छासे दर्शन देता है॥१४॥

निरवधि एइरूप धाम लीला करे।
भाग्यवान् जनप्रति सर्वकाल स्फुरे॥१५॥

यद्यपि इस प्रकार यह धाम निरन्तर लीला करता है, तथापि सौभाग्यशाली व्यक्तिके प्रति यह धाम सब समय प्रकाशित रहता है॥१५॥

उत्कट वासना यदि भक्तहृदे हय।
सर्वद्वीप सर्वधारा दर्शन मिलय॥१६॥

यदि किसी भक्तके हृदयमें उन सभी धाराओंके दर्शनकी प्रबल वासना होती है, तो उसे सभी द्वीपों और सभी धाराओंका दर्शन प्राप्त होता है॥१६॥

कभु स्वप्ने, कभु ध्याने, कभु दृष्टि–योगे।
धामेर दर्शन पाय भक्तिर संयोगे॥१७॥

ऐसा भक्त कभी स्वप्नमें, कभी ध्यानमें और कभी साक्षात् नेत्रोंसे भक्तिके संयोग द्वारा धामका दर्शन प्राप्त करता है॥१७॥

श्रीअन्तर्द्वीप

गङ्गा—यमुनार योगे जेइ द्वीप रय।
अन्तर्द्वीप तार नाम सर्वशास्त्रे कय॥१८॥

गङ्गा और यमुनाके मिलनेसे जो द्वीप बना है, सभी शास्त्र उसे अन्तर्द्वीप कहकर पुकारते हैं॥१८॥

अन्तर्द्वीप—मध्ये आछे पीठ मायापुर।
जथाय जन्मिल प्रभु चैतन्यठाकुर॥१९॥

अन्तर्द्वीपके मध्यमें मायापुर योगपीठ है, जहाँपर श्रीचैतन्य महाप्रभुने जन्म ग्रहण किया है॥१९॥

मायापुर, व्रजका गोकुल महावन—

गोलोकेर अन्तर्वर्त्ती जेइ महावन।
मायापुर नवद्वीपे जान भक्तगण॥२०॥

गोलोकके अन्तर्गत जो गोकुल महावन है, वही श्रीनवद्वीपधाममें मायापुर है॥२०॥

श्रीनवद्वीपधाममें अन्यान्य सभी धाम तथा सभी तीर्थोंका वास—

श्वेतद्वीप, वैकुण्ठ, गोलोक, वृन्दावन।
नवद्वीपे सब तत्त्व आछे सर्वक्षण॥२१॥

श्वेतद्वीप, वैकुण्ठ, गोलोक और वृन्दावन श्रीनवद्वीपधाममें सब समय विराजमान रहते हैं॥२१॥

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची आर।
अवन्ती, द्वारका सेइ पुरी सप्त सार॥२२॥
नवद्वीपे से—समस्त निज निज स्थाने।
नित्य विद्यमान गौरचन्द्रेर विधाने॥२३॥

अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जैन) और द्वारका नामक सातों पुरियाँ श्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत महाप्रभुकी इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंपर नित्य विराजमान हैं॥२२-२३॥

गङ्गाद्वार मायार स्वरूप मायापुर।
जाहार माहात्म्य शास्त्रे आछये प्रचुर॥२४॥

गङ्गाद्वारपर स्थित माया (हरिद्वार) नामक नगरी, जिसका माहात्म्य शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंपर वर्णन

किया गया है, वह भी अपने वास्तविक स्वरूपसे मायापुरमें ही विराजमान है॥२४॥

सेइ मायापुरे जे जाय एकबार।
अनायासे हय सेइ जड़माया पार॥२५॥

(सभी तीर्थोंके वासस्थान) उस मायापुरमें जो एक बार भी जाता है, वह अनायास ही जड़मायाको पार कर लेता है॥२५॥

मायापुरमें भ्रमण करनेका फल—

मायापुरे भ्रमिले मायार अधिकार।
दूरे जाय, जन्म कभु नहे आरबार॥२६॥

मायापुरमें भ्रमण करनेपर मायाका अधिकार दूर हो जाता है, और भ्रमण करनेवाले व्यक्तिको पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता अर्थात् इस संसारमें नहीं आना पड़ता॥२६॥

श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाकी विधि

मायापुर—उत्तरे सीमन्तद्वीप हय।
परिक्रमा—विधि साधु—शास्त्रे सदा कय॥२७॥

अन्तर्द्वीपे मायापुर करिया दर्शन।
श्रीसीमन्तद्वीपे चल विज्ञ भक्तजन॥२८॥

मायापुरके उत्तरमें सीमन्तद्वीप है। परिक्रमा करनेकी विधिके विषयमें साधु और शास्त्र सदैव कहते हैं कि हे विज्ञ भक्तो! अन्तर्द्वीप श्रीमायापुरका दर्शन करके श्रीसीमन्तद्वीपमें चलो॥२७-२८॥

गोद्रुमाख्यद्वीप हय मायार दक्षिणे।
ताहा भ्रमि' चल मध्यद्वीप हृष्टमने॥२९॥

सीमन्तद्वीपसे मायापुरके दक्षिणमें स्थित गोद्रुम नामक द्वीपके दर्शन करके आनन्दपूर्वक मध्यद्वीप चलो॥२९॥

एइ चारिद्वीप जाह्नवीर पूर्वतीरे।
देखिया जाह्नवी पार हओ धीरे धीरे॥३०॥

ये चारों द्वीप (अन्तर्द्वीप, सीमन्तद्वीप, गोद्रुमद्वीप और मध्यद्वीप) जाह्नवीके पूर्व तटपर स्थित हैं। इन चारों द्वीपोंका दर्शन करनेके उपरान्त अन्य पाँच द्वीपों (कोलद्वीप, ऋतुद्वीप, जह्नुद्वीप, मोदद्रुमद्वीप और रुद्रद्वीप) के दर्शन हेतु धीरे-धीरे (गङ्गामें

स्नान–आचमन करनेके उपरान्त गङ्गादेवीकी स्तव–स्तुति गान करते हुए तथा आपकी कृपासे ही धामके दर्शन सम्भवपर है, ऐसी प्रार्थना करते हुए) जाह्नवी (गङ्गा) पार करो॥३०॥

कोलद्वीप अनायासे करिया भ्रमण।
ऋतुद्वीप–शोभा तबे कर दरशन॥३१॥

कोलद्वीपमें अनायास ही भ्रमण करके ऋतुद्वीपकी शोभाका दर्शन करो॥३१॥

तारपर जह्नुद्वीप परम सुन्दर।
देखि' मोदद्रुमद्वीपे चल विज्ञवर॥३२॥

हे विज्ञवर! उसके उपरान्त परम सुन्दर जह्नुद्वीपका दर्शनकर मोदद्रुमद्वीपकी ओर चलो॥३२॥

रुद्रद्वीप देख पुनः गङ्गा ह'ये पार।
भ्रमि' मायापुर भक्त चल आरबार॥३३॥

गोदद्रुमद्वीप दर्शनके उपरान्त रुद्रद्वीपका दर्शन करो और पुनः गङ्गा पार करके एकबार फिरसे मायापुर आ जाओ॥३३॥

तथाय श्रीजगन्नाथ–शचीर मन्दिरे।
प्रभुर दर्शने प्रवेशह धीरे धीरे॥३४॥

वहाँपर श्रीजगन्नाथ मिश्र और माता श्रीशचीदेवीके मन्दिर (योगपीठ) में महाप्रभुके दर्शन करने हेतु धीरे–धीरे (नामसङ्कीर्त्तन और निकट स्थित अन्यान्य लीलास्थलियोंसे कृपाभिक्षा करते हुए तथा धाम–परिक्रमा करते समय जाने–अनजानेमें किये हुए अपराधोंके लिए धामसे क्षमा–याचना करते हुए) प्रवेश करो॥३४॥

सर्वकाले एइरूप परिक्रमा हय।
जीवेर अनन्त सुखप्राप्तिर आलय॥३५॥

सोलह कोस श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा सब समय इसी विधिसे ही होती है। यह परिक्रमा जीवोंको अनन्त सुख प्रदान करनेका आलयस्वरूप है॥३५॥

परिक्रमा करनेका सर्वश्रेष्ठ समय

विशेषतः माकरी–सप्तमी–तिथि गते।
फाल्गुनी पूर्णिमावधि श्रेष्ठ सर्वमते॥३६॥

सभी भक्तोंके मतानुसार परिक्रमा करनेका श्रेष्ठ समय माकरी–सप्तमी तिथिसे आरम्भकर फाल्गुनी पूर्णिमा तक है॥३६॥

गौरपूर्णिमाके दिन मायापुर दर्शन करनेका फल—

परिक्रमा समाधिया जेइ महाजन।
जन्मदिने मायापुर करेन दर्शन॥३७॥

निताइ–गौराङ्ग ता'रे कृपा वितरिया।
भक्ति–अधिकारी करे पदछाया दिया॥३८॥

श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा समाप्त करके जो व्यक्ति श्रीगौरहरिके जन्मदिवस (गौरपूर्णिमा) पर मायापुरका दर्शन करता है, उस व्यक्तिको श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीगौराङ्ग महाप्रभु अपनी पदछायारूपी कृपा देकर भक्तिका अधिकारी बना देते हैं॥३७–३८॥

संक्षेपे कहिनु परिक्रमा–विवरण।
विस्तारिया बलि एबे करह श्रवण॥३९॥

इस अध्यायमें मैंने संक्षेपमें परिक्रमाका विवरण प्रस्तुत किया है। अगले अध्यायोंमें मैं उसका

विस्तृत रूपसे वर्णन करूँगा। आप एकान्त चित्तसे श्रवण कीजिये॥३९॥

श्रीगौड़मण्डल-परिक्रमा करनेका फल—

जेइ जन भ्रमे एकविंशति योजन।
अचिरे लभय सेइ गौरप्रेमधन॥४०॥

जो व्यक्ति इक्कीस योजन (चौरासी कोस अर्थात् एक सौ अड़सठ मील) परिधिवाले श्रीगौड़मण्डलकी परिक्रमा करता है, वह अतिशीघ्र ही गौरप्रेमरूपी धन प्राप्त कर लेता है॥४०॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

जाह्नवा-निताइ-पदछाया जा'र आश।
ए भक्तिविनोद करे ए तत्त्व प्रकाश॥४१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे भक्तिविनोद द्वारा इस तत्त्वको प्रकाशित किया जा रहा है॥४१॥

तृतीय अध्याय समाप्त।

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजीव गोस्वामी

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजीव गोस्वामी

चतुर्थ अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय नवद्वीपचन्द्र शचीसुत।
जय जय नित्यानन्दराय अवधूत॥१॥

श्रीनवद्वीपके चन्द्रस्वरूप श्रीशचीनन्दनकी जय हो! जय हो। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो! जय हो॥१॥

जय जय नवद्वीप सर्वधामसार।
जथाय हइल चैतन्य अवतार॥२॥

सभी धामोंके सारस्वरूप उस श्रीनवद्वीपधामकी जय हो! जय हो। जहाँपर श्रीचैतन्य महाप्रभु अवतरित हुए हैं॥२॥

नवद्वीपमें मात्र एक दिन रहनेका फल—

सर्वतीर्थे वास करि' जेइ फल पाइ।
नवद्वीपे लभि ताहा एकदिने भाइ॥३॥

हे भाई! अन्यान्य सभी तीर्थोंमें बहुत दिनों तक वास करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह

श्रीनवद्वीपमें केवल एक दिन रहनेमात्रसे ही प्राप्त हो जाता है॥३॥

शास्त्रोंके अनुसार श्रीनवद्वीप-परिक्रमाका विवरण—

सेइ नवद्वीप-परिक्रमा-विवरण।
शास्त्र आलोचिया गाइ शुन साधुजन॥४॥

हे सज्जनो! सुनो, मैं शास्त्रोंकी आलोचना करके उसी श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमाके विवरणका गान कर रहा हूँ॥४॥

ग्रन्थकारके प्राणधन—

शास्त्रेर लिखन आर वैष्णव-वचन।
प्रभु-आज्ञा—एइ तिन मम प्राणधन॥५॥
ए तिने आश्रय करि' करिब वर्णन।
नदीया-भ्रमण-विधि शुन सर्वजन॥६॥

शास्त्रोंकी वाणी, वैष्णवोंके वचन और श्रीमन् महाप्रभुकी आज्ञा—ये तीनों मेरे प्राणधन हैं। इन तीनोंकी शरण ग्रहण करके ही मैं श्रीनवद्वीप-परिक्रमाकी विधिका वर्णन करूँगा। कृपाय आप सभी श्रवण कीजिये॥५-६॥

श्रीजीव गोस्वामीका गृह-त्याग

श्रीजीवगोस्वामी जबे छाड़िलेन घर।
'नदीया' 'नदीया' बलि' व्याकुल अन्तर॥७॥

जिस समय श्रीजीव गोस्वामीने अपने घरका त्याग किया, उस समय "नदिया, नदिया" पुकारते हुए उनका हृदय व्याकुल हो उठा॥७॥

चन्द्रद्वीप छाड़ि' तेंह जत पथ चले।
भासे दुइ चक्षु ताँ'र नयनेर जले॥८॥

अपने निवास स्थल चन्द्रद्वीपको छोड़कर श्रीनवद्वीपधामकी ओर अग्रसर होते समय पूरे रास्तेमें उनके दोनों नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा प्रवाहित होती रही॥८॥

गृह-त्यागके समय श्रीजीव गोस्वामीकी लालसमयी प्रार्थना—

हा गौराङ्ग नित्यानन्द जीवेर जीवन।
कबे मोरे कृपा करि' दिबे दरशन॥९॥

वे क्रन्दन करते हुए उच्च स्वरसे कह रहे थे—जीवोंके जीवनस्वरूप हे श्रीगौराङ्ग! हे नित्यानन्द प्रभो! आपलोग कब कृपा करके मुझे अपना दर्शन प्रदान करेंगे?॥९॥

हा! हा! नवद्वीपधाम सर्वधाम–सार।
कबे वा देखिब आमि, बले बार बार॥१०॥

हा! हा! अन्यान्य सभी धामोंके सारस्वरूप हे श्रीनवद्वीपधाम! मुझे आपके दर्शन कब प्राप्त होंगे? बार–बार ऐसा कहते हुए अग्रसर हो रहे थे॥१०॥

श्रीजीव गोस्वामीका दिव्य स्वरूप—

कैशोर वयस जीव सुन्दर गठन।
वैराग्येर पराकाष्ठा अपूर्व दर्शन॥११॥

श्रीजीव गोस्वामी कैशोर वयस तथा सुन्दर सुगठित शरीर और वैराग्यकी पराकाष्ठासे युक्त अपूर्व सुन्दर रूपवाले थे॥११॥

चलिया चलिया कतदिने महाशय।
नवद्वीपे उत्तरिला सदा प्रेममय॥१२॥

कुछ दिनों तक चलते–चलते वे श्रीनवद्वीपधाममें उपस्थित हुए। उनका हृदय सदैव प्रेमसे गद्गद हो रहा था॥१२॥

नवद्वीपके दर्शनमात्रसे श्रीजीवकी स्थिति—

दूर हैते नवद्वीप करि' दरशन।
दण्डवत् ह'ये पड़े पाय अचेतन॥१३॥

दूरसे ही श्रीनवद्वीपधामका दर्शनकर दण्डवत् करते समय मूर्च्छित हो गये॥१३॥

श्रीजीवका श्रीनवद्वीपमें प्रवेश—

कतक्षण परे निज चित्त करि' स्थिर।
प्रवेशिल नवद्वीपे पुलक-शरीर॥१४॥

कुछ देरके बाद अपने चित्तको स्थिर करके उन्होंने पुलकित शरीरसे श्रीनवद्वीपधाममें प्रवेश किया॥१४॥

बारकोणा घाटे आसि' जिज्ञासे सबारे।
कोथा प्रभु नित्यानन्द देखाओ आमारे॥१५॥

बारकोना घाट पहुँचनेपर वे सभीसे जिज्ञासा करने लगे कि श्रीनित्यानन्द प्रभु कहाँ हैं? कृपया मुझे उनका दर्शन कराओ॥१५॥

श्रीजीवेर भाव देखि' कोन महाजन।
प्रभु नित्यानन्द जथा लय ततक्षण॥१६॥

श्रीजीव गोस्वामीकी भावावस्थाको देखकर कोई सज्जन व्यक्ति उसी समय उन्हें वहाँ ले गया, जहाँपर श्रीनित्यानन्द प्रभु विराजमान थे॥१६॥

श्रीजीवका आगमन जानकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके हृदयमें उल्लास—

हेथा प्रभु नित्यानन्द अट्ट अट्ट हासि'।
श्रीजीव आसिबे बलि' अन्तरे उल्लासी॥१७॥

उधर श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने हृदयमें यह जानकर कि श्रीजीव अभी तुरन्त मेरे समीप आयेगा, अत्यन्त उल्लासपूर्वक अट्ट-अट्ट हास्य कर रहे थे॥१७॥

आज्ञा दिल दासगणे श्रीजीवे आनिते।
अनेक वैष्णव जाय 'श्रीजीवे' सम्बोधिते॥१८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने अपने सेवकोंको श्रीजीवको ढूँढ़कर अपने समीप लानेकी आज्ञा दी। "श्रीजीव" पुकारते हुए अनेक वैष्णव इधर-उधर श्रीजीवको ढूँढ़ने लगे॥१८॥

सात्त्विक विकारपूर्ण 'श्रीजीवेर' शरीर।
देखि' 'जीव' बलि' सबे करिलेन स्थिर॥१९॥

श्रीजीव गोस्वामीके शरीरको दिव्य सात्त्विक विकारोंसे युक्त देखकर उन्होंने निश्चित किया कि यही जीव गोस्वामी हैं॥१९॥

केह केह आगे गिया महाप्रेमभरे।
नित्यानन्द–प्रभु–आज्ञा विज्ञापन करे॥२०॥

किसी–किसीने आगे बढ़कर उन्हें अत्यधिक प्रेमसे श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आज्ञा कह सुनायी॥२०॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुका नाम श्रवण करनेमात्रसे श्रीजीवकी स्थिति—

प्रभु नित्यानन्द–नाम करिया श्रवण।
धरणीते पड़े जीव ह’ये अचेतन॥२१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुका नाम श्रवण करते ही श्रीजीव मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥२१॥

क्षणेक उठिया बले बड़ भाग्य मम।
प्रभु–नित्यानन्द–कृपा पाइल अधम॥२२॥

थोड़ी देरके बाद उठकर कहने लगे कि मैं बहुत सौभाग्यशाली हूँ, मेरे जैसे अधमको भी श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा प्राप्त हो गयी॥२२॥

श्रीजीवका वैष्णवोचित व्यवहार—

से–सब वैष्णवगणे दण्डवत् ह’ये।
प्रणाम करये ‘जीव’ प्रफुल्ल हृदये॥२३॥

श्रीजीव द्वारा वैष्णवोंके चरणकमलोंमें प्रार्थना—

बले, तुमि सबे मोरे हइले सदय।
नित्यानन्द–पदपाइ सर्वशास्त्रे कय॥२४॥

श्रीजीव गोस्वामीने प्रफुल्लित हृदयसे उन सब वैष्णवोंको दण्डवत् प्रणाम किया तथा कहने लगे—सभी शास्त्र कहते हैं कि यदि आप सभीकी कृपा हो जाय, तो मेरे जैसा व्यक्ति भी श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीचरणकमलोंको प्राप्त कर सकता है॥२४॥

जीवेर सौभाग्य हेरि' कतेक वैष्णव।
चरणेर धूलि लय करिया उत्सव॥२५॥

श्रीजीव गोस्वामीके सौभाग्यको देखकर कुछेक वैष्णवोंने उनके चरणोंकी धूलिको लेकर उत्सव मनाया अर्थात् प्रसन्नचित्त होकर अपने–अपने अङ्गोंपर उसे मलने लगे॥२५॥

सबे मिलि' जीवे लय नित्यानन्द जथा।
वैष्णवे वेष्टित कभु कहे कृष्णकथा॥२६॥

सभी मिलकर जीव गोस्वामीको वहाँ ले गये, जहाँपर श्रीनित्यानन्द प्रभु अनेक वैष्णवों द्वारा घिरे हुए थे तथा (भावावस्था अथवा अर्द्धबाह्य दशाके

कारण) बीच-बीचमें श्रीकृष्णकथाका गान कर रहे थे॥२६॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके अपूर्व रूपका दर्शन करनेपर श्रीजीवकी स्थिति—

प्रभु नित्यानन्देर देखिया दिव्यरूप।
जीवेर शरीरे हय भाव अपरूप॥२७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके दिव्य रूपको देखकर जीव गोस्वामीके शरीरमें अपूर्व भाव उदित होने लगे॥२७॥

कि अपूर्व रूप आज हेरिनु बलिया।
पड़िल धरणीतले अचेतन हइया॥२८॥

"अहा! आज कैसे अपूर्व रूपके दर्शन प्राप्त हुए हैं।" ऐसा कहते-कहते श्रीजीव अचेतन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥२८॥

श्रीजीवका श्रीनित्यानन्द प्रभुसे मिलन—

महाकृपावशे प्रभु नित्यानन्दराय।
जीवे उठाइया लय आपनार पाय॥२९॥

अत्यधिक कृपावशतः श्रीनित्यानन्द प्रभुने जीवको उठाकर अपने निजजनके रूपमें स्वीकार किया॥२९॥

व्यस्त ह'ये श्रीजीवगोस्वामी दाँड़ाइल।
कर जुड़ि' नित्यानन्दे कहिते लागिल॥३०॥

श्रीजीव गोस्वामी अत्यधिक व्याकुल होकर खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर श्रीनित्यानन्द प्रभुसे कहने लगे॥३०॥

श्रीजीव द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुकी स्तुति

विश्वरूप विश्वधाम तुमि बलराम।
आमि जीव किवा जानि तव गुणग्राम॥३१॥

हे प्रभो! आप विश्वरूप, विश्वधाम और साक्षात् श्रीबलराम हैं। मैं आपके गुणोंके विषयमें क्या जानता हूँ?॥३१॥

तुमि मोर प्रभु नित्य, आमि तव दास।
तोमार चरणछाया एकमात्र आश॥३२॥

आप मेरे नित्य प्रभु हैं और मैं आपका नित्यदास हूँ। आपके श्रीचरणकमलोंका आश्रय प्राप्त करना ही मेरी एकमात्र अभिलाषा है॥३२॥

तुमि जा'रे कर दया सेइ अनायासे।
श्रीचैतन्य-पद पाय, प्रेमजले भासे॥३३॥

आप जिसपर कृपा करते हैं, वह अनायास ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंको प्राप्त करके प्रेमरूपी अमृतमें गोते लगाने लगता है॥३३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपाके बिना श्रीमन् महाप्रभुकी कृपा-प्राप्ति असम्भव—

तोमार करुणा बिना गौर नाहि पाय।
शत जन्म भजे यदि गौराङ्गे हियाय॥३४॥

आपकी कृपाके बिना सैकड़ों जन्मों तक अपने हृदयमें श्रीगौराङ्गका भजन करनेपर भी कोई श्रीमन् महाप्रभुको प्राप्त नहीं कर सकता॥३४॥

गौर दण्ड करे यदि तुमि रक्षा कर।
तुमि जा'रे दण्ड कर गौर तार पर॥३५॥

यदि श्रीगौरहरि किसीको दण्ड देना चाहते हैं, तो आप उसकी रक्षा कर सकते हैं। परन्तु यदि आप किसीको दण्डित करते हैं तो श्रीमन् महाप्रभु उसकी कभी भी रक्षा नहीं करते॥३५॥

श्रीजीव द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें प्रार्थना—

अतएव प्रभु तव चरण-कमले।
लइनु शरण आमि सुकृतির বলে॥৩৬॥

अतएव हे प्रभो! मैंने सुकृतिके बलपर आपके श्रीचरणकमलोंकी शरण ग्रहण की है॥३६॥

तुमि कृपा करि' मोरे देह अनुमति।
श्रीगौर दर्शन पाइ, गौरे हउ रति॥३७॥

आप कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान कीजिये ताकि मैं श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शन प्राप्त कर सकूँ और उनमें मेरी प्रीति हो॥३७॥

श्रीजीव गोस्वामी द्वारा सदैन्य अपने सौभाग्यका वर्णन

जबे रामकेलि-ग्रामे श्रीगौराङ्गराय।
आमार पितृव्यद्वये लइलेन पाय॥३८॥

सेइकाले शिशु आमि सजल नयने।
हेरिलाम गौररूप सदा जागे मने॥३९॥

जब रामकेलि नामक ग्राममें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने मेरे दोनों पितृव्यों (चाचाओं) को अपने श्रीचरण-कमलोंमें आश्रय दिया था—उस समय मैंने अपनी शिशु-अवस्थामें सजल (अश्रुपूर्ण) नेत्रोंसे श्रीगौरके जिस रूपका दर्शन किया था, वह सदैव मेरे हृदयमें स्फुरित होता रहता है॥३८-३९॥

श्रीगौराङ्ग–पदे पड़ि' करिनु प्रणति।
श्रीअङ्ग स्पर्शिया सुख पाइलाम अति॥४०॥

मैंने श्रीगौराङ्गके श्रीचरणकमलोंमें गिरकर प्रणाम किया था, और उनके श्रीअङ्गको स्पर्श करके बहुत प्रसन्न हुआ था॥४०॥

सेइकाले गौर मोरे कहिला वचन।
ओहे 'जीव' कर तुमि शास्त्र अध्ययन॥४१॥

अध्ययन समापिया नवद्वीपे चल।
नित्यानन्द–श्रीचरणे पाइबे सकल॥४२॥

उस समय श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने मुझसे कहा था—हे जीव! तुम अभी शास्त्रोंका अध्ययन करो। अध्ययन समाप्त करके श्रीनवद्वीप चले जाना। वहाँ श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीचरणकमलोंमें तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा॥४१–४२॥

सेइ आज्ञा शिरे धरि' आमि अकिञ्चन।
यथासाध्य विद्या करियाछि उपार्जन॥४३॥

मुझ अकिञ्चनने उनकी (महाप्रभुकी) उस आज्ञाको शिरोधार्यकर यथासाध्य विद्या अर्जित की है॥४३॥

चन्द्रद्वीपे पड़िलाम साहित्यादि जत।
वेदान्त–आचार्य नाहि पाइ मन मत॥४४॥

चन्द्रद्वीपमें मैंने साहित्य आदि तो पढ़ा था, किन्तु अपने मन पसन्दका कोई भी वेदान्त–आचार्य अभी तक नहीं मिला॥४४॥

श्रीजीव गोस्वामीके प्रति श्रीमन् महाप्रभुकी आज्ञा—

प्रभु आज्ञा दिल मोरे वेदान्त पड़िते।
वेदान्त–सम्मत कृष्णभक्ति प्रकाशिते॥४५॥

श्रीमन् महाप्रभुने मुझे वेदान्त पढ़नेकी आज्ञा दी थी और वेदान्त–सम्मत कृष्णभक्तिको प्रकाशित करनेके लिए कहा था॥४५॥

आइलाम नवद्वीपे तोमार चरणे।
जेइरूप आज्ञा हय करि आचरणे॥४६॥

अब मैं नवद्वीप आया हूँ और आपके श्रीचरणकमलोंमें शरणागत हूँ, आप मुझे जो आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करूँगा॥४६॥

आज्ञा हय जाइ क्षेत्रे प्रभुर चरणे।
वेदान्त पड़िब सार्वभौमेर सदने॥४७॥

यदि आपकी आज्ञा हो तो, मैं श्रीक्षेत्रमण्डल (पुरी) जाकर प्रभुके श्रीचरणकमलोंका दर्शन करूँ और सार्वभौम भट्टाचार्यके सदनमें जाकर वेदान्तकी शिक्षा प्राप्त करूँ॥४७॥

जीवेर मधुर वाक्ये नित्यानन्दराय।
जीवे कोले करि' काँदे धैर्य नाहि पाय॥४८॥

जीवके मधुर वचनोंको सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने जीवको अपनी गोदमें ले लिया और धैर्य धारण नहीं कर पानेके कारण रोने लगे॥४८॥

बले शुन, ओहे 'जीव' निगूढ़ वचन।
सर्वतत्त्व अवगत रूप—सनातन॥४९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! मेरे इन निगूढ़ वचनोंको सुनो। रूप तथा सनातन सभी तत्त्वोंको जानते हैं॥४९॥

श्रीजीवके आगमनसे पूर्व ही श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रति श्रीमन् महाप्रभुकी आज्ञा—

प्रभु मोरे आज्ञा दिल बलिते तोमाय।
क्षेत्रे नाहि जाओ तुमि, ना रह हेथाय॥५०॥

श्रीमन् महाप्रभुने मुझे आज्ञा दी थी कि तुम्हारे यहाँ आनेपर मैं तुम्हें ऐसा बताऊँ कि तुम न तो क्षेत्रमण्डल (पुरी) जाओ और न ही यहाँपर रहो॥५०॥

तुमि आर रूप–सनातन दुइ भाइ।
प्रभुर एकान्त दास जानेन सबाइ॥५१॥

तुम एवं रूप–सनातन नामक दोनों भाई महाप्रभुके एकान्त दास हो—ऐसा सभी जानते हैं॥५१॥

श्रीजीवके प्रति श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आज्ञा

तोमा–प्रति आज्ञा एइ वाराणसी गिया।
वाचस्पति निकटेते वेदान्त पड़िया॥५२॥

मेरी तुम्हारे प्रति यही आज्ञा है कि तुम वाराणसी जाकर मधुसूदन वाचस्पतिके[१] निकट वेदान्त पढ़ो॥५२॥

---

[१] श्रीमधुसूदन वाचस्पति श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके छात्र थे। इन्होंने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके समीप वेदान्त–सूत्रके शङ्कर–भाष्य, रामानुजके श्रीभाष्य आदि सभी भाष्योंका अध्ययन किया था। विशेषतः श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमन् महाप्रभु

(अगले पृष्ठपर)

एकेबारे जाह तथा हैते वृन्दावन।
तथा कृपा करिबेन रूप–सनातन॥५३॥

वहाँसे सीधे वृन्दावन जाओ। वहाँपर रूप–सनातन तुमपर कृपा करेंगे॥५३॥

रूपेर अनुग ह'ये युगल–भजन।
कर तथा वेदान्तादि शास्त्र–आलापन॥५४॥

श्रीरूपके आनुगत्यमें श्रीराधाकृष्ण–युगलका भजन करो और वेदान्त आदि शास्त्रोंकी आलोचना करो॥५४॥

गौरहरिके मुखसे जो वेदान्तसूत्रकी व्याख्या श्रवण की थी, उसे भी इन्होंने उनसे अध्ययन किया था। श्रीचैतन्य महाप्रभुने इन्हें काशीमें रहकर अध्यापन करनेके लिए आदेश दिया था। इन्होंने श्रीमध्व–सम्प्रदायके व्यासतीर्थ द्वारा रचित मणि–मञ्जरी नामक क्षुद्र–ग्रन्थमें निर्विशेष अद्वैतवादका जो अपनी सुदृढ़ युक्ति और तर्क एवं शास्त्र प्रमाणके द्वारा खण्डन किया था, उससे अद्वैतवादी या मायावादी बहुत घबरा गये। वे उस समय श्रीमधुसूदन वाचस्पतिके शरणागत हुए। उनके बार–बार आग्रह करनेपर इन्होंने एक बृहद् ग्रन्थ 'अद्वैतसिद्धि' की रचना की, जो बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। फिर भी मणि–मञ्जरीके युक्ति–तर्कोंका पूरी तरहसे उत्तर नहीं दिया जा सका।

श्रीमद्भागवत ही वेदान्तसूत्रका अकृत्रिम भाष्य—

भागवत–शास्त्र हय सर्वशास्त्र सार।
वेदान्तसूत्रेर भाष्य करह प्रचार॥५५॥

ब्रह्मसूत्रके रचयिता कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवत अमल महापुराण, सभी शास्त्रोंका सार तथा वेदान्तसूत्रका अकृत्रिम भाष्य है—ऐसा प्रचार करो॥५५॥

सार्वभौमे कृपा करि' गौराङ्ग श्रीहरि।
ब्रह्मसूत्र व्याख्या कैल भागवत धरि'॥५६॥

तुम जानते ही हो कि सार्वभौम भट्टाचार्यके प्रति कृपा करके श्रीगौरहरिने श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीब्रह्मसूत्रकी व्याख्या की थी॥५६॥

सेइ विद्या सार्वभौम श्रीमधुसूदने।
शिखाइल क्षेत्रधामे परम यतने॥५७॥

वही विद्या सार्वभौमने बहुत यत्नसे श्रीमधुसूदन वाचस्पतिको श्रीजगन्नाथ पुरीमें प्रदान की है॥५७॥

सेइ मधुवाचस्पति प्रभु–आज्ञा पे'ये।
आछे वाराणसी धामे देख तुमि जे'ये॥५८॥

वे ही मधुसूदन वाचस्पति प्रभुकी आज्ञासे अब वाराणसीमें रहते हैं। तुम वहीं जाकर उनसे मिलो॥५८॥

श्रीमधुसूदन वाचस्पतिका परिचय

बाह्ये तेंह सम्प्रदायी वैदान्तिक हय।
शाङ्करी संन्यासी ताँर निकटे पड़य॥५९॥

क्रमे क्रमे संन्यासीगणेरे कृपा करि।
गौराङ्गेर व्याख्या शिक्षा देय सूत्र धरि'॥६०॥

यद्यपि बाहरी रूपसे वे वैदान्तिक सम्प्रदायी हैं, और शङ्कर-सम्प्रदायके संन्यासियोंको पढ़ाते हैं, तथापि समय आनेपर वे कृपा करके उन संन्यासियोंको श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी व्याख्याके अनुसार सूत्रका अर्थ बतलाते हैं॥५९-६०॥

पृथक भाष्येर एबे नाहि प्रयोजन।
भागवते कय सूत्र-भाष्येते गणन॥६१॥

अभी वेदान्तसूत्रका अलगसे भाष्य लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रीमद्भागवतमें सभी वेदान्त-सूत्रोंकी यथार्थ व्याख्या की गयी है॥६१॥

काले जबे भाष्येर हइबे प्रयोजन।
'श्रीगोविन्दभाष्य' तबे ह'बे प्रकटन॥६२॥

जिस समय भाष्यकी आवश्यकता होगी, उस समय 'श्रीगोविन्दभाष्य' स्वयं ही प्रकट हो जायेगा॥६२॥

सार्वभौम–सम्पर्के सेइ गोपीनाथ।
शुनिल प्रभुर भाष्य सार्वभौम–साथ॥६३॥

सार्वभौम भट्टाचार्यके साथ सम्बन्ध होनेके कारण गोपीनाथ (आचार्य) ने भी श्रीमन् महाप्रभुके मुखसे (सार्वभौमको भाष्य सुनाते समय) भाष्य श्रवण किया था॥६३॥

श्रीगोपीनाथ आचार्य ही श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु—

काले तेंह प्रभुर इच्छाय जन्म ल'ये।
बलदेववेशे जा'बे जयपुर–जये॥६४॥

समय आनेपर वे ही (श्रीगोपीनाथ आचार्य) प्रभुकी इच्छासे पुनः जन्म लेकर श्रीबलदेव (विद्याभूषण) के रूपमें जयपुरको विजय करेंगे॥६४॥

तथा श्रीगोविन्द बले भाष्य प्रकाशिया।
सेविबे गौराङ्ग–पद जीवे निस्तारिया॥६५॥

वे वहाँ जाकर 'श्रीगोविन्द' नामक भाष्यको प्रकाशित करेंगे और श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके श्रीचरण-कमलोंकी सेवाको प्रकाशित करके जीवोंका उद्धार करेंगे (श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु द्वारा सेवित श्रीमन् महाप्रभुका श्रीविग्रह आज भी श्रीराधागोपीनाथ मन्दिरके निकट विराजमान है।) ॥६५॥

एइ सब गूढ़ कथा रूप-सनातन।
सकल कहिबे तोमा-प्रति दुइजन॥६६॥

यह सब गूढ़ कथाएँ तुम्हें सम्पूर्ण रूपसे श्रीरूप और श्रीसनातन दोनों भाई मिलकर बतलायेंगे॥६६॥

नित्यानन्द-वाक्य शुनि' श्रीजीव गोंसाइ।
काँदिया लोटाय भूमे संज्ञा आर नाइ॥६७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके वचनोंको सुनकर श्रीजीव गोस्वामी क्रन्दन करते-करते भूमिपर लोट-पोट होने लगे और बादमें मूर्च्छित हो गये॥६७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीवमें शक्ति-सञ्चार—

कृपा करि' प्रभु निज-चरणयुगल।
श्रीजीवेर शिरे धरि' अर्पिलेन बल॥६८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कृपा करके अपने दोनों श्रीचरणकमल श्रीजीव गोस्वामीके सिरपर रख दिये और इस प्रकार उनमें शक्ति-सञ्चार की॥६८॥

जय श्रीगौराङ्ग जय नित्यानन्दराय।
बलिया नाचेन 'जीव' वैष्णव-सभाय॥६९॥

श्रीजीव गोस्वामी "जय श्रीगौराङ्ग, जय नित्यानन्द राय" कहते-कहते वैष्णवोंकी सभामें नृत्य करने लगे॥६९॥

श्रीवासादि छिल तथा जत महाजन।
जीवे नित्यानन्द-कृपा करि' दरशन॥७०॥

सबे नाचे श्रीगौराङ्ग नित्यानन्द बलि'।
महाकलरवे तथा हय हुलुस्थली॥७१॥

श्रीवास आदि जितने भी महाजन वहाँपर उपस्थित थे, वे सभी जीव गोस्वामीके प्रति श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपाको देखकर श्रीगौराङ्ग-नित्यानन्द प्रभुका नाम उच्चारण करते हुए नृत्य करने लगे। उनके उच्च स्वरसे वह स्थान मङ्गलमय हो गया॥७०-७१॥

कतक्षण परे नृत्य करि' सम्वरण।
जीवे ल'ये नित्यानन्द बसिल तखन॥७२॥

कुछ देरके बाद नृत्यको विश्राम देकर श्रीनित्यानन्द प्रभु जीवको लेकर बैठ गये॥७२॥

जीवेर हइल वासा श्रीवास–अङ्गने।
सन्ध्याकाले आइल पुनः प्रभु दरशने॥७३॥

श्रीजीव गोस्वामीके रहनेकी व्यवस्था श्रीवास–अङ्गनमें की गयी। (कुछ समय श्रीवास–अङ्गनमें रहनेके उपरान्त) श्रीजीव गोस्वामी सन्ध्याके समय पुनः नित्यानन्द प्रभुके दर्शन करने आये॥७३॥

निर्जने बसिया प्रभु गौरगुण गाय।
श्रीजीव आसिया पड़े नित्यानन्द–पाय॥७४॥

उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभु निर्जनमें बैठकर श्रीगौरहरिका गुणगान कर रहे थे। श्रीजीवने उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया॥७४॥

श्रीजीव द्वारा श्रीनवद्वीपधाम-तत्त्वके विषयमें जिज्ञासा

यत्न करि' प्रभु ता'रे निकटे बसाय।
करजोड़ करि' जीव स्वदैन्य जानाय॥७५॥

'जीव' बले,—"प्रभु मोरे करुणा करिया।
नवद्वीप–धाम–तत्त्व बल विवरिया॥"७६॥

बहुत आदरपूर्वक श्रीनित्यानन्द प्रभुने उन्हें अपने निकट बैठाया। हाथ जोड़कर श्रीजीव गोस्वामी दैन्यपूर्वक कहने लगे—"हे प्रभो! मुझपर कृपा करके श्रीनवद्वीपधामके तत्त्वका विस्तृत रूपसे वर्णन कीजिये॥"७५–७६॥

प्रभु बले,—"ओहे जीव, बलिब तोमाय।
अत्यन्त निगूढ़ तत्त्व राखिबे हियाय॥७७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! मैं तुम्हें इस अत्यन्त निगूढ़ तत्त्वके विषयमें अवश्य बतलाऊँगा, परन्तु तुम इसे केवल अपने हृदयमें ही रखना॥७७॥

यथा तथा एबे इहा ना कर प्रकाश।
प्रकट–लीलार अन्ते हइबे विकाश॥७८॥

अभी इधर–उधर इस तत्त्वको प्रकाशित मत करना। प्रकटलीलाके अन्तमें यह स्वयं ही प्रकाशित हो जायेगा॥७८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीनवद्वीपधाम-तत्त्वका वर्णन

एइ नवद्वीप हय सर्वधाम–सार।
श्रीविरजा–ब्रह्मधाम–आदि ह'ये पार॥७९॥

वैकुण्ठेर पर श्वेतद्वीप श्रीगोलोक।
तदन्ते गोकुल, वृन्दावन, कृष्णलोक॥८०॥

यह नवद्वीप अन्यान्य सभी धामोंका सारस्वरूप है। श्रीविरजा, ब्रह्मधाम आदि पार करके वैकुण्ठ आता है और उसके उपरान्त श्वेतद्वीप श्रीगोलोक है। उस श्रीगोलोकके ऊपर गोकुल, वृन्दावन अथवा कृष्णलोक है॥७९–८०॥

सेइ लोक दुइ भावे हय त' प्रकाश।
माधुर्य–औदार्य–भेदे रसेर विकाश॥८१॥

वह लोक (श्रीकृष्णलोक) माधुर्य और औदार्यके भेदसे दो भावोंमें प्रकाशित होता है तथा रसको पुष्ट करता है॥८१॥

श्रीनवद्वीप और श्रीवृन्दावनधामका वैशिष्ट्य—

माधुर्ये औदार्य पूर्णरूपे अवस्थित।
औदार्ये माधुर्य पूर्णरूपेते विहित॥८२॥

तथापिओ जे प्रकाशे माधुर्य प्रधान।
वृन्दावन बलि' ताहा जाने भाग्यवान्॥८३॥

यद्यपि माधुर्यमें औदार्य और औदार्यमें माधुर्य पूर्ण रूपसे अवस्थित रहता है, तथापि जिस प्रकोष्ठमें माधुर्य प्रधान होता है, भाग्यवान व्यक्ति उसे वृन्दावन कहकर पुकारते हैं॥८२-८३॥

जे-प्रकाशे औदार्य प्रधान नित्य हय।
सेइ नवद्वीप-धाम सर्व वेदे कय॥८४॥

और जिस प्रकोष्ठमें सदैव औदार्य प्रधान होता है, सभी वेद उसे श्रीनवद्वीपधाम कहकर पुकारते हैं॥८४॥

श्रीनवद्वीप और श्रीवृन्दावन एक ही तत्त्व—

वृन्दावन-नवद्वीपे नाहि किछु भेद।
रसेर प्रकाश-भेदे करय प्रभेद॥८५॥

वृन्दावन और नवद्वीपमें कुछ भी भेद नहीं है, केवलमात्र रसके भेदसे ही उनका वैशिष्ट्य है॥८५॥

एइ धाम नित्यसिद्ध चिन्मय अनन्त।
जड़-बुद्धि जने ता'र नाहि पाय अन्त॥८६॥

यह धाम नित्यसिद्ध, चिन्मय और अनन्त है। जड़बुद्धिवाले व्यक्ति इस धामका अन्त नहीं पा सकते॥८६॥

ह्लादिनी–प्रभावे जीव छाड़ि' जड़–धर्म।
नित्यसिद्ध–ज्ञानबले पाय तार धर्म॥८७॥

ह्लादिनीशक्तिके प्रभावसे जीव जड़धर्मको छोड़कर नित्यसिद्ध ज्ञानके बलसे अपने वास्तविक धर्मको प्राप्त करता है॥८७॥

सर्व नवद्वीप हय चिन्मय–प्रकाश।
सेइ पीठे श्रीगौराङ्ग करेन विलास॥८८॥

सम्पूर्ण नवद्वीप ही चिन्मय तत्त्वका प्रकाश है। इसी धाममें श्रीगौराङ्ग महाप्रभु विलास करते हैं॥८८॥

चर्म–चक्षे लोके देखे प्रपञ्च–गठन।
माया आच्छादिया राखे नित्य–निकेतन॥८९॥

चर्म–चक्षुओं (मायिक नेत्रों) से लोग इसे जगत्के दूसरे–दूसरे स्थानोंके समान देखते हैं, क्योंकि माया उनके नेत्रोंको ढककर रखती है

और भगवान्के वास्तविक नित्य आवास स्थानको नहीं देखने देती॥८९॥

नवद्वीपे माया नाइ जड़ देश–काल।
किछु तथा नाहि आछे जीवेर जञ्जाल॥९०॥

श्रीनवद्वीपमें मायिक जड़–देश–काल आदि नहीं हैं। यहाँपर जीवोंके लिए किसी प्रकारका कोई जञ्जाल (मायाका बखेड़ा) नहीं है॥९०॥

किन्तु कर्मबन्ध–क्रमे जीव मायावशे।
नवद्वीपधामे प्रापञ्चिक भावे पशे॥९१॥

किन्तु अपने कर्मोंके बन्धनसे जीव मायाके वशीभूत होकर श्रीनवद्वीपधाममें प्रापञ्चिक भावसमूह देखता है॥९१॥

भाग्यक्रमे साधुसङ्गे प्रेमेर उदय।
हय जबे, तबे देखे वैकुण्ठ चिन्मय॥९२॥
अप्राकृत देश, काल, धाम–द्रव्य जत।
अनायासे देखे स्वीय चक्षे अविरत॥"९३॥

सौभाग्यसे साधुसङ्गमें रहनेके फलस्वरूप जब किसीमें प्रेमका उदय होता है, तब वह भी इस

श्रीनवद्वीपधामको साक्षात् चिन्मय वैकुण्ठलोकके रूपमें देख पाता है तथा तब उसे धाममें अवस्थित देश, काल और अन्यान्य सभी अप्राकृत वस्तुएँ अपने नेत्रोंसे निरन्तर दिखायी देती हैं॥९२-९३॥

एइ त' कहिनु आमि नवद्वीप-तत्त्व।
विचारिया देख जीव ह'ये शुद्धसत्त्व॥९४॥

मैंने तुम्हारे समक्ष इस नवद्वीपधामके तत्त्वका वर्णन किया है, अब हे जीव! तुम शुद्धसत्त्वमें प्रतिष्ठित होकर इस तत्त्वपर विचार करो॥९४॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा-पदे नित्य जा'र आश।
गूढ़तत्त्व करे भक्तिविनोद प्रकाश॥९५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंको प्राप्त करनेकी आशासे भक्तिविनोद द्वारा इस गूढ़ तत्त्वको प्रकाशित किया जा रहा है॥९५॥

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

श्रीमन् महाप्रभुका जन्मस्थान (योगपीठ)
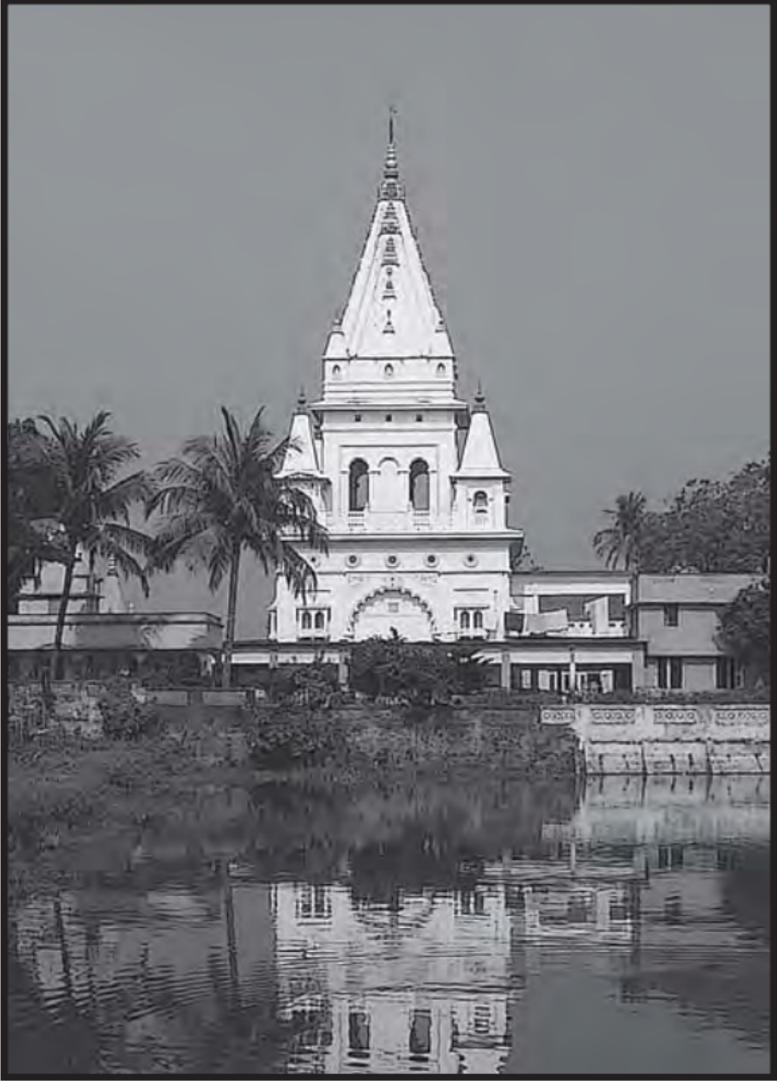
श्रीमन् महाप्रभुका जन्मस्थान (योगपीठ)

पञ्चम अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय श्रीचैतन्य शचीर नन्दन।
जय जय नित्यानन्द जाह्ववा–जीवन॥१॥

शचीनन्दन श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो! जय हो। श्रीजाह्ववाके जीवनस्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो! जय हो॥१॥

जय जय नवद्वीप सर्वधाम–सार।
यथा कलियुगे हइल गौर–अवतार॥२॥

अन्यान्य सभी धामोंके सारस्वरूप उस श्रीनवद्वीप–धामकी जय हो! जय हो। जहाँपर कलियुगमें श्रीगौरहरि अवतरित हुए हैं॥२॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा नवद्वीपधामका वर्णन—

नित्यानन्दप्रभु बले, शुनह वचन।
षोल–क्रोश नवद्वीप यथा वृन्दावन॥३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीलजीव गोस्वामीको कहा कि यह सोलह कोस (बत्तीस मील) परिधिवाला श्रीनवद्वीपधाम श्रीवृन्दावन ही है॥३॥

श्रीनवद्वीपकी आठ पंखुड़ियोंवाले कमलसे तुलना—

एइ षोल–क्रोश–मध्ये द्वीप हय नय।
अष्टदल पद्म जेन जलेते भासय॥ ४ ॥

अष्टदल अष्टद्वीप, मध्ये अन्तर्द्वीप।
तार माझे मायापुर मध्यबिन्दु–टीप॥ ५ ॥

इसके सोलह कोसमें नौ द्वीप हैं। आठ दलोंका कमल पुष्प जैसे जलमें तैरता है, उसी प्रकार इस नवद्वीपरूपी कमलके पुष्पकी आठ पंखुड़ियाँ तो आठ द्वीप हैं तथा बीचमें अन्तर्द्वीप है और उस अन्तर्द्वीपके भी मध्यमें एक बिन्दीके समान मायापुर है॥ ४–५ ॥

श्रीधाम मायापुरका वर्णन

मायापुर योगपीठ सदा गोलाकार।
तथा नित्य चैतन्येर विविध विहार॥ ६ ॥

गोलाकार मायापुर योगपीठमें श्रीचैतन्य महाप्रभु नित्य अनेक प्रकारसे विहार करते हैं॥ ६ ॥

त्रिसहस्र धनु तार परिधि प्रमाण।
सहस्रेक–धनु तार व्यासेर विधान॥ ७ ॥

मायापुर योगपीठका व्यास एक हजार धनुष अर्थात् दो हजार मीटर (दो किलोमीटर) और उसकी परिधि तीन हजार धनुष अर्थात् छः हजार मीटर (छः किलोमीटर) है॥७॥

योगपीठका सबसे अधिक माहात्म्य—

एइ योगपीठ—माझे बैसे पञ्चतत्त्व।
अन्य स्थान हैते योगपीठेर महत्त्व॥८॥

इस योगपीठमें श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर और श्रीवास—ये पञ्चतत्त्व विराजमान हैं, इसलिए श्रीधामनवद्वीपके अन्तर्गत अन्यान्य अनेक स्थान होनेपर भी इस योगपीठका उन सबसे अधिक माहात्म्य है॥८॥

अति शीघ्र गुप्त ह'बे प्रभुर इच्छाय।
भागीरथी—जले ह'बे संगोपित प्राय॥९॥

महाप्रभुकी इच्छासे बहुत जल्दी ही यह स्थान भागीरथीके जल द्वारा अपने आपको गुप्त कर लेगा॥९॥

कभु पुनः प्रभु—इच्छा ह'बे बलवान्।
प्रकाश हइबे धाम ह'बे दीप्तिमान्॥१०॥

जब कभी पुनः महाप्रभुकी प्रबल इच्छा होगी, तब यह धाम देदीप्यमान होकर प्रकाशित होगा॥१०॥

नित्यधाम कभी भी लुप्त नहीं होता—

नित्यधाम कभु काले लोप नाहि हय।
गुप्त ह'ये पुनर्वार हय त' उदय॥११॥

नित्यधाम कभी भी कालके द्वारा लुप्त नहीं होता, बल्कि कभी गुप्त रूपमें रहता है, तो कभी प्रकाशित हो जाता है॥११॥

भागीरथी पूर्व-तीरे हय मायापुर।
मायापुरे नित्य आछेन आमार ठाकुर॥१२॥

गङ्गाके पूर्व तटपर स्थित मायापुरमें मेरे प्रभु नित्य वास करते हैं॥१२॥

श्रीकृष्ण जैसे कभी भी वृन्दावन छोड़कर नहीं जाते, उसी प्रकार श्रीमन् महाप्रभु भी कभी श्रीनवद्वीपधामको छोड़कर नहीं जाते—

लोकदृष्ट्ये संन्यासी हइया विश्वम्भर।
छाड़ि' नवद्वीप फिरे देश-देशान्तर॥१३॥

वस्तुतः गौराङ्ग मोर नवद्वीपधाम।
छाड़िया ना जाय कभु मायापुर-ग्राम॥१४॥

यद्यपि लौकिक दृष्टिसे विश्वम्भर (महाप्रभु) संन्यासी बनकर नवद्वीपको छोड़कर देश-देशान्तरमें भ्रमण करते हैं, तथापि वास्तवमें मेरे श्रीगौराङ्ग महाप्रभु नवद्वीपधामके अन्तर्गत स्थित मायापुर नामक ग्रामको छोड़कर कभी भी अन्यत्र नहीं जाते॥१३-१४॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीवके प्रति आशीर्वाद-वचन—

दैनन्दिन-लीला ताँर देखे भक्तगण।
तुमिओ देखह जीव गौराङ्ग-नर्त्तन॥१५॥

भक्तलोग श्रीचैतन्य महाप्रभुकी दैनन्दिन (अष्ट-कालीय) लीलाका दर्शन करते हैं। हे जीव! समय आनेपर तुम भी श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके नृत्यका दर्शन करोगे॥१५॥

मायापुर अन्ते अन्तर्द्वीप शोभा पाय।
गौराङ्ग-दर्शन ब्रह्मा पाइल यथाय॥१६॥

मायापुरके चारों ओर वह अन्तर्द्वीप शोभायमान है, जहाँपर ब्रह्माने श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शन प्राप्त किये थे॥१६॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीवको परिक्रमा करनेके लिए परामर्श प्रदान—

ओहे जीव चाह यदि देखिते सकल।
परिक्रमा कर तुमि हइबे सफल॥१७॥

हे जीव (श्रीजीव गोस्वामी)! तुम यदि सभी स्थानोंके दर्शन करना चाहते हो, तो परिक्रमा करो, इससे तुम्हारी सभी अभिलाषाएँ (अर्थात् श्रीनवद्वीपधाम स्थित लीलास्थलियोंके दर्शनकी इच्छा) पूर्ण हो जायेंगी॥१७॥

श्रीजीव द्वारा सदैन्य श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें प्रार्थना—

प्रभुवाक्य शुनि' जीव सजल-नयने।
दण्डवत् ह'ये पड़े प्रभुर चरणे॥१८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके वचनोंको सुनकर श्रीजीव अपने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे प्रभुके चरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगे॥१८॥

प्रेमीभक्तोंके साथ परिक्रमा करनेकी लालसा—

कृपा यदि कर प्रभु एइ अकिञ्चने।
सङ्गे ल'ये परिक्रमा कराओ आपने॥१९॥

हे प्रभो! मुझ अकिञ्चनपर कृपा करके आप स्वयं ही मुझे अपने साथ लेकर परिक्रमा करायें॥१९॥

अभिमानशून्य श्रीनित्यानन्द प्रभुकी सहमति—

जीवेर प्रार्थना शुनि' नित्यानन्दराय।
'तथास्तु' बलिया निज मानस जानाय॥२०॥

श्रीजीवकी प्रार्थना सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने "तथास्तु" (वैसा ही हो) कहकर अपने मनकी बात बतायी॥२०॥

प्रथम दिन मायापुरके दर्शन

प्रभु बले,—"ओहे 'जीव', अद्य मायापुर।
करह दर्शन, कल्य भ्रमिब प्रचुर॥"२१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! आज तुम मायापुरके दर्शन करो तथा कल मैं तुम्हें दूसरे-दूसरे बहुत-से स्थानोंपर ले जाकर परिक्रमा कराऊँगा॥२१॥

एत बलि' नित्यानन्द उठिल तखन।
पाछे पाछे उठे जीव प्रफुल्लित मन॥२२॥

इतना कहकर उसी समय श्रीनित्यानन्द प्रभु उठ खड़े हुए तथा उनके पीछे-पीछे श्रीजीव गोस्वामी भी प्रफुल्लित होकर चलने लगे॥२२॥

गौररस मदिरा–मदातिमत्त श्रीनित्यानन्द प्रभु—

चले नित्यानन्दराय मन्द मन्द गति।
गौराङ्गप्रेमेते देह सुविह्वल अति॥२३॥

मोहन–मूरति प्रभु भावे ढलढल।
अलङ्कार सर्वदेहे करे झलमल॥२४॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु भावविभोर होनेके कारण धीरे–धीरे चल रहे थे तथा उनका दिव्य कलेवर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके प्रेममें विह्वल हो रहा था। उनकी मोहनमूर्त्ति भावसे झूम रही थी तथा उनके सारे शरीरमें अलङ्कार झलमल कर रहे थे॥२३–२४॥

जे–चरण ब्रह्मा–शिव ध्याने नाहि पाय।
श्रीजीवे करिया कृपा से–पद बाड़ाय॥२५॥

जो श्रीचरणकमल ब्रह्मा–शिव आदिको ध्यानमें भी प्राप्त नहीं होते, वही श्रीचरण श्रीजीव गोस्वामीके प्रति कृपा करके आगे बढ़ने लगे॥२५॥

पाछे थाकि' जीव लय पदाङ्केर धूलि।
सर्व अङ्गे माखे' चले बड़ कुतूहली॥२६॥

पीछे चलते हुए श्रीजीव उनकी चरणधूलिको अपने सभी अङ्गोंपर लगाते हुए बड़े कौतूहलपूर्वक चलने लगे॥२६॥

योगपीठ

जगन्नाथमिश्र–गृहे करिल प्रवेश।
शचीमाता श्रीचरणे जानाय विशेष॥२७॥
शुनगो जननी एइ 'जीव' महामति।
श्रीगौराङ्ग–प्रियदास भाग्यवान् अति॥२८॥

श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरमें प्रवेश करके श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीशचीमाताके चरणकमलोंमें निवेदन किया— हे माता! श्रीगौराङ्गका परमबुद्धिमान प्रिय दास यह जीव अति भाग्यवान है॥२७–२८॥

बलिते बलिते 'जीव' आछाड़िया पड़े।
छिन्नमूल तरु जेन बड़ बड़ झड़े॥२९॥

जैसे ही नित्यानन्द प्रभुने ऐसा कहा, उसी समय श्रीजीव पछाड़ खाकर ऐसे गिर पड़े, जैसे बहुत बड़ा तूफान आनेपर वृक्ष जड़ सहित गिर पड़ता है॥२९॥

शचीर चरणे पड़ि' जाय गड़ागड़ि।
सात्त्विक–विकार देहे करे हुड़ाहुड़ि॥३०॥

श्रीजीव श्रीशचीमाताके चरणोंमें गिरकर लोट-पोट खाने लगे तथा उनकी देहमें अनेक सात्त्विक-विकार उत्पन्न होकर आपसमें होड़ लगाने लगे॥३०॥

श्रीशचीदेवी द्वारा श्रीजीवको आशीर्वाद प्रदान—

कृपा करि' शचीदेवी कैल आशीर्वाद।
सेइ दिन सेइ गृहे पाइल प्रसाद॥३१॥

कृपा करके शचीमाताने श्रीजीवको आशीर्वाद दिया। उस दिन उन सभीने वहींपर ही प्रसाद पाया॥३१॥

श्रीविष्णुप्रियादेवीका रसोई बनाना—

विष्णुप्रिया शचीदेवी-आज्ञा जबे पाइल।
नाना अन्न-व्यञ्जनादि रन्धन करिल॥३२॥

श्रीविष्णुप्रियादेवीने श्रीशचीमाताकी आज्ञासे अनेक प्रकारके अन्न-व्यञ्जन तथा पकवान आदि बनाये॥३२॥

श्रीवंशीवदनानन्द प्रभु द्वारा श्रीमन् महाप्रभुको भोग निवेदन—

श्रीवंशीवदनानन्द प्रभु कतक्षणे।
श्रीगौराङ्गे भोग निवेदिल सयतने॥३३॥

श्रीवंशीवदनानन्द प्रभुने कुछ ही देरमें यत्नपूर्वक श्रीगौराङ्ग महाप्रभुको भोग निवेदन किया॥२३॥

श्रीईशान ठाकुर द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्रसाद निवेदन—

ईशान ठाकुर स्थान करि' अतःपर।
नित्यानन्दे भुञ्जाइल हरिष अन्तर॥३४॥

ईशान ठाकुरने आसन लगाकर अत्यधिक प्रसन्न चित्तसे श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्रसाद परोसा॥३४॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रति माताशचीके वचन—

पुत्र–स्नेहे शचीदेवी नित्यानन्दे बले।
खाओ बाछा नित्यानन्द जननीर स्थले॥३५॥

पुत्रवत् स्नेहसे श्रीशचीदेवीने श्रीनित्यानन्द प्रभुको कहा—"हे पुत्र! अन्ततः माताके स्थानपर तो प्रीतिपूर्वक प्रसाद पाओ॥३५॥

एइ आमि गौरचन्द्रे भुञ्जानु गोपने।
तुमि खाइले बड़ सुखि हइ आमि मने॥३६॥

"मैंने यह प्रसाद गुप्त रूपसे गौरचन्द्रको निवेदन किया है, यदि अब तुम भी प्रीतिपूर्वक इसे ग्रहण करोगे, तो मेरा मन बहुत प्रसन्न होगा॥"३६॥

श्रीजीव द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुका उच्छिष्ट भोजन ग्रहण—

जननीर वाक्ये प्रभु नित्यानन्दराय।
भुञ्जिल आनन्दे, जीव अवशिष्ट पाय॥३७॥

श्रीशचीमाताके वचनोंको सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने आनन्दपूर्वक प्रसाद पाया तथा श्रीजीव गोस्वामीने उनका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया॥३७॥

श्रीजीवकी सदैन्य उक्ति—

जीव बले,—"धन्य आमि महाप्रभु–घरे।
पाइनु प्रसाद अन्न एइ मायापुरे॥"३८॥

श्रीजीवने कहा—आज इस मायापुरमें महाप्रभुके घरपर प्रसाद पाकर मैं धन्य हो गया॥३८॥

योगपीठसे प्रस्थान—

भोजन करिया तबे नित्यानन्दराय।
शचीदेवी–श्रीचरणे हइया विदाय॥३९॥

भोजन करनेके उपरान्त श्रीनित्यानन्द प्रभुने शचीमाताके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके विदाई माँगी॥३९॥

जाइवार काले सङ्गे वंशीके लइल।
श्रीजीव वंशीर पदे प्रणति करिल॥४०॥

जाते समय श्रीनित्यानन्द प्रभुने वंशीवदनानन्दको अपने साथ ले लिया। श्रीजीवने श्रीवंशीवदनानन्द प्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया॥४०॥

श्रीवंशीवदनानन्दका परिचय—

'जीव'–प्रति बले प्रभु,—"ए वंशीवदन।
श्रीकृष्णेर प्रिय वंशी, जाने भक्तजन॥४१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! सभी भक्त इस वंशीवदनानन्दको श्रीकृष्णकी प्रिय वंशीके अवतारके रूपमें जानते हैं॥४१॥

इहार कृपाय जीव हय कृष्णाकृष्ट।
महारास लभे सबे हइया सतृष्ण॥"४२॥

इनकी कृपासे जीवमात्र ही श्रीकृष्णके प्रति आकर्षित होते हैं तथा सतृष्ण होकर महारासमें प्रवेश कर जाते हैं॥४२॥

बाहर आते-आते योगपीठ स्थित अन्यान्य स्थानोंके दर्शन—

देख जीव, एइ गृहे चैतन्यठाकुर।
आमा सबा' ल'ये लीला करिल प्रचुर॥४३॥

देखो जीव! इस घरमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने हम सबको साथ लेकर अनेक लीलाएँ की थीं॥४३॥

एइ देख जगन्नाथ–मिश्रेर मन्दिर।
विष्णुपूजा नित्य यथा करितेन धीर॥४४॥

इसे देखो! यह श्रीजगन्नाथ मिश्रका मन्दिर है, यहाँपर बैठकर वे धीर नित्यप्रति विष्णुपूजा किया करते थे॥४४॥

एइ गृहे करितेन अतिथि–सेवन।
तुलसी–मण्डप एइ करह दर्शन॥४५॥

यह देखो! इस घरमें वे अतिथियोंकी सेवा करते थे। उनके द्वारा पूजित इस तुलसी मण्डपका दर्शन करो॥४५॥

श्रीगौराङ्गचन्द्र गृहे छिल जतकाल।
पितार आचार पालितेन भक्तपाल॥४६॥

जब तक श्रीगौराङ्ग महाप्रभु घरपर थे, तब तक भक्तोंका पालन करनेवाले श्रीमन् महाप्रभु अपने पिता द्वारा दिखाये गये आचरणका पालन करते थे॥४६॥

एबे सब वंशीठाकुरेर तत्त्वाधीने।
ईशान निर्वाह करे प्रति दिने दिने॥४७॥

अब श्रीवंशीवदनानन्द प्रभुके आनुगत्यमें ईशान ठाकुर उन सब कृत्योंको करते हैं॥४७॥

एइ स्थाने छिल एक निम्बवृक्षवर।
प्रभुर परशे वृक्ष हैल अगोचर॥४८॥

इस स्थानपर एक नीमका वृक्ष था, महाप्रभुके स्पर्शसे वह अप्रकट हो गया॥४८॥

जत काँदे नित्यानन्द करिया वर्णन।
जीव, वंशी दुँहे तत करेन क्रन्दन॥४९॥

उन स्थानोंका वर्णन करते हुए जैसे श्रीनित्यानन्द प्रभु क्रन्दन कर रहे थे, वैसे ही श्रीजीव और श्रीवंशीवदनानन्द भी क्रन्दन किए बिना नहीं रह पा रहे थे॥४९॥

श्रीवास-अङ्गन

देखिते देखिते तथा आइल श्रीवास।
चारिजने चले छाड़ि' जगन्नाथ–वास॥५०॥
शत धनु उत्तरेते श्रीवास–अङ्गन।
जीवे देखाइल प्रभु आनन्दित मन॥५१॥

देखते–ही–देखते वहाँपर श्रीवास पण्डित उपस्थित हुए तथा चारों मिलकर श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरसे बाहर निकलकर श्रीवास–अङ्गनकी ओर चल पड़े। श्रीवास–अङ्गन योगपीठसे एक सौ धनु (दो सौ मीटर) उत्तरकी ओर स्थित है। आनन्दित होकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीजीवको श्रीवास–अङ्गनका दर्शन कराया॥५०–५१॥

श्रीवास–अङ्गनमें श्रीजीव द्वारा लोट–पोट होना—

श्रीवास–अङ्गने जीव जाय गड़ागड़ि।
स्मरिया प्रभुर लीला प्रेमे हुड़ाहुड़ि॥५२॥

श्रीवास–अङ्गनकी रजमें जीव लोट–पोट खाने लगे तथा महाप्रभुकी अनेकानेक लीलाओंके एक साथ स्मरण हो आनेसे प्रेममें ऐसे विभोर हो उठे मानों प्रेमके सभी लक्षण आपसमें अधिक उनके शरीरमें उदित होनेके लिए होड़ कर रहे हो॥५२॥

श्रीजीवको सपरिकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी स्फूर्ति—

श्रीजीव उठिवामात्र देखे एक रङ्ग।
नाचिछे गौराङ्ग ल'ये भक्त अन्तरङ्ग॥५३॥

उठते ही श्रीजीवने एक अद्भुत दृश्य देखा कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभु अपने अन्तरङ्ग भक्तोंके साथ नृत्य कर रहे हैं॥५३॥

महासङ्कीर्त्तन देखे वल्लभनन्दन।
सर्व भक्तमाझे प्रभुर अपूर्व नर्त्तन॥५४॥

वल्लभनन्दन (श्रीजीव गोस्वामी) महासङ्कीर्त्तनका दर्शन करने लगे और सभी भक्तोंके मध्य शोभायमान श्रीमन् महाप्रभुके अपूर्व नृत्यको देखने लगे॥५४॥

नाचिछे अद्वैत, प्रभु नित्यानन्दराय।
गदाधर, हरिदास नाचे आर गाय॥५५॥
शुक्लाम्बर नाचे आर शत शत जन।
देखिया प्रेमेते जीव हैल अचेतन॥५६॥

श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु नृत्य कर रहे थे तथा श्रीगदाधर पण्डित और श्रीहरिदास ठाकुर नृत्यके साथ-साथ गीत भी गा रहे थे। श्रीशुक्लाम्बर तथा अन्यान्य सैकड़ों भक्त नृत्य कर रहे थे। यह सब देखकर श्रीजीव प्रेमाविष्ट होकर मूर्च्छित हो गये॥५५-५६॥

श्रीजीवका विरह-विलाप—

चेतन पाइले आर से रङ्ग ना पाय।
काँदि' जीव गोस्वामी करे हाय हाय॥५७॥

केन मोर किछु पूर्वे जनम नहिल।
एमन कीर्त्तनानन्द भाग्ये ना घटिल॥५८॥

चेतनता प्राप्त करनेपर (लीलाके अदृश्य होनेके कारण) अब उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उस समय श्रीजीव गोस्वामी रोते-रोते कहने लगे—हाय! हाय! मेरा कुछ समय पहले जन्म क्यों नहीं हुआ? हाय! हाय! इसलिए मेरे भाग्यमें अन्तरङ्ग भक्तोंकी मण्डलीमें श्रीमन् महाप्रभुके सङ्कीर्त्तनके आनन्दको प्राप्त करना सम्भवपर नहीं हुआ॥५७-५८॥

प्रभु नित्यानन्द-कृपा असीम अनन्त।
सेइ बले क्षणकाल हैनु भाग्यवन्त॥५९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा असीम (सीमारहित) तथा अनन्त है, उन्हींकी कृपाके बलसे ही आज मैं भी थोड़ी देरके लिए उस लीलाका दर्शनकर धन्य हो गया हूँ॥५९॥

श्रीजीव गोस्वामीकी इच्छा—

इच्छा हय मायापुरे थाकि चिरकाल।
घुचिबे सम्पूर्णरूपे मायार जञ्जाल॥६०॥

मेरी इच्छा होती है कि मैं चिर-काल तक इस मायापुरमें वास करूँ, क्योंकि ऐसा होनेपर ही सम्पूर्ण रूपमें मायाका जञ्जाल दूर होगा॥६०॥

दासेर वासना हैते प्रभु-आज्ञा बड़।
मायापुर छाड़िते अन्तर धड़फड़॥६१॥

यद्यपि मायापुर छोड़नेकी बात सोचनेसे ही मेरा हृदय धड़कने लगता है, तथापि दासकी वासना (इच्छा) से प्रभुकी आज्ञा अधिक बलवान होती है॥६१॥

श्रीअद्वैत-भवन

तथा हैते नित्यानन्द जीवे ल'ये जाय।
दश धनु उत्तरेते अद्वैत-गृह पाय॥६२॥

वहाँसे श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीजीवको अद्वैत-भवन ले गये, जो श्रीवास-अङ्गनसे दस धनु (बीस मीटर) उत्तरकी ओर स्थित है॥६२॥

प्रभु बले,—"देख जीव, सीतानाथालय।
हेथा वैष्णवेर गोष्ठी सदाय मिलय॥६३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! सीतानाथ (श्रीअद्वैत) के भवनको देखो। यहाँपर सदैव वैष्णवोंकी गोष्ठी होती है॥६३॥

हेथा सीतानाथ कैल कृष्णेर पूजन।
हुङ्कारे आनिल मोर श्रीगौराङ्ग-धन॥"६४॥

यहींपर बैठकर ही सीतानाथने भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना की थी तथा अपनी हुङ्कारके द्वारा उन्होंने मेरे एकमात्र धन श्रीगौराङ्ग महाप्रभुको इस धराधामपर अवतरित कराया था॥६४॥

श्रीगदाधर-भवन

तथा गड़ागड़ि दिया चले चारि जन।
पञ्चधनु पूर्वे गदाधरेर भवन॥६५॥

वहाँकी रजमें लोट-पोट करनेके उपरान्त चारों पाँच धनु (दस मीटर) पूर्व दिशाकी ओर स्थित श्रीगदाधर-भवनमें उपस्थित हुए॥६५॥

तथा हैते देखाइल नित्यानन्दराय।
सर्व पारिषद-गृह यथाय तथाय॥६६॥

वहींसे श्रीनित्यानन्द प्रभुने अन्यान्य सभी पार्षदोंके वासस्थानोंका दर्शन कराया॥६६॥

श्रीगङ्गातटपर भ्रमण—

ब्राह्मणमण्डली–गृह करिया दर्शन।
तबे चले गङ्गातीरे हर्षे चारि जन॥६७॥

ब्राह्मणोंके घरोंका दर्शन करनेके उपरान्त चारों आनन्दपूर्वक श्रीगङ्गाके तटपर चलने लगे॥६७॥

क्षेत्रपाल वृद्धशिव

मायापुर–सीमाशेषे वृद्ध–शिवालय।
जाह्नवीर तटे देखे 'जीव' महाशय॥६८॥

श्रीजीव ने मायापुरकी अन्तिम सीमापर स्थित उस वृद्ध–शिवालयके दर्शन किये जो गङ्गाके तटपर विराजमान थे॥६८॥

प्रभु बले,—मायापुरे इनि क्षेत्रपाल।
प्रौढ़ामाया–शक्ति अधिष्ठान नित्यकाल॥६९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! ये वृद्धशिव मायापुरके क्षेत्रपाल हैं। यहाँपर प्रौढ़ामाया–शक्ति (योगमाया) नित्य विराजमान हैं॥६९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा भविष्यवाणी—

प्रभु जबे अप्रकट हइबे तखन।
ताँहार इच्छाय गङ्गा हइबे वर्द्धन॥७०॥

मायापुर प्राय गङ्गा आच्छादिबे जले।
शतवर्ष राखि' पुनः छाड़िबेन बले॥७१॥

जब महाप्रभु अप्रकट हो जायेंगे, तब उनकी इच्छासे गङ्गाका जल बढ़ जायेगा। गङ्गा प्रायः सम्पूर्ण मायापुरको ही अपने जलसे ढक लेगी तथा एक सौ वर्षके बाद पुनः प्रकाशित कर देगी॥७०-७१॥

स्थान-मात्र जागिबेक गृह ना रहिबे।
वासहीन ह'ये कतकाल स्थित ह'बे॥७२॥

उस समय भी केवल मायापुरकी भूमि ही प्रकाशित होगी, किन्तु कोई घर इत्यादि नहीं रहेगा। वह स्थान इसी प्रकार बहुत समय तक वीरान पड़ा रहेगा॥७२॥

पुनः कभु प्रभु-इच्छा ह'ले बलवान्।
ह'बे मायापुरे एइरूप वासस्थान॥७३॥

पुनः जब कभी श्रीमन् महाप्रभुकी प्रबल इच्छा होगी, तब फिरसे इसी प्रकार मायापुरमें लोगोंके वास-स्थान होंगे॥७३॥

एइ सब घाट गङ्गातीरे पुनः ह'बे।
प्रभुर मन्दिर करिबेन भक्त सबे॥७४॥

गङ्गाके तटपर पुनः ये सभी घाट प्रकाशित होंगे तथा बहुत भक्तलोग मिलकर महाप्रभुके विशाल मन्दिरका निर्माण करेंगे॥७४॥

अद्भुत मन्दिर एक हइबे प्रकाश।
गौराङ्गेर नित्यसेवा हइबे विकाश॥७५॥

यहाँपर एक अद्भुत मन्दिर प्रकाशित होगा तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी नित्यसेवा दिन-प्रतिदिन और अधिक विकसित होगी॥७५॥

प्रौढ़ामाया वृद्धशिव आसि' पुनराय।
निज कार्य साधिबेक प्रभुर इच्छाय॥७६॥

प्रौढ़ामाया (योगमाया) तथा वृद्धशिव पुनः यहाँ आकर महाप्रभुकी इच्छानुसार धामकी सेवा करेंगे॥७६॥

श्रीजीव गोस्वामी द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुकी स्तुति—

एत शुनि' जीव तबे करजोड़ करि'।
प्रभुरे जिज्ञासे वार्त्ता पद-युग धरि'॥७७॥
ओहे प्रभु, तुमि शेष-तत्त्वेर निदान।
धाम-रूप नामतत्त्व तोमारि विधान॥७८॥

इतना सुनकर श्रीजीवने अपने दोनों हाथोंके द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंको धारण करके कहा—हे प्रभो! आप अनन्तदेव शेषके कारण हैं (शेष आपके अंश है), आप धाम तथा नामके रूपमें अपना विस्तार करते हैं तथा आप भगवान्‌के अनेक रूपों (अवतारों) के आश्रयस्वरूप हैं॥७७-७८॥

यदिओ प्रभुर इच्छामते कर्मकर।
तबु जीव-गुरु तुमि सर्वशक्तिधर॥ ७९॥

यद्यपि आप श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छानुसार कार्य करते हैं, तथापि आप जीवमात्रके ही गुरु तथा सब प्रकारकी शक्तियोंको धारण करनेवाले हैं॥७९॥

पाषण्डी व्यक्तिका परिचय—

गौराङ्गे तोमाते भेद जेइ जन करे।
पाषण्डी-मध्येते ता'रे विज्ञजने धरे॥८०॥

जो व्यक्ति श्रीगौराङ्ग महाप्रभु तथा आपमें भेद देखता है, विज्ञ पुरुष उसे पाषण्डी कहते हैं॥८०॥

श्रीजीव गोस्वामीका संशय—

सर्वज्ञ पुरुष तुमि लीला–अवतार।
संशय जागिल एक हृदये आमार॥८१॥

जे–समये गङ्गा लुकाइबे मायापुर।
कोथा जाबे शिव–शक्ति बलह ठाकुर॥८२॥

आप सर्वज्ञ हैं। आप लीला करनेके लिए अवतरित हुए हैं। मेरे हृदयमें एक संशय है कि जिस समय गङ्गा मायापुरको ढक लेगी, उस समय शिव (वृद्धशिव) तथा शक्ति (प्रौढ़ामाया) कहाँ जायेंगे। हे प्रभो! कृपया मुझे इस विषयमें कुछ बतलाईये॥८१–८२॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुका उत्तर—

नित्यानन्द बले 'जीव', शुनह वचन।
गङ्गार पश्चिम भूमि करह दर्शन॥८३॥

ऐ उच्च चड़ा देख पारडाङ्गा नाम।
तथा आछे विप्रमण्डलीर एक ग्राम॥८४॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! मेरी बात सुनो। गङ्गाके पश्चिम तटपर जो ऊँची भूमि दिखायी दे रही है, वहाँपर पारडाङ्गा नामक एक टीला है, जहाँ ब्राह्मणोंका एक गाँव है॥८३-८४॥

ताहार उत्तरे आछे जाह्नवी पुलिन।
छिन्नडेङ्गा बलि' ता'रे जानेन प्रवीण॥८५॥

उसके उत्तरमें जाह्नवी पुलिन है। अभिज्ञ व्यक्ति उसे छिन्नडेङ्गा कहते हैं॥८५॥

एइ त' पुलिने एक नगर बसिबे।
तथा शिव-शक्ति किछु दिवस रहिबे॥८६॥

उसी पुलिनपर एक नगर बसेगा तथा शिव और शक्ति कुछ दिन वहीं वास करेंगे॥८६॥

नवद्वीपमें रासस्थली—

ओ पुलिन-माहात्म्य के कहिबारे पारे।
रासस्थली आछे यथा जाह्नवीर धारे॥८७॥

उस पुलिनके माहात्म्यका कौन वर्णन कर सकता है? जहाँपर जाह्नवी (गङ्गा) के तटपर रासस्थली विराजमान है॥८७॥

बालुमय भूमि वटे चर्मचक्षे भाय।
रत्नमय नित्यधाम दिव्य–लीला ताय॥८८॥

यद्यपि जड़ नेत्रोंसे वह साधारण रेतीला स्थान दिखायी देता है, किन्तु वास्तवमें वह रत्नोंसे बना हुआ नित्यधाम है तथा वहाँपर सदैव दिव्य लीलाएँ होती रहती हैं॥८८॥

मायापुर, गोकुलका महावन तथा पारडाङ्गा छटीकरा—

मायापुर हय श्रीगोकुल महावन।
पारडाङ्गा सट्टीकार स्वरूप गणन॥८९॥

मायापुर व्रजका श्रीगोकुल महावन है तथा पारडाङ्गाको सट्टीकार (छटीकरा) कहा गया है॥८९॥

तथा आछे वृन्दावन श्रीरासमण्डल।
काले ऐ स्थाने ह'बे गान कोलाहल॥९०॥

वहाँपर वृन्दावनका रासमण्डल है। आनेवाले समयमें उस स्थानपर उच्च स्वरमें सङ्कीर्त्तन होगा॥९०॥

मायापुर श्रीपुलिन मध्ये भागीरथी।
सब ल'ये गौरधाम जान महामति॥९१॥

वहाँपर मायापुर तथा श्रीपुलिन (गङ्गाके दूसरी पार स्थित भूमि) के बीचमें भागीरथी बहती है। हे महामति! इन सबको गौरधामके अन्तर्गत जानो॥९१॥

फाल्गुन-पूर्णिमावाले दिन पाँच कोस परिमाणवाले श्रीअन्तर्द्वीपकी परिक्रमाका फल—

पञ्चक्रोश धाम जेबा करिबे भ्रमण।
मायापुर-श्रीपुलिन करिबे दर्शन॥९२॥

जो कोई भी व्यक्ति इस पाँच कोस परिधिवाले धामकी परिक्रमा करता है, उसे मायापुर तथा श्रीपुलिनके दर्शन प्राप्त होते हैं॥९२॥

फाल्गुन-पूर्णिमा दिने जे करे भ्रमण।
पञ्चक्रोश भक्तसह पाय नित्यधन॥९३॥

इस पाँच कोस परिधिवाले धामकी जो कोई व्यक्ति फाल्गुनपूर्णिमा (गौरपूर्णिमा) के दिन भक्तोंके साथ परिक्रमा करता है, उसे नित्यधन (कृष्णप्रेम) की प्राप्ति होती है॥९३॥

श्रीविष्णुप्रियादेवी द्वारा सेवित श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका श्रीविग्रह—

ओहे जीव, गूढ़ कथा शुनह आमार।
श्रीगौराङ्ग-मूर्त्ति शोभे श्रीविष्णुप्रियार॥९४॥

हे जीव! तुम मेरी एक गूढ़ बात सुनो। वहाँपर (पारडाङ्गामें) श्रीविष्णुप्रियादेवी द्वारा सेवित श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी मूर्त्ति विराजमान है॥९४॥

ऐ काले मिश्रवंशोद्भव विप्रगण।
सट्टीकार धामे लबे श्रीमूर्त्ति—रतन॥९५॥

श्रीजगन्नाथ मिश्रके वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण उस मूर्त्तिको सट्टीकार (छटीकरा) ले जायेंगे॥९५॥

चारिशत वर्ष गौरजन्मदिन धरि'।
हइले श्रीमूर्त्ति—सेवा हबे सर्वोपरि॥९६॥

जब श्रीमन् महाप्रभुके आविर्भावको चार सौ वर्ष हो जायेंगे, तब इस श्रीमूर्त्तिकी सेवा सर्वश्रेष्ठ रूपसे प्रकाशित होगी॥९६॥

एइ सब कथा एबे राख अप्रकाश।
परिक्रमा कर धरि अन्तरे उल्लास॥९७॥

अभी इन सभी बातोंको गुप्त ही रखो और उल्लसित होकर परिक्रमा करो॥९७॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभु घाट—

वृद्धशिव—घाट हइते त्रिधनु उत्तर।
गौराङ्गेर निज—घाट देख विज्ञवर॥९८॥

हे विज्ञवर! वृद्धशिव घाटसे तीन धनुष (छह मीटर) उत्तरकी ओर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका घाट देखो॥९८॥

एइ स्थाने बाल्यलीला–छले गौरहरि।
भागीरथी क्रीड़ा करिलेन चित्त भरि'॥९९॥

यहींपर बाल्यलीलाके छलसे श्रीगौरहरिने जी भरकर गङ्गामें लीलाएँ की थीं॥९९॥

श्रीगङ्गाकी तपस्याका वर्णन—

यमुनार भाग्य देखि' हिमाद्रि–नन्दिनी।
बहु तप कैल हैते लीलार सङ्गिनी॥१००॥

यमुनाके भाग्यको (श्रीकृष्णकी लीलाओंके दर्शनरूपी भाग्यको) देखकर हिमाद्रि–नन्दिनी (गङ्गा) ने श्रीमन् महाप्रभुकी लीलाकी सङ्गिनी होनेके लिए बहुत तपस्या की॥१००॥

कृष्ण कृपा करि' बले दिया दरशन।
गौररूपे तव जले करिब क्रीड़न॥१०१॥

भगवान् श्रीकृष्णने कृपा करके उन्हें दर्शन दिया तथा कहा कि मैं श्रीगौरसुन्दरके रूपमें तुम्हारे जलमें क्रीड़ा करूँगा॥१०१॥

श्रीमन् महाप्रभु घाट

सेइ लीला कैल हेथा त्रिभुवन राय।
भाग्यवान् जीव देखि' बड़ सुख पाय॥१०२॥

त्रिभुवनके अधिपति श्रीमन् महाप्रभुने यहींपर वही (गङ्गाकी इच्छा पूर्तिरूपी) लीला की थीं। भाग्यवान जीव उन लीलाओंके दर्शनसे बहुत सुख प्राप्त करते हैं॥१०२॥

माधाई घाट

पञ्चदश धनु जेइ घाट तदुत्तरे।
माधाइयेर घाट बलि' व्यक्त चराचरे॥१०३॥

पन्द्रह धनुष (तीस मीटर) उत्तरमें जो घाट है, सभी उसे माधाई घाट कहते है॥१०३॥

बारकोणा घाट

ता'र पाँच धनुर उत्तरे घाट–शोभा।
नगरीया जनेर सर्वदा मनोलोभा॥१०४॥
'बारकोणा' घाट एइ अतीव सुन्दर।
विश्वकर्मा निर्मिलेन प्रभु–आज्ञाधर॥१०५॥

माधाई घाटसे पाँच धनुष (दस मीटर) उत्तरकी ओर अत्यन्त सुन्दर 'बारकोणा' नामक घाट है, यह नगरके सभी व्यक्तियोंके मनको आकर्षित करता है इसे नगरीया घाट भी कहते हैं। विश्वकर्माने महाप्रभुकी आज्ञानुसार इसका निर्माण किया था॥१०४-१०५॥

पञ्च शिवालय घाट

एइ घाटे देख, 'जीव' पञ्च शिवालय।
पञ्चतीर्थ लिङ्ग पञ्च सदा ज्योतिर्मय॥१०६॥

हे जीव! देखो इस घाटपर पाँच शिवालय हैं तथा उनमें पाँच ज्योतिर्मय शिवलिङ्ग विराजमान हैं॥१०६॥

इन घाटोंपर स्नान करनेसे सभी दुःखोंसे मुक्ति—

एइ चारि घाट मायापुर शोभा करे।
यथाय करिले स्नान सर्वदुःख हरे॥१०७॥

उपरोक्त चार घाट मायापुरकी शोभाका विस्तार करते हैं। इन घाटोंपर स्नान करनेसे सब दुःख दूर हो जाते हैं॥१०७॥

अन्तर्द्वीप—

मायापुर—पूर्वदिके आछे जेइ स्थान।
अन्तर्द्वीप बलि' ता'र नाम विद्यमान॥१०८॥

मायापुरके पूर्वमें जो स्थान है, उसे सभी अन्तर्द्वीप कहकर पुकारते हैं॥१०८॥

एबे प्रभु—इच्छामते लोक—वासहीन।
एइरूप स्थिति रहे आरो कत दिन॥१०९॥

श्रीमन् महाप्रभुकी इच्छानुसार अभी इस स्थानपर लोग नहीं रहते तथा अभी और अनेक दिनों तक यह इसी प्रकार सुनसान ही रहेगा॥१०९॥

कतकाले पुनः हेथा लोक—वास ह'बे।
प्रकाश हइबे स्थान नदीया गौरवे॥११०॥

समयके प्रभावसे पुनः यहाँपर लोगोंका वास होगा और यह स्थान नदियाके गौरवके रूपमें प्रकाशित होगा॥११०॥

ओहे 'जीव', अद्य तुमि रह मायापुरे।
कल्य ल'ये जा'ब आमि सीमन्तनगरे॥१११॥

हे जीव! आज तुम मायापुरमें ही रहो। कल मैं तुम्हें सीमन्त नगर (सीमन्तद्वीप) ले जाऊँगा॥११११॥

श्रीजीव गोस्वामीका संशय

एत शुनि' 'जीव' तबे बलेन वचन।
संशय उठिल एक करह श्रवण॥११२॥

इतना सुनकर श्रीजीवने कहा—प्रभो! मेरे मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ है। कृपया श्रवण कीजिये॥११२॥

जबे गङ्गादेवी मायापुर आच्छादन।
उठाइया लइबेन, ना रबे गोपन॥११३॥
सेइकाले भक्तगण कोन् चिह्नधरि'।
प्रकाशिबे गुप्तस्थान, बल व्यक्त करि'॥११४॥

जब गङ्गादेवी पुनः मायापुरको प्रकाशित करेगी, तब उस समय भक्त किस चिह्नके माध्यमसे गुप्तस्थान (योगपीठ) को प्रकााशित करेंगे। कृपया विस्तृत रूपसे इसका वर्णन कीजिये॥११३-११४॥

'जीवेर' वचन शुनि' नित्यानन्दराय।
बलिला उत्तर तबे अमृतेर प्राय॥११५॥

श्रीजीवके वचन सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने अमृतके समान वचनोंसे उत्तर प्रदान किया॥११५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुका उत्तर

शुन 'जीव' गङ्गा जबे आच्छादिबे स्थान।
मायापुर एक कोण र'बे विद्यमान्॥११६॥

हे जीव! सुनो। जब गङ्गा मायापुरको ढक लेगी, उस समय मायापुरका एक कोना बचा रहेगा॥११६॥

तथाय यवन-वास हइबे प्रचुर।
तथापि रहिबे तार नाम मायापुर॥११७॥

यद्यपि वहाँपर बहुत सारे यवन वास करेंगे, तथापि उसका नाम तब भी मायापुर ही रहेगा॥११७॥

अवशिष्ट स्थानेर पश्चिम-दक्षिणेते।
पञ्चशत धनु पारे पाइबे देखिते॥११८॥

किछु उच्च स्थान सदा तृण आवरण।
सेइ स्थान जगन्नाथमिश्रेर भवन॥११९॥

अवशिष्ट स्थानके पश्चिम-दक्षिण दिशामें पाँच सौ धनुष (एक हजार मीटर) दूरीपर सदैव घाससे

ढका हुआ एक उच्चस्थान दिखायी देगा, वही स्थान जगन्नाथ मिश्रका भवन है॥११८-११९॥

तथा हइते पञ्चधनु वृद्ध शिवालय।
एइ परिमाण धरि' करिबे निर्णय॥१२०॥

वहाँसे पाँच धनुष (दस मीटर) दूरीपर वृद्ध शिवालय है। इसी परिमाणके अनुसार भक्त इन स्थानोंका निर्णय करेंगे॥१२०॥

शिवडोबा बलि' खात देखिते पाइबे।
सेइ खात गङ्गातीर बलिया जानिबे॥१२१॥

जहाँपर शिवडोबा नामकी एक खाई दिखाई देगी, वही यह इङ्गित करेगी कि पहले गङ्गा यहींपर बहती थी॥१२१॥

भक्तगण एइरूपे प्रभुर इच्छाय।
प्रकाशिबे लुप्तस्थान जानह निश्चय॥१२२॥

इसी प्रकार भक्तलोग महाप्रभुकी इच्छानुसार इन लुप्त स्थानोंको प्रकाशित करेंगे, ऐसा निश्चित समझो॥१२२॥

प्रभुर शताब्दि–चतुष्टय अन्त जबे।
लुप्ततीर्थ उद्धारेर यत्न ह'बे तबे॥१२३॥

जब महाप्रभुके आविर्भावके चार सौ वर्ष पूरे हो जायेंगे, तब लुप्त तीर्थोंके उद्धारका प्रयास प्रारम्भ होगा॥१२३॥

'श्रीजीव' बलेन प्रभु बलह एखन।
अन्तर्द्वीप नामेर जे यथार्थ कारण॥१२४॥

श्रीजीवने कहा—हे प्रभो! अब कृपया इस स्थानका नाम 'अन्तर्द्वीप' होनेका वास्तविक कारण बतलाइये॥१२४॥

अन्तर्द्वीप, श्रीब्रह्माकी तपस्या-स्थली—

प्रभु बले,—एइ स्थाने द्वापरेर शेषे।
तपस्या करिल ब्रह्मा गौर–कृपा–आशे॥१२५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—इस स्थानपर द्वापर-युगके अन्तमें ब्रह्माने श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी कृपा प्राप्त करनेकी आशासे तपस्या की थी॥१२५॥

गोवत्स गोपाल सब करिया हरण।
छलिल करिया माया गोविन्देर मन॥१२६॥

श्रीकृष्णलीलामें बछड़े तथा ग्वालबालोंको चुराकर ब्रह्माने अपनी माया द्वारा गोविन्दसे छलना की थी॥१२६॥

निज–माया पराजय देखि' चतुर्मुख।
निज–कार्यदोषे बड़ पाइल असुख॥१२७॥

अपनी मायाको पराजित होता देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा अपने द्वारा किये गये अपराधके कारण बहुत दुःखी हुए॥१२७॥

बहु स्तव करि' कृष्णे करिल मिनति।
क्षमिल ताहार दोष वृन्दावन–पति॥१२८॥

अनेक स्तव–स्तुति करनेके उपरान्त ब्रह्माने श्रीकृष्णके चरणोंमें क्षमा–प्रार्थना की और वृन्दावन–पति श्रीकृष्णने उन्हें क्षमा कर दिया॥१२८॥

श्रीब्रह्माजीके तपस्या करनेका कारण—

तबु ब्रह्मा मने मने करिल विचार।
ब्रह्मबुद्धि मोर हय अतिशय छार॥१२९॥

तब ब्रह्माजीने मन–ही–मन विचार किया कि मेरी ब्रह्मबुद्धि (मैं जगत्‌की सृष्टि करनेवाला हूँ) बहुत घृणित है॥१२९॥

एइ बुद्धि-दोषे कृष्णप्रेमेते रहित।
ब्रजलीला-रसभोगे हइनु वञ्चित॥१३०॥

इसी बुद्धि-दोषके कारण मैं कृष्णप्रेमसे रहित और व्रजलीलाके रसोंका आस्वादन करनेसे वञ्चित हूँ॥१३०॥

गोपाल हइया जन्म पाइताम आमि।
सेविताम अनायासे गोपिकार स्वामी॥१३१॥

यदि मैं गोपाल (ग्वालबाल) के रूपमें जन्म प्राप्त करता, तो अनायास ही गोपियोंके स्वामी श्रीकृष्णकी सेवा कर पाता॥१३१॥

से-लीलारसेते मोर ना हइल गति।
एबे श्रीगौराङ्गे मोर ना हय कुमति॥१३२॥

उस लीलारसको देखनेका सौभाग्य तो नहीं मिला, किन्तु अब श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके प्रति मेरी कुबुद्धि न हो॥१३२॥

एइ बलि' बहुकाल अन्तर्द्वीप-स्थाने।
तपस्या करिल ब्रह्मा रहिल धेयाने॥१३३॥

इतना कहकर बहुत समय तक ब्रह्माने ध्यान लगाकर इसी अन्तर्द्वीपमें तपस्या की थी॥१३३॥

श्रीब्रह्माजीको श्रीगौरहरिका दर्शन प्राप्त—

कतदिने गौरचन्द्र करुणा करिया।
चतुर्मुख—सन्निधाने कहेन आसिया॥१३४॥

ओहे ब्रह्मा, तव तपे तुष्ट ह'ये आमि।
आसिलाम दिते जाहा आशा कर तुमि॥१३५॥

कुछ समयके बाद श्रीगौरचन्द्रने कृपा करके चतुर्मुख ब्रह्माके सामने प्रकट होकर कहा—ओहे ब्रह्मा! तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वही वर देने आया हूँ, जिसकी तुम आशा कर रहे हो॥१३४-१३५॥

नयन मेलिया ब्रह्मा देखि' गौरराय।
अज्ञान हइया भूमे पड़िल तथाय॥१३६॥

जब ब्रह्माने नेत्र खोलकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शन किये तो मूर्च्छित होकर वहीं भूमिपर गिर पड़े॥१३६॥

ब्रह्मा द्वारा श्रीगौरहरिकी स्तव-स्तुति—

ब्रह्मार मस्तके प्रभु धरिल चरण।
दिव्यज्ञान पे'ये ब्रह्मा करय स्तवन॥१३७॥

आमि दीनहीन अति अभिमान–वशे।
पासरिया तव पद फिरि जड़ रसे॥१३८॥

ब्रह्माके मस्तकपर प्रभुने अपने चरण रख दिये। दिव्यज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मा स्तव करते हुए कहने लगे—मैं बहुत दीन–हीन हूँ। अभिमानके वशीभूत होकर आपके चरणोंमें अपराध करनेके फलस्वरूप जड़रसमें निमग्न हो रहा हूँ॥१३७–१३८॥

आमि, पञ्चानन, इन्द्र–आदि देवगण।
अधिकृत दास तव शास्त्रेर लिखन॥१३९॥

ऐसा सभी शास्त्रोंमें वर्णन है कि मैं (ब्रह्मा), पञ्चानन (शिव) तथा इन्द्र आदि सभी देवता आपके आधिकारिक दास हैं॥१३९॥

शुद्ध दास हैते आमादेर भाग्य नय।
अतएव माया मोह–जाल विस्तारय॥१४०॥

हमारे भाग्यमें आपका शुद्धदास बनना नहीं लिखा है, इसलिए माया हमारे लिए अपना मोहरूपी जाल बिछाती है॥१४०॥

प्रथम परार्द्ध मोर काटिल जीवन।
एबे त' चरम चिन्ता करये पोषण॥१४१॥

द्वितीय परार्द्ध मोर काटिबे केमने।
बहिर्मुख हइले यातना बड़ मने॥१४२॥

मेरे जीवनका प्रथम परार्द्ध (आधी आयु) तो बीत गया है, किन्तु अब मुझे बहुत चिन्ता हो रही है कि मेरा दूसरा परार्द्ध कैसे व्यतीत होगा? बहिर्मुख होनेपर मनमें बहुत कष्ट होता है॥१४१-१४२॥

श्रीब्रह्मा द्वारा वर प्रार्थना—

एइमात्र तव पदे प्रार्थना आमार।
प्रकट-लीलाय जेन हइ परिवार॥१४३॥

आपके श्रीचरणोंमें मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है कि मैं आपकी प्रकटलीलामें आपका परिकर बनकर आऊँ॥१४३॥

ब्रह्मबुद्धि दूरे जाय, हेन जन्म पाइ।
तोमार सङ्गेते थाकि' तव गुण गाइ॥१४४॥

मुझे ऐसा जन्म प्राप्त हो, जिससे मेरी ब्रह्मबुद्धि दूर हो जाय, मैं सब समय आपके साथ रहूँ और आपका ही गुणगान करूँ॥१४४॥

श्रीमन् महाप्रभुकी सहमति—

ब्रह्मार प्रार्थना शुनि' गौर भगवान्।
'तथास्तु' बलिया वर करिलेन दान॥१४५॥

ब्रह्माकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीगौरहरिने "तथास्तु" कहकर वर प्रदान किया॥१४५॥

जे—समये मम लीला प्रकट हइबे।
यवनेर गृहे तुमि जनम लभिबे॥१४६॥

श्रीमन् महाप्रभुने कहा कि जिस समय मेरी लीला प्रकट होगी, उस समय तुम एक यवनके घरमें जन्म लोगे॥१४६॥

आपनाके हीन बलि' हइबे गेयान।
हरिदास ह'बे तुमि शून्य अभिमान॥१४७॥

तुम सब समय अपनेको दीन—हीन समझोगे। तुम्हारा नाम हरिदास होगा तथा तुम्हें किसी प्रकारका कोई अभिमान नहीं होगा॥१४७॥

तिनलक्ष हरिनाम जिह्वाग्रे नाचिबे।
निर्याण–समये तुमि आमाके देखिबे ॥१४८ ॥

तुम्हारी जिह्वापर नित्यप्रति तीन लाख हरिनाम नृत्य करेगा। निर्याण (देहत्याग) के समय तुम्हें मेरे दर्शन प्राप्त होंगे ॥१४८ ॥

एइ त' साधनबले द्विपरार्द्ध–शेषे।
पा'बे नवद्वीपधाम मजि' नित्यरसे ॥१४९ ॥

इस साधनके बलपर तुम द्विपरार्द्धके अन्तमें इस नवद्वीपधामको प्राप्त करोगे तथा नित्य रसमें निमज्जित होओगे ॥१४९ ॥

ओहे ब्रह्मा, शुन मोर अन्तरेर कथा।
व्यक्त कभु ना करिबे शास्त्रे यथा तथा ॥१५० ॥

हे ब्रह्मा! तुम मेरे हृदयकी बात सुनो। मेरी इन बातोंको कभी भी इधर–उधर शास्त्रोंमें व्यक्त मत करना ॥१५० ॥

श्रीब्रह्माजीके समक्ष अपना तत्त्व वर्णन—

भक्तभाव ल'ये भक्तिरस आस्वादिब।
परम दुर्लभ सङ्कीर्त्तन प्रकाशिब ॥१५१ ॥

मैं भक्तका भाव लेकर भक्तिरसका आस्वादन करूँगा तथा परम दुर्लभ सङ्कीर्त्तनको प्रकाशित करूँगा॥१५१॥

अन्य अन्य अवतारकाले भक्त जत।
ब्रजरसे सबे माताइब करि' रत॥१५२॥

अन्य-अन्य अवतारोंके समय जितने भक्त थे, उन सभीको ब्रजरसमें निमज्जित कर दूँगा॥१५२॥

श्रीराधिका प्रेम-बद्ध आमार हृदय।
ताँ'र भावकान्ति ल'ये हइब उदय॥१५३॥

मेरा हृदय श्रीराधिकाके प्रेमसे वशीभूत है, मैं उन्हींके भाव तथा अङ्गकान्तिको लेकर प्रकट होऊँगा॥१५३॥

किवा सुख राधा पाय आमारे सेविया।
सेइ सुख आस्वादिब राधा-भाव लैया॥१५४॥

मेरी सेवा करके श्रीराधाको किस सुखकी प्राप्ति होती है, मैं राधाभाव लेकर उस सुखका आस्वादन करूँगा॥१५४॥

आजि हैते तुमि मोर शिष्यता लभिबे।
हरिदास–रूपे मोरे सतत सेविबे॥१५५॥

आजसे ही तुम मेरे शिष्यत्वको प्राप्त करोगे तथा हरिदासके रूपमें निरन्तर मेरी सेवा करोगे॥१५५॥

एत बलि' महाप्रभु हैल अन्तर्ध्यान।
आछाड़िया पड़े ब्रह्मा हइया अज्ञान॥१५६॥

इतना कहकर श्रीमन् महाप्रभु अन्तर्धान हो गये तथा ब्रह्मा मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥१५६॥

हा गौराङ्ग, दीनबन्धो, भकतवत्सल।
कबे वा पाइबो तव चरणकमल॥१५७॥

(पुनः चेतनता प्राप्त करके विह्वल होकर कहने लगे—)हा गौराङ्ग! हे दीनबन्धो! हे भक्तवत्सल! मुझे कब आपके श्रीचरणकमलोंकी प्राप्ति होगी?॥१५७॥

एइ मत कत दिन काँदिते काँदिते।
ब्रह्मलोके गेल ब्रह्मा कार्य सम्पादिते॥१५८॥

इस प्रकार कुछ दिनों तक क्रन्दन करते रहे तथा फिर भगवान् द्वारा सौंपे गये कार्यको करनेके लिए ब्रह्मलोक चले गये॥१५८॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा पदे आशा-मात्र जार।
नदीया-माहात्म्य गाय दीन-हीन छार॥१५९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंको प्राप्त करनेकी आशासे दीन-हीन तुच्छ, भक्तिविनोद द्वारा इस नदियाके माहात्म्यका गान किया जा रहा है॥१५९॥

पञ्चम अध्याय समाप्त।

भागीरथी गंङ्गा

षष्ठ अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय श्रीचैतन्य शचीर नन्दन।
जय नित्यानन्दप्रभु जाह्नवा–जीवन॥ १॥

शचीनन्दन श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो! जय हो। श्रीजाह्नवा ठाकुरानीके जीवनस्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो ॥१॥

जय जय सीतानाथ जय गदाधर।
जय जय श्रीवासादि गौर–परिवार॥२॥

सीतानाथ (श्रीअद्वैत) की जय हो! जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके परिकर श्रीवास आदि भक्तोंकी जय हो! जय हो॥२॥

परदिन प्राते प्रभु नित्यानन्दराय।
श्रीवास, 'श्रीजीव' ल'ये गृह बाहिराय॥३॥

सङ्गे चले रामदास आदि भक्तगण।
जाइते जाइते करे गौर–सङ्कीर्त्तन॥४॥

अगले दिन प्रातःकाल श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवास पण्डित तथा श्रीजीवको अपने साथ लेकर घरसे बाहर आये। उनके साथ रामदास आदि भक्त भी चल रहे थे, जो चलते-चलते गौरनामका सङ्कीर्त्तन कर रहे थे॥३-४॥

श्रीगङ्गानगरका इतिहास

अन्तर्द्वीप-प्रान्ते प्रभु आइला जखन।
श्रीगङ्गानगर 'जीवे' देखाय तखन॥५॥

जिस समय श्रीनित्यानन्द प्रभु अन्तर्द्वीपकी सीमापर पहुँचे, उस समय उन्होंने श्रीजीवको श्रीगङ्गानगरके दर्शन कराये॥५॥

प्रभु बले, शुन 'जीव', ए गङ्गानगर।
स्थापिलेन भगीरथ रघु-वंशधर॥६॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—सुनो जीव! रघुके वंशधर भगीरथने इस गङ्गानगरकी स्थापना की थी॥६॥

जबे गङ्गा भागीरथी आइल चलिया।
भगीरथ जाय आगे शंख बाजाइया॥७॥

जिस समय भागीरथी–गङ्गा इस जगत्‌में आयीं, उस समय भगीरथ शंख बजाते–बजाते और गङ्गाका पथ–प्रदर्शन करते हुए आगे–आगे चल रहे थे॥७॥

नवद्वीपधामे आसि' गङ्गा हय स्थिर।
भगीरथ देखे गङ्गा ना हय बाहिर॥८॥

किन्तु श्रीनवद्वीपधाममें आकर (भगीरथके आगे बढ़नेपर भी) गङ्गा स्थिर हो गयीं। भगीरथने मुड़कर देखा कि गङ्गा तो आगे बढ़ ही नहीं रही हैं॥८॥

भयेते विह्वल ह'ये राजा भगीरथ।
गङ्गार निकटे आइल फिरि' कत पथ॥९॥

राजा भगीरथ भयसे विह्वल हो गये तथा बहुत दूरसे पुनः चलकर गङ्गाके निकट पहुँचे॥९॥

राजा भगीरथकी तपस्या–स्थली—

गङ्गानगरेते वसि' तप आरम्भिल।
तपे तुष्ट ह'ये गङ्गा साक्षात् हइल॥१०॥

इसी गङ्गानगरमें बैठकर (गङ्गाके आगे न बढ़नेके कारणको जानने हेतु) उन्होंने तपस्या

आरम्भ की। उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर गङ्गादेवीने साक्षात् रूपमें उन्हें अपना दर्शन दिया॥१०॥

भगीरथ बले,—"माता, तुमि नाहि गेले।
पितृलोक उद्धार ना ह'बे कोन काले॥"११॥

गङ्गाको देखकर भगीरथने कहा—माता! यदि आप आगे नहीं जायेंगी तो मेरे पितृलोकका कभी भी उद्धार नहीं हो पायेगा॥११॥

गङ्गा बले,—"शुन बाछा, भगीरथ धीर।
किछुदिन तुमि हेथा ह'ये थाक स्थिर॥१२॥

गङ्गाने कहा—हे पुत्र! दृढ़ और शान्त चित्तवाले भगीरथ सुनो! तुम कुछ दिनों तक स्थिर होकर यहींपर वास करो॥१२॥

श्रीगङ्गादेवीकी इच्छा—

माघमासे आसियाछि नवद्वीपधामे।
फाल्गुनेर शेषे जाब तव पितृकामे॥१३॥

मैं माघमासमें इस नवद्वीपधाममें आयी हूँ तथा फाल्गुनमासके अन्तमें तुम्हारे पितृ उद्धारके लिए जाऊँगी॥१३॥

जाँहार चरणजल आमि भगीरथ।
ताँ'र निजधामे मोर पूरे मनोरथ॥१४॥

हे भगीरथ! मैं जिनके श्रीचरणकमलोंका जल हूँ, उन्हींके अपने धाममें मेरे सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं॥१४॥

फाल्गुन–पूर्णिमा–तिथि प्रभु–जन्मदिन।
सेइ दिन मम व्रत आछे समीचीन॥१५॥

फाल्गुनकी पूर्णिमा–तिथिवाले दिन मेरे प्रभुका जन्मदिन है। उस दिन मैं व्रत धारण करूँगी॥१५॥

सेइ व्रत उद्यापन करिया निश्चय।
चलिब तोमार सङ्गे ना करिह भय॥१६॥

अगले दिन उस व्रतका उद्यापन करके मैं अवश्य ही तुम्हारे साथ जाऊँगी। तुम किसी प्रकारका भय मत करो॥१६॥

ए 'गङ्गानगरे' राजा रघु–कुलपति।
फाल्गुन–पूर्णिमा–दिने करिल वसति॥१७॥

इसी गङ्गानगरमें रघुकुलपति राजा भगीरथने फाल्गुनी–पूर्णिमा पर्यन्त वास किया तथा अगले

दिन प्रातः पुनः श्रीगङ्गाका पथ–प्रदर्शन करते हुए आगे बढ़ने लगे॥१७॥

फाल्गुनी–पूर्णिमाके दिन गङ्गानगरमें वास करनेका फल—

जेइ जन श्रीफाल्गुन–पूर्णिमा–दिवसे।
गङ्गास्नान करि' गङ्गानगरेते बसे॥१८॥

श्रीगौराङ्ग पूजा करे उपवास करि'।
पूर्वपुरुषेर सह सेइ जाय तरि'॥१९॥

जो व्यक्ति श्रीफाल्गुनी–पूर्णिमाके दिन गङ्गास्नान करके इस गङ्गानगरमें रहकर उपवास करता है तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी पूजा करता है, वह व्यक्ति अपने पूर्वजों सहित इस संसार–सागरसे तर जाता है॥१८–१९॥

सहस्र पुरुष पूर्वगण सङ्गे करि'।
श्रीगोलोक प्राप्त हय यथा तथा मरि'॥२०॥

वह व्यक्ति अपने एक हजार पूर्वजोंके साथ श्रीगोलोकको प्राप्त करता है, भले ही वह कहींपर भी अपना शरीर क्यों न छोड़े॥२०॥

ओहे 'जीव', एइ स्थानेर माहात्म्य अपार।
श्रीचैतन्य नृत्य यथा कैल कतबार॥२१॥

हे जीव! इस स्थानका माहात्म्य अपार है, क्योंकि यहाँपर न जाने कितनी ही बार श्रीचैतन्य महाप्रभुने नृत्य किया था॥२१॥

श्रीमन् महाप्रभुके परिकर श्रीगङ्गादास और श्रीसञ्जयका वासस्थान—

गङ्गादास–गृह आर सञ्जय–आलय।
ऐ देख दृष्ट हय सदा सुखमय॥२२॥

श्रीगङ्गादास और श्रीसञ्जयके उन घरोंको देखो, जो दर्शनमात्रसे ही सदैव परम आनन्द प्रदान करते हैं॥२२॥

बल्लालदीर्घिका

इहार पूर्वेते जेइ दीर्घिका सुन्दर।
ताहार माहात्म्य शुन ओहे विज्ञवर॥२३॥

हे विज्ञवर! तुम पूर्व दिशाकी ओर स्थित इस सुन्दर दीर्घिका (बड़े जलाशय) का माहात्म्य श्रवण करो॥२३॥

बल्लालदीर्घिका–नाम हयेछे एखन।
सत्ययुगे छिल एर कत विवरण॥२४॥

इस सरोवरको आजकल सभी लोग बल्लाल-दीर्घिका कहकर पुकारते हैं। सत्ययुगमें इस जलाशयका बहुत विवरण मिलता है अर्थात् यह जलाशय सत्ययुगसे ही बहुत प्रसिद्ध है॥२४॥

बल्लालदीर्घिकासे सम्बन्धित महाराज पृथुका इतिहास—

'पृथु'—नामे महाराजा उच्च-नीच स्थान।
काटिया पृथ्वी जबे करिल समान॥२५॥

सेइकाले एइ स्थान समान करिते।
महाज्योतिर्मय प्रभा उठे चतुर्भिते॥२६॥

एक समय 'पृथु' नामके महाराजा पृथ्वीके ऊँचे-नीचे स्थानोंको समतल करवा रहे थे। जब उनके कर्मचारी इस स्थानको समतल करनेके लिए आये तो उन्होंने इस स्थानसे एक महाज्योतिर्मय प्रभा निकलते हुए देखी, जिसका प्रकाश चारों ओर फैल रहा था॥२५-२६॥

कर्मचारिगण महाराजारे जानाय।
राजा आसि' ज्योतिःपुञ्ज देखिवारे पाय॥२७॥

शक्त्यावेश-अवतार पृथु महाशय।
ध्यानेते जानिल स्थान नवद्वीप हय॥२८॥

कर्मचारियोंने जब इस घटनाका वर्णन महाराजके समक्ष किया, तब महाराज भी उस ज्योतिःपुञ्जको देखने आये। उस ज्योतिःपुञ्जको देखकर शक्त्यावेश-अवतार महाराज पृथुने अपने ध्यानमें देखा कि यह तो श्रीनवद्वीपधाम है॥२८॥

स्थानेर माहात्म्य गुप्त राखिवार तरे।
आज्ञा दिल कर कुण्ड स्थान मनोहरे॥२९॥

(ज्योतिःपुञ्जको देखकर सभी इस स्थानके माहात्म्यको समझ जायेंगे इसलिए) इस स्थानके माहात्म्यको गुप्त रखनेके उद्देश्यसे उन्होंने इस स्थानपर एक मनोहर कुण्ड निर्माण करनेकी आज्ञा दी॥२९॥

बल्लालदीर्घिकाका अपर नाम 'पृथुकुण्ड'

जे-कुण्ड करिल ताहा पृथुकुण्ड-नामे।
विख्यात हइल सर्व नवद्वीपधामे॥३०॥

वह कुण्ड सम्पूर्ण नवद्वीपधाममें 'पृथुकुण्ड' के नामसे प्रसिद्ध हो गया॥३०॥

स्वच्छ जल पान करि' ग्रामवासिगणे।
कत सुख पाइल ताहा कहिब केमने॥३१॥

उस कुण्डके स्वच्छ जलका पान करके सभी ग्रामवासी कितने प्रसन्न हुए, उसका वर्णन करना सम्भवपर नहीं है? ॥३१॥

बल्लालदीर्घिका नाम होनेका कारण—

परे सेइ स्थाने श्रीलक्ष्मणसेन वीर।
दीर्घिका खनन कैल बड़ इ गभीर॥३२॥

कुछ समयके उपरान्त श्रीलक्ष्मणसेन राजाने उस कुण्डको खुदवाकर उसे बहुत गहरा बना दिया॥३२॥

निज-पितृलोकेर उद्धार करि' आश।
बल्लालदीर्घिका-नाम करिल प्रकाश॥३३॥

अपने पितृलोकका उद्धार करनेकी आशासे उन्होंने इस कुण्डका नाम (बल्लाल नामक अपने किसी पूर्वजके नामपर) 'बल्लालदीर्घिका' रख दिया॥३३॥

राजा लक्ष्मणसेनका भवन—

ऐ देख उच्चटीला देखिते सुन्दर।
लक्ष्मणसेनेर गृह भग्न अतःपर॥३४॥

इस सुन्दर ऊँचे टीलेको देखो! यहीपर राजा लक्ष्मणसेनका राजभवन था, किन्तु अब वह नष्ट हो गया है॥३४॥

ए सकल अलङ्कार महातीर्थ स्थाने।
राजगण करे सदा पुण्य–उपार्जने॥३५॥

राजा–महाराजा पुण्य–अर्जित करनेके लिए (श्रीनवद्वीपधाम जैसे) महातीर्थोंमें इतने सुन्दर अलङ्कारस्वरूप स्थानोंका निर्माण करते हैं॥३५॥

परेते यवनराज दुषिल ए स्थान।
अतएव भक्तगण ना करे सम्मान॥३६॥

बादमें एक यवन राजाने इस स्थानको दूषित कर दिया, इसलिए भक्तलोग इस स्थानका सम्मान नहीं करते॥३६॥

भूमिमात्र सुपवित्र एइ स्थाने हय।
यवन–संसर्ग–भये वास ना करय॥३७॥

यहाँकी केवल भूमि ही अत्यन्त पवित्र है, किन्तु यवनोंके सङ्गके भयसे भक्तजन यहाँपर वास नहीं करते॥३७॥

ए स्थाने हइल श्रीमूर्त्तिर अपमान।
अतएव भक्तगण छाड़े एइ स्थान॥३८॥

इस स्थानपर श्रीमूर्त्तिका अपमान हुआ था, इसलिए भक्तोंने इस स्थानको छोड़ दिया॥३८॥

अक्रोध परमानन्द श्रीनित्यानन्द प्रभुका श्रीमूर्त्तिका अपमान करनेवाले यवनोंके प्रति रोष—

एत बलि नित्यानन्द गर्जिते गर्जिते।
आइलेन सिमुलिया—ग्राम सन्निहिते॥३९॥

इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु गर्जन (यवनोंके प्रति रोष प्रकट) करते हुए सिमुलिया गाँवके निकट आ पहुँचे॥३९॥

श्रीसीमन्तद्वीप

सिमुलिया देखि' प्रभु 'जीव'—प्रति कय।
एइ त' 'सीमन्तद्वीप' जानिह निश्चय॥४०॥

सिमुलिया ग्रामको देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीजीवको कहा—यह सीमन्तद्वीप है, ऐसा निश्चित रूपसे जानो॥४०॥

गङ्गार दक्षिण–तीरे नवद्वीप–प्रान्ते।
सीमन्त–नामेते द्वीप बले सब शान्ते॥४१॥

सभी महात्मा कहते हैं कि गङ्गाके दक्षिण तट तथा नवद्वीपकी सीमापर ही सीमन्तद्वीप अवस्थित है॥४१॥

काले एइ द्वीप गङ्गा ग्रासिबे सकल।
रहिबे केवल एक स्थान सुनिर्मल॥४२॥

कालके प्रभावसे इस द्वीपको गङ्गा सम्पूर्ण रूपसे डूबो देगी, केवल एक सुनिर्मल स्थान सिमुलिया ही बचेगा॥४२॥

श्रीपार्वतीदेवीका अपर नाम सिमुलि—

यथाय सिमुलि–नामे पार्वती–पूजन।
करिबे विषयी लोक करह श्रवण॥४३॥

वहाँपर विषयी लोग सिमुलिके नामसे पार्वतीकी पूजा करेंगे। मैं तुम्हें (पार्वतीदेवीके उस स्थानपर वास करनेके सम्बन्धमें) एक उपाख्यान सुना रहा हूँ। तुम श्रवण करो॥४३॥

श्रीमहादेव द्वारा श्रीगौरनाम कीर्त्तन—

कोनकाले सत्ययुगे देव महेश्वर।
श्रीगौराङ्ग बलि' नृत्य करिल विस्तर॥४४॥

किसी समय सत्ययुगमें महादेवने 'श्रीगौराङ्ग' का नाम लेते हुए बहुत देर तक नृत्य किया॥४४॥

पार्वतीदेवी द्वारा श्रीगौराङ्गदेवके विषयमें जिज्ञासा—

पार्वती जिज्ञासे तबे देव महेश्वरे।
केवा से गौराङ्गदेव बलह आमारे॥४५॥

उन्हें नृत्य करता देखकर पार्वतीने उनसे पूछा कि मुझे भी उन गौराङ्गदेवके विषयमें कुछ बतलाइये, आप जिनका नाम जप कर रहे हैं॥४५॥

श्रीगौरनाम श्रवणमात्रसे श्रीपार्वतीदेवीकी अवस्था—

तोमार अद्भुत नृत्य करि' दरशन।
शुनिया गौराङ्ग–नाम गले मोर मन॥४६॥

आपके अद्भुत नृत्यके दर्शन और आपके मुखसे श्रीगौराङ्गका नाम श्रवण करके मेरा मन द्रवीभूत हो रहा है॥४६॥

एत जे शुनेछि मन्त्र–तन्त्र एतकाल।
से–सब जानिनु मात्र जीवेर जञ्जाल॥४७॥

अतएव बल प्रभु गौराङ्ग–सन्धान।
भजिया ताँहारे आमि पाइब पराण॥४८॥

मैंने आज तक जितने मन्त्र–तन्त्र आदि सुने हैं, आज मुझे यह अनुभव हो रहा है कि वे सब तो जीवोंके लिए केवल जञ्जाल हैं। अतएव हे प्रभो! आप मुझे भी श्रीगौराङ्गके विषयमें बतलाइये जिससे मैं भी उनका भजन करके संजीवित हो जाऊँ॥४७–४८॥

श्रीमहादेव द्वारा श्रीगौरतत्त्वका वर्णन—

पार्वतीर कथा शुनि' देव पशुपति।
श्रीगौराङ्ग स्मरि' कहे पार्वतीर प्रति॥४९॥

आद्याशक्ति तुमि हओ श्रीराधार अंश।
तोमारे बलिब तत्त्वगण अवतंश॥५०॥

पार्वतीके वचनोंको सुनकर पशुपति शिव श्रीगौराङ्गका स्मरणकर पार्वतीके समक्ष कहने लगे—हे पार्वति! आद्याशक्ति तुम श्रीमती राधाकी अंश हो। मैं तुम्हें सबसे श्रेष्ठ तत्त्वके विषयमें बताऊँगा॥४९–५०॥

राधाभाव ल'ये कृष्ण कलिते एबार।
मायापुरे शचीगर्भे ह'बे अवतार॥५१॥

इस कलियुगमें श्रीकृष्ण श्रीमती राधाके भाव और अङ्गकान्तिको लेकर मायापुरमें श्रीशचीदेवीके गर्भसे अवतरित होंगे॥५१॥

कीर्त्तन रङ्गेते माति' प्रभु गोरामणि।
वितरिबे प्रेमरत्न पात्र नाहि गणि'॥५२॥

स्वयं सङ्कीर्त्तनमें निमग्न होकर महाप्रभु श्रीगौरहरि प्रेमरूपी रत्नको पात्र–अपात्रका विचार किये बिना जनसाधारणमें वितरण करेंगे॥५२॥

एइ प्रेमवन्या–जले जे जीव ना भासे।
धिक् ता'र भाग्ये देवि, जीवन–विलासे॥५३॥

इस प्रेमरूपी बाढ़में जो जीव नहीं डूबेगा, उसके भाग्यको धिक्कार है। हे देवि! उसका जीवन धारण करना ही व्यर्थ है॥५३॥

महादेव द्वारा काशी छोड़ना—

प्रभुर प्रतिज्ञा स्मरि' प्रेमे जाइ भासि'।
धैर्य ना धरे मन छाड़िलाम काशी॥५४॥

श्रीमन् महाप्रभुकी प्रतिज्ञाका स्मरण करनेपर मैं प्रेमसे सराबोर हो रहा था तथा मेरा मन धैर्य धारण नहीं कर पा रहा था इसीलिए मैंने काशीको छोड़ दिया॥५४॥

मायापुर—अन्तभागे जाह्नवीर तीरे।
गौराङ्ग भजिब आमि रहिया कुटीरे॥५५॥

मायापुरकी अन्तिम सीमा, जहाँपर जाह्नवी (गङ्गा) का तट है, मैं वहींपर कुटियामें रहकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करूँगा॥५५॥

श्रीपार्वतीदेवीका सीमन्तद्वीपमें आगमन—

धूर्जटिर वाक्य शुनि—पार्वती सुन्दरी।
आइलेन सीमन्तद्वीपेते त्वरा करि'॥५६॥

धुर्जटि (जटाधारी) श्रीशङ्करके वचनोंको सुनकर सुन्दरी श्रीपार्वतीदेवी अति शीघ्र इस सीमन्तद्वीपमें आ गयीं॥५६॥

श्रीगौराङ्ग—रूप सदा करेन चिन्तन।
गौर बलि' प्रेमे भासे, स्थिर नहे मन॥५७॥

वे (पार्वती) सदैव श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रूपका स्मरण करने लगी। "गौर" बोलते—बोलते प्रेममें

डूबने लगी और (श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्त नहीं होनेके कारण) अपने मनको स्थिर न कर पायीं॥५७॥

सपरिकर श्रीगौरहरिका दर्शन प्राप्त—

कतदिने गौरचन्द्र कृपा वितरिया।
पार्वतीरे देखा दिला सगणे आसिया॥५८॥

थोड़े दिनोंके बाद कृपा करके श्रीगौरचन्द्रने सपरिकर श्रीपार्वतीको अपने दर्शन दिये॥५८॥

श्रीमन् महाप्रभुकी दिव्य मूर्त्ति—

सुतप्त काञ्चनवर्ण दीर्घ कलेवर।
माथाय चाँचर केश सर्वाङ्ग सुन्दर॥५९॥

त्रिकच्छ करिया वस्त्र ता'र परिधान।
गले दोले फूलमाला अपूर्व विधान॥६०॥

श्रीमन् महाप्रभु तपाये हुए सोने जैसी कान्ति और दीर्घ कलेवरको धारण किये हुए थे। उनके मस्तकपर घुँघराले केश सुशोभित हो रहे थे तथा उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। वे त्रिकच्छ (धोती) धारण किये हुए थे तथा उनके गलेमें अपूर्व पुष्पोंकी माला शोभा पा रही थी॥५९-६०॥

प्रेमे गदगद–वाक्य कहे गौरराय।
बलोगो पार्वती! केन आइले हेथाय॥६१॥

प्रेममय गद्‌गद वाणी द्वारा श्रीगौररायने कहा—हे पार्वति! बताओ। तुम यहाँपर क्यों आयी हो?॥६१॥

जगतेर प्रभु–पदे पड़िया पार्वती।
जानाय आपन दुःख स्थिर नहे मति॥६२॥

जगत्‌के प्रभु श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर अपने दुःखका वर्णन करते समय पार्वतीदेवी अपने मनको स्थिर नहीं कर पा रही थी॥६२॥

श्रीपार्वतीदेवी द्वारा अपना दुःख निवेदन—

ओहे प्रभु जगन्नाथ जगत–जीवन।
सकलेर दयामय मोर विड़म्बन॥६३॥

श्रीपार्वतीदेवीने कहा—हे प्रभो! हे जगन्नाथ! जगत्–वासियोंके जीवन! आप सबके प्रति दयालु होनेपर भी मेरी विडम्बना क्यों कर रहे हैं?॥६३॥

तव बहिर्मुख जीवे बन्धन–कारण।
नियुक्त करिल मोरे पतितपावन॥६४॥

हे पतित पावन! आपने मुझे बहिर्मुख जीवोंको दण्ड देनेके लिए नियुक्त किया है॥६४॥

आमि थाकि सेइ काजे संसार पातिया।
तोमार अनन्त प्रेमे वञ्चित हइया॥६५॥

मैं सब समय उसी कार्यमें व्यस्त रहनेके कारण आपके अनन्त प्रेमसे वञ्चित रहती हूँ॥६५॥

लोके बले यथा कृष्ण माया नाहि तथा।
आमि तबे बहिर्मुख हइनु सर्वथा॥६६॥
केमने देखिब प्रभु तोमार विलास।
तुमि ना करिले पथ हइनु निरास॥६७॥

सभी लोग कहते हैं कि जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ माया नहीं रहती। यदि यह सत्य है तो मैं तो सब समय बहिर्मुख ही रहूँगी। मैं आपके नित्य विलासका किस प्रकार दर्शन करूँगी? यदि आप ही कुछ उपाय नहीं बतायेंगे तो मैं तो पूरी तरहसे निराश हो जाऊँगी॥६६-६७॥

'श्रीसीमन्तद्वीप' नामका कारण—

एत बलि' श्रीपार्वती गौर-पदधूलि।
सीमन्ते लइल सती करिया आकुलि॥६८॥

सेइ हैते 'श्रीसीमन्तद्वीप'–नाम हैल।
सिमुलिया बलि' अज्ञजनेते कहिल॥६९॥

इतना कहकर सती श्रीपार्वतीदेवीने कातर होकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके श्रीचरणोंकी रजको लेकर अपने सीमन्त (माँग) में भर लिया। तबसे इस स्थानका नाम 'सीमन्तद्वीप' हो गया। कोई–कोई अज्ञ व्यक्ति इसे सिमुलिया कहने लगे॥६८–६९॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा पार्वतीदेवीको सान्त्वना प्रदान—

श्रीगौराङ्गचन्द्र तबे प्रसन्न हइया।
बलिल पार्वती शुन कथा मन दिया॥७०॥

श्रीपार्वतीदेवीकी प्रार्थना सुनकर श्रीगौराङ्गचन्द्रने प्रसन्न होकर कहा—हे पार्वति! मेरी बात ध्यानसे सुनो॥७०॥

श्रीपार्वतीदेवी–तत्त्व—

तुमि मोर भिन्न नओ शक्ति सर्वेश्वरी।
एक शक्ति दुइ रूप मम सहचरी॥७१॥

हे सर्वेश्वरि! तुम मुझसे अलग नहीं हो। तुम मेरी ही शक्ति हो। मेरी एक ही शक्तिके दो रूप हैं॥७१॥

स्वरूप–शक्तिते तुमि राधिका आमार।
बहिरङ्गा–रूपे राधा तोमाते विस्तार॥७२॥

स्वरूपशक्तिके रूपमें तुम मेरी प्रिया श्रीराधा हो तथा बहिरङ्गाके रूपमें श्रीराधा ही तुम्हारे रूपमें अपना विस्तार करती हैं॥७२॥

तुमि नैले मोर लीला सिद्ध नाहि हय।
तुमि योगमायारूपे लीलाते निश्चय॥७३॥

तुम्हारे बिना मेरी लीला नहीं हो सकती। तुम मेरी लीलाओंमें योगमायाके रूपमें कार्य करती हो॥७३॥

व्रज और नवद्वीपमें श्रीपार्वतीदेवीका स्वरूप—

ब्रजे तुमि पौर्णमासीरूपे नित्यकाल।
नवद्वीपे प्रौढ़ामायासह क्षेत्रपाल॥७४॥

व्रजमें तुम नित्यकाल पौर्णमासी और नवद्वीपमें प्रौढ़ामायाके रूपमें क्षेत्रपाल शिवके साथ अवस्थान करती हो॥७४॥

एत बलि' श्रीगौराङ्ग हैल अदर्शन।
प्रेमाविष्ट ह'ये रहे पार्वतीर मन॥७५॥

इतना कहकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभु अन्तर्धान हो गये तथा पार्वतीदेवीका मन प्रेममें आविष्ट हो गया॥७५॥

सीमन्तिनी–देवीरूपे रहे एक भीते।
प्रौढ़ामाया मायापुरे रहे गौर–प्रीते॥७६॥

गौरप्रेममें निमग्न पार्वती यहाँपर सीमन्तिनीदेवीके रूपमें तथा मायापुरमें प्रौढ़ामायाके रूपमें अवस्थान करती है॥७६॥

काजी-नगर

एत बलि' नित्यानन्द काजिर नगरे।
प्रवेशिल 'जीवे' ल'ये तखन सत्वरे॥७७॥

इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु जल्दीसे श्रीजीवके साथ काजीके नगरमें पहुँच गये॥७७॥

व्रजका मथुरा—

प्रभु बले,—ओहे 'जीव', शुनह वचन।
काजिर नगरे एइ मथुरा भुवन॥७८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! सुनो। काजीका यह नगर व्रजका मथुरा है॥७८॥

हेथा श्रीगौराङ्गराय कीर्त्तन करिया।
काजि निस्तारिल प्रभु प्रेमरत्न दिया॥७९॥

यहाँपर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने कीर्त्तन करते हुए काजीका उद्धार किया था तथा उसे प्रेमरूपी दिव्य रत्न प्रदान किया था॥७९॥

चाँदकाजी, श्रीकृष्णलीलाका कंस—

श्रीकृष्ण–लीलाय जेइ कंस मथुराय।
गौराङ्ग–लीलाय चाँदकाजि नाम पाय॥८०॥

श्रीकृष्णकी लीलामें जो कंस था, वही गौरलीलामें चाँदकाजीके नामसे प्रसिद्ध हुआ॥८०॥

एइजन्य प्रभु ता'रे मातुल बलिल।
भये काजि गौरपदे शरण लइल॥८१॥

इसलिए महाप्रभुने उन्हें मामा कहकर पुकारा था। भयभीत होकर काजीने श्रीगौरसुन्दरकी शरण ग्रहण की थी॥८१॥

काजी द्वारा मृदङ्ग फोड़ना—

कीर्त्तन आरम्भे काजि मृदङ्ग भाङ्गिल।
होसेन साहार बले उत्पात करिल॥८२॥

किसी एक दिन कीर्त्तनके आरम्भमें काजीने मृदङ्ग फोड़ दिया। उसने यह सब उत्पात हुसैनशाहके बलपर किया॥८२॥

हुसैनशाह, श्रीकृष्णलीलाका जरासन्ध—

होसेनसा से जरासन्ध गौड़–राजेश्वर।
ताँहार आत्मीय काजि प्रताप विस्तर॥८३॥

गौड़देशका राजा हुसैनशाह कृष्णलीलाका जरासन्ध है। उसके आदेशसे ही काजीने अपना प्रताप विस्तार (मृदङ्ग फोड़ना, कीर्त्तनके लिए मना करना आदि) किया॥८३॥

काजीको श्रीनृसिंहरूपके दर्शन—

प्रभु ता'रे नृसिंहरूपेते देय भय।
भये कंससम काजि जड़सड़ हय॥८४॥

महाप्रभुने (स्वप्नमें)अपने नृसिंहरूप द्वारा उसे भयभीत किया। भयभीत होकर काजी ऐसे जड़मय हो गया, जैसे श्रीकृष्णको देखकर कंस हुआ था॥८४॥

काजीको प्रेम–दानकी प्राप्ति—

ता'रे प्रेम दिया कैल वैष्णवप्रधान।
काजिर निस्तार कथा शुने भाग्यवान्॥८५॥

महाप्रभुने उसे प्रेम दान करके प्रधान वैष्णव बना दिया। भाग्यवान व्यक्ति ही काजीके उद्धारकी कथा श्रवण करता है॥८५॥

व्रजतत्त्व और नवद्वीपतत्त्वमें भेद देखनेवालेकी गति—

ब्रजतत्त्व नवद्वीप–तत्त्वे देखे भेद।
कृष्ण–अपराधी, लभे निर्वाण अभेद॥८६॥

जो व्यक्ति व्रज तथा नवद्वीपके तत्त्वमें भेद देखता है, वह श्रीकृष्णके चरणोंमें अपराधी है तथा उसे अभेद–निर्वाणकी प्राप्ति होती है॥८६॥

श्रीगौरलीलाके सर्वोत्तम होनेका कारण—

हेथा अपराधी पाय प्रेमरत्न–धन।
अतएव गौरलीला सर्वोपरि हन॥८७॥

श्रीनवद्वीपधाममें अपराधी व्यक्ति भी प्रेमरत्नरूपी धनको प्राप्त करता है, इसलिए गौरलीला ही सर्वोत्तम है॥८७॥

गौरधाम, गौरनाम, गौर–रूप–गुण।
अपराध नाहि माने तारिते निपुण॥८८॥

गौरधाम, गौरनाम, गौररूप तथा गौरगुण—अपराधोंका विचार नहीं करते तथा उद्धार करनेमें परम निपुण हैं॥८८॥

यदि अपराध थाके साधकेर मने।
कृष्णनामे, कृष्णधामे तारे बहुदिने॥८९॥
गौरनामे, गौरधामे सद्य प्रेम हय।
अपराध नाहि ता'र, बाधा उपजय॥९०॥

यदि साधकके हृदयमें अपराध रहता है तो कृष्णनाम तथा कृष्णधाम उसका बहुत समयके बाद उद्धार करते हैं, किन्तु गौरनाम तथा गौरधामका आश्रय करनेपर बहुत शीघ्र ही प्रेमकी प्राप्ति होती है, क्योंकि यहाँपर अपराध किसी प्रकारकी बाधा उत्पन्न नहीं कर पाते॥८९-९०॥

काजीकी समाधि

ऐ देख ओहे 'जीव', काजिर समाधि।
देखिले जीवेर नाश हय आधि-व्याधि॥९१॥

हे जीव! अब काजीकी उस समाधिका दर्शन करो, जिसके दर्शनसे जीवोंके सभी दुःख-दर्द नष्ट हो जाते हैं॥९१॥

शंखवनिक-नगर (शरडाङ्गा)

एत बलि' नित्यानन्द प्रेमे गरगर।
चलिलेन द्रुत शंखवनिक-नगर॥९२॥

तथा गिया श्रीजीवेरे बलेन वचन।
ओहे देख शरडाङ्गा अपूर्व दर्शन॥९३॥

काजीकी समाधिके दर्शन करनेके उपरान्त श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रेममें विभोर होकर तेजीसे चलते हुए शंखवनिक नामक स्थानपर पहुँचे तथा श्रीजीवसे कहने लगे—हे जीव! अपूर्व शरडाङ्गाका दर्शन करो॥९२-९३॥

श्रीशरडाङ्गा नाम अति मनोहर।
जगन्नाथ बैसे यथा लइया शबर॥९४॥

और तो और अपने आपमें श्रीशरडाङ्गाका नाम ही बहुत मनोहर है। यहाँपर भगवान् श्रीजगन्नाथ शबर जातिके लोगोंके साथ वास करते हैं॥९४॥

पूर्वे जबे रक्तबाहु दौरात्म्य करिल।
दयिता-सहित प्रभु हेथाय आइल॥९५॥

प्राचीन कालमें जब रक्तबाहु नामक दस्युने घोर अत्याचार करना आरम्भ किया, तब जगन्नाथ अपने दयिताओं (प्रिय सेवकों) के साथ यहाँपर चले आये॥९५॥

शरडाङ्गा (श्रीनवद्वीपधाम स्थित श्रीजगन्नाथ पुरी)—

श्रीपुरुषोत्तम–सम ए धाम हय।
नित्य जगन्नाथस्थिति तथाय निश्चय॥९६॥

यह स्थान श्रीपुरुषोत्तम (पुरी) से अभिन्न है। यहाँपर भगवान् जगन्नाथ नित्यप्रति निश्चित रूपमें वास करते हैं॥९६॥

श्रीधर-अङ्गन

तबे तन्तुवाय–ग्राम हइलेन पार।
देखिलेन खोलाबेचा श्रीधर आगार॥९७॥

इसके उपरान्त श्रीनित्यानन्द प्रभुने तन्तुवाय नामक ग्रामको पार किया और वहाँपर खोलाबेचा (केले बेचनेवाले) श्रीधरके अङ्गनके दर्शन किये॥९७॥

श्रीधर–अङ्गनको विश्रामस्थान कहनेका कारण—

प्रभु बले,—"एइ स्थाने श्रीगौराङ्ग हरि।
कीर्त्तन विश्राम कैल भक्ते कृपा करि'॥९८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—इस स्थानपर श्रीगौरहरिने कीर्त्तन करनेके उपरान्त भक्तोंपर कृपा करने हेतु विश्राम किया था॥९८॥

एइ हेतु विश्रामस्थान एर नाम।
हेथा श्रीधरेर घरे करह विश्राम॥९९॥

इसलिए इस स्थानका नाम विश्रामस्थान है। तुम भी यहाँ श्रीधरके घरपर विश्राम करो॥९९॥

श्रीधर द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुकी पूजा—

श्रीधर शुनिल जबे प्रभु–आगमन।
साष्टाङ्गे आसिया करे प्रभुर पूजन॥१००॥

श्रीधरने जब श्रीनित्यानन्द प्रभुके आगमनका समाचार सुना, तब वहाँपर उपस्थित होकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके बाद वे उनकी पूजा करने लगे॥१००॥

श्रीधर द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें निवेदन—

बले,—"प्रभु बड़ दया ए दासेर प्रति।
विश्राम करह हेथा आमार मिनति॥"१०१॥

श्रीधर श्रीनित्यानन्द प्रभुसे कहने लगे—हे प्रभो! इस दासपर आपकी बहुत कृपा है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मेरी कुटियापर विश्राम करें॥१०१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीधरके सौभाग्यकी प्रशंसा—

प्रभु बले,—"तुमि हओ अति भाग्यवान्।
तोमारे करिल कृपा गौर–भगवान्॥१०२॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—तुम बहुत सौभाग्यशाली हो, क्योंकि स्वयं श्रीगौरहरिने तुमपर कृपा की है॥१०२॥

अद्य मोरा एइ स्थाने करिब विश्राम।"
शुनिया श्रीधर तबे हय आप्तकाम॥१०३॥

आज हमलोग भी इस स्थानपर विश्राम करेंगे। श्रीनित्यानन्द प्रभुके वचन सुनकर श्रीधर बहुत सन्तुष्ट हुए॥१०३॥

बहु यत्ने सेवायोग्य सामग्री लइया।
रन्धन कराय भक्त ब्राह्मणेरे दिया॥१०४॥

श्रीधर बहुत प्रयत्नपूर्वक सेवा–सामग्री ले आये और भक्त ब्राह्मणों द्वारा रसोई करवायी॥१०४॥

निताइ–श्रीवास–सेवा हैले समापन।
आनन्दे प्रसाद पाय 'श्रीजीव' तखन॥१०५॥

प्रभु श्रीनित्यानन्द तथा श्रीवास पण्डितके भोजनके उपरान्त श्रीजीवने आनन्दपूर्वक प्रसाद ग्रहण किया॥१०५॥

श्रीधर द्वारा सपरिवार श्रीनित्यानन्द प्रभुकी सेवा—

नित्यानन्दे खट्टोपरि कराय शयन।
सवंशे श्रीधर करे पादसम्वाहन॥१०६॥

भोजनके उपरान्त श्रीनित्यानन्द प्रभुको पलङ्गपर सुलाकर श्रीधर अपने सम्पूर्ण परिवार सहित उनके श्रीचरणोंकी सेवा करने लगे॥१०६॥

षष्टितीर्थ

अपराह्ने श्रीजीवेरे लइया श्रीवास।
षष्टितीर्थ देखाइल हइया उल्लास॥१०७॥

दोपहरके समय श्रीवास पण्डितने श्रीजीवको उल्लसित होकर षष्टितीर्थके दर्शन कराये॥१०७॥

विश्वकर्माका नवद्वीप आगमन—

श्रीवास कहिल,—शुन 'जीव' सदाशय।
पूर्वे देवगण जबे शुनिल निश्चय॥१०८॥

नवद्वीपे ह'बे महाप्रभु अवतार।
विश्वकर्मा आइलेन नदीया नगर॥१०९॥

श्रीवास पण्डितने कहा—हे सुन्दर भावनाओंवाले जीव! सुनो, जब देवताओंने सुना कि श्रीमन् महाप्रभु अवश्य ही श्रीनवद्वीपधाममें प्रकट होंगे, तब उन्होंने विश्वकर्माको इस नदिया नगरमें भेजा॥१०८-१०९॥

विश्वकर्मा द्वारा श्रीनवद्वीपधामकी सेवा—

प्रभु जेइ पथे करिबेन सङ्कीर्त्तन।
सेइ पथे जलकष्ट करिते वारण॥११०॥

एक रात्रे साठ कुण्ड काटिल विशाइ।
शेष कुण्ड काजिग्रामे करिल काटाइ॥१११॥

महाप्रभु जिस मार्गसे होते हुए सङ्कीर्त्तन करेंगे, उस स्थानपर (भक्तोंके पीनेके लिए) जलकी कोई असुविधा न हो, ऐसा सोचकर विश्वकर्माने एक ही रातमें बहुत बड़े-बड़े साठ कुण्ड तैयार कर दिये। उसने अन्तिम कुण्ड काजीके गाँवमें बनाया॥११०-१११॥

श्रीधरेर कलाबाग देखिते सुन्दर।
इहार निकटे एक देख सरोवर॥११२॥

देखो! उन्हीं कुण्डोंमेंसे एक कुण्ड अभी भी श्रीधरके सुन्दर केलेके बगीचेके निकट स्थित है॥११२॥

एइ सरोवरे कभु करि' जल-खेला।
महाप्रभु लइलेन श्रीधरेर खोला॥११३॥

इसी सरोवरमें जलकेलि करते हुए श्रीमन् महाप्रभु कभी-कभी श्रीधरके केले उठा लेते थे॥११३॥

अद्यावधि मोचा-थोड़ लइया श्रीधर।
श्रीशचीमाताके देय उल्लास-अन्तर॥११४॥

(महाप्रभुकी उन्हीं लीलाओंका स्मरणकर) आज भी श्रीधर अत्यधिक उल्लासपूर्वक श्रीशचीमाताको मोचा (केलेके फूल) तथा थोड़ (केलेका कोमल तना) जाकर देते हैं॥११४॥

मयामारि

इहार निकटे मयामारि नाम स्थान।
देखह 'श्रीजीव' आजो आछे विद्यमान्॥११५॥

हे जीव! इसके निकट ही मयामारि नामक स्थानका दर्शन करो, यह आज भी यहाँपर विद्यमान है॥११५॥

मयामारि नामक स्थानपर श्रीबलदेव प्रभुका आगमन—

पौराणिक कथा एक करह श्रवण।
तीर्थयात्रा बलदेव करिल जखन॥११६॥

नवद्वीपे आसि' जबे करिल विश्राम।
विप्रगण जानाइल मयासुर-नाम॥११७॥

मैं तुम्हें इस स्थानके माहात्म्यसे सम्बन्धित एक पौराणिक उपाख्यान सुना रहा हूँ, तुम उसका श्रवण करो। एक समय श्रीबलदेव प्रभु तीर्थ-यात्रा करते हुए नवद्वीप पहुँचे। नवद्वीपमें आकर वे विश्राम करने लगे। अभी वे विश्राम कर ही रहे थे कि आस-पासके ब्राह्मणोंने आकर उन्हें मयासुर नामक एक असुरके अत्याचारके विषयमें बताया॥११६-११७॥

मयामारि नाम पड़नेका कारण—

मयासुर-उपद्रव शुनि' हलधर।
महावेगे धरे तारे माठेर भितर॥११८॥

मयासुरके उपद्रवका श्रवण करके हलधर (श्रीबलदेव) ने बहुत तेजीसे जाकर उसे मैदानके बीचमें ही पकड़ लिया॥११८॥

महायुद्ध कैल दैत्य बलदेव–साथ।
अवशेषे राम तारे करिल निपात॥११९॥

उस दैत्यने श्रीबलदेव प्रभुके साथ बहुत युद्ध किया तथा अन्तमें वह श्रीबलदेवके हाथों मारा गया॥११९॥

से अवधि मयामारि नाम ख्यात हैल।
बहुकाल कथा आज तोमारे कहिल॥१२०॥

तबसे यह स्थान मयामारिके नामसे प्रसिद्ध हो गया। मैंने तुम्हें आज बहुत पुरानी कथा सुनायी है॥१२०॥

मयामारि, व्रजका तालवन—

तालवन–नाम एइ तीर्थ ब्रजपुरे।
सदा भाग्यवान् जन नयनेते स्फुरे॥१२१॥

भाग्यशाली जीवोंके समक्ष यह स्थान (मयामारि) व्रजके तालवनके रूपमें स्फुरित होता है॥१२१॥

सेइ रात्रे सेइ स्थाने थाकिलेन सबे।
परदिन यात्रा करे 'हरि' 'हरि' रबे॥१२२॥

उस रात्रिको सभीने वहींपर (श्रीधर–अङ्गनमें) विश्राम किया और अगले दिन प्रातःकाल "हरि, हरि" की ध्वनि करते हुए यात्राके लिए बाहर निकले॥१२२॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट–प्रार्थना—

निताइ–जाह्नवा–पदछाया जार आश।
नदीया–माहात्म्य करे ए दास प्रकाश॥१२३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण–कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे दास भक्तिविनोद द्वारा नदियाके माहात्म्यका प्रकाश किया जा रहा है॥१२३॥

षष्ठ अध्याय समाप्त।

श्रीनृसिंहदेव (नृसिंहपल्ली)

सप्तम अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय श्रीचैतन्यचन्द्र, जय प्रभु नित्यानन्द,
जयाद्वैत जय गदाधर।
जय श्रीवासादिभक्त, गौरपदे अनुरक्त,
जय नवद्वीपधामवर॥१॥

श्रीचैतन्यचन्द्रकी जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके श्रीचरणोंमें अनुरक्त श्रीवास आदि भक्तवृन्दकी जय हो। सर्वश्रेष्ठ धाम श्रीनवद्वीपकी जय हो॥१॥

श्रीसुवर्णविहार

छाड़िया विश्राम स्थान, श्रीजीवे लइया जान,
जथा ग्राम सुवर्णविहार।
ओहे 'जीव' प्रभु कय, अपूर्व ए स्थान हय,
नवद्वीप प्रकृतिर पार॥२॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीजीवको विश्रामस्थान (श्रीधर-अङ्गन) से सुवर्णविहार ले गये। वहाँ पहुँचकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! यह अपूर्व स्थान प्रकृतिसे परे अर्थात् अप्राकृत है॥२॥

विषयी व्यक्तिका मरते दम तक केवलमात्र एक ही उद्देश्य,—विषय-संग्रह। भले ही कोई श्रीस्वर्णसेन राजा जैसा ही क्यों न बन जाये!—

सत्ययुगे एइ स्थाने, छिल राजा सबे जाने,
श्रीसुवर्णसेन ता'र नाम।
बहुकाल राज्य कैल, परेते वार्द्धक्य हैल,
तबु नाहि कार्य्येते विश्राम॥३॥

सत्ययुगमें यहाँ एक श्रीसुवर्णसेन नामक प्रसिद्ध राजा रहता था। उसने यहाँपर बहुत समय तक राज्य किया। वृद्ध होनेपर भी वह राज-कार्यमें व्यस्त ही रहा, उससे निवृत्त नहीं हुआ॥३॥

धामवाससे अनायास ही साधुसङ्गकी प्राप्तिका अवसर—

विषये आविष्ट चित्त, किसे वृद्धि हय वित्त,
एइ चिन्ता करे नरवर।
कि जानि कि भाग्यवशे, श्रीनारद तथा आइसे,
राजा ताँरे पूजिल विस्तर॥४॥

वह राजा सब समय विषयोंमें ही आविष्ट रहता था और नित्यप्रति यही चिन्ता करता था कि मेरे साम्राज्यमें धनकी वृद्धि कैसे हो? पता नहीं, उसके किस सौभाग्यसे एक दिन देवर्षि श्रीनारद वहाँपर आये। उन्हें (श्रीनारदको) देखकर राजाने उनकी बहुत पूजा-अभ्यर्थना की॥४॥

परदुःखदुःखी श्रीनारदजी द्वारा तत्त्व-उपदेश—

नारदेर दया हैल, तत्त्व-उपदेश कैल,
राजारे त' लइया निर्जने।
नारद कहेन राय, वृथा तव दिन जाय,
अर्थचिन्ता करि' मने मने॥५॥

अर्थके अनर्थ जान, परमार्थ दिव्यज्ञान,
हृदये भावह एकबार।
दारा-पुत्र-बन्धुजन, केह नहे निज-जन,
मरणेते केह नहे कार॥६॥

(राजाकी अवस्था देखकर) श्रीनारदके हृदयमें उसके प्रति दया आ गयी। श्रीनारदने राजाको निर्जन स्थानपर ले जाकर वास्तविक तत्त्वका

उपदेश प्रदान किया। श्रीनारदने कहा—हे राजन्! मन-ही-मन सब समय अर्थकी चिन्ता करते-करते तुम्हारे दिन व्यर्थमें नष्ट हो रहे हैं। यह अर्थ नहीं, अनर्थ है, इसे समझो। अन्ततः एक बार अपने हृदयमें परमार्थ (वास्तविक अर्थ, पञ्चम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेम) रूपी दिव्यज्ञानकी चिन्ता करो। पत्नी, पुत्र, बन्धु-बान्धव आदि कोई भी अपना नहीं है। मरनेके बाद कोई किसीका नहीं रहता॥५-६॥

जीवन अमूल्य होनेपर भी क्षणभङ्गुर—

तोमार मरण ह'ले, देहटी भासा'ये जले,
सबे जा'बे गृहे आपनार।
तबे केन मिथ्या आशा, विषयजल-पिपासा,
यदि केह नाहि हैल का'र॥७॥

तुम्हारे मरनेके बाद तुम्हारी देहका नदीके किनारे दाह-संस्कारकर उसका अवशिष्ट भस्म नदीके जलमें बहाकर सभी अपने-अपने घर चले जायेंगे। जब कोई किसीका हो ही नहीं सकता, तो फिर क्यों मिथ्या आशा लगाकर बैठे हो तथा किसलिए अपनी प्यास बुझानेके लिए (एक बूँदके

समान, प्यास न बुझा पानेवाले) विषयोंके प्रति आसक्त हो रहे हो॥७॥

केवलमात्र जागतिक अर्थसे सुख-प्राप्तिकी आशा मूर्खता—

यदि बल लभि' सुख, जीवने ना पाइ दुःख,
अतएव अर्थचेष्टा करि।
सेह मिथ्या कथा राय, जीवन अनित्य हय,
नाहि रहे शत वर्षोपरि॥८॥

यदि कहो कि सुख प्राप्त करने और जीवनसे दुःखको दूर करनेके लिए अर्थ प्राप्तिकी चेष्टा करता हूँ, तो हे राय! मेरा कहना है कि यह सब झूठ है, क्योंकि जीवन ही अनित्य है, एक सौ वर्षसे अधिक टिकनेवाला नहीं है॥८॥

मानवजीवनका वास्तविक उद्देश्य—

अतएव जान सार, जेते हबे मायापार,
जथा सुखे दुःख नाहि हय।
किसे वा साधिब बल, सेइ त' अपूर्व फल,
जाहे नाहि शोक-दुःख-भय॥९॥

इसलिए जीवनके सार (वास्तविक उद्देश्य) को जानो। देखो! मनुष्यजीवन भवसागरसे पार होने

अर्थात् केवलमात्र भजन करनेके लिए ही प्राप्त हुआ है। क्या तुम्हें पता है कि ऐसा स्थान जहाँपर शोक, दुःख और भय न हो, उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? (उसे जाननेका प्रयास करो।) ॥९॥

वैराग्य और ज्ञानसे भगवद्धामकी प्राप्ति असम्भव—

केवल वैराग्य करि', ताहा ना पाइते पारि,
केवल ज्ञानेते ताहा नाइ।
वैराग्य ज्ञानेर बले, विषयबन्धन गले,
जीवेर कैवल्य हय भाइ ॥१०॥

हे राजन्! केवल वैराग्यसे उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता और केवल ज्ञानसे भी उसकी प्राप्ति असम्भव है। वैराग्य और ज्ञानके बलपर विषयका बन्धन छूट जानेसे अधिक-से-अधिक जीवोंको कैवल्य (सायुज्य-मुक्ति) की प्राप्ति हो सकती है ॥१०॥

कैवल्य मुक्ति सर्वनाशका कारण—

कैवल्ये आनन्द नाइ, सर्वनाश बलि ताइ,
कैवल्येर नितान्त धिक्कार।

एदिके विषय गेल, श्रेष्ठ किछु ना मिलिल,
कैवेल्येर करह विचार॥११॥
अतएव ज्ञानी जन, भुक्ति–मुक्ति नाहि ल'न,
कृष्णभक्ति करेन साधन।
विषयेते अनासक्ति, कृष्णपदे अनुरक्ति,
सम्बन्धाभिधेय–प्रयोजन ॥१२॥

किन्तु कैवल्य मुक्तिमें कोई भी आनन्द नहीं है। वह तो जीवोंके लिए सर्वनाश है। अत्यन्त घृणित है। इसमें एक ओर तो सब विषय नष्ट हो जाते हैं तथा दूसरी ओर कोई श्रेष्ठ वस्तु भी प्राप्त नहीं होती। अतएव जो इस कैवल्यके तत्त्वपर ठीकसे विचार करते हैं, वे बुद्धिमान व्यक्ति भुक्ति (विषयोंकी प्राप्ति) और मुक्ति (केवल दुःखोंसे निवृत्ति) की इच्छाको त्यागकर केवल कृष्णभक्तिका साधन करते हैं। सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजनको भलीभाँति समझकर वे विषयोंके प्रति अनासक्त तथा श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंके प्रति आसक्त होते हैं॥११–१२॥

भगवद्धाम-प्राप्तिका एकमात्र उपाय—भक्ति—

जीव से कृष्णेर दास, भक्ति बिना सर्वनाश,
भक्तिवृक्षे फले प्रेमफल।
सेइ फल प्रयोजन, कृष्णप्रेम नित्यधन,
भुक्ति-मुक्ति तुच्छ से-सकल॥१३॥

जीव श्रीकृष्णका दास है (सम्बन्ध), भक्ति (अभिधेय) के बिना उसका सर्वनाश होता है और भक्तिरूपी वृक्षपर प्रेमरूपी फल लगता है। कृष्णप्रेमरूपी नित्य धनको प्राप्त करना ही प्रयोजन है। भुक्ति और मुक्ति आदि तुच्छ फल हैं॥१३॥

कृष्णका दास होनेपर भी जीव द्वारा मायाका स्पर्श—

कृष्णचिदानन्द रवि, माया ताँ'र छाया-छवि,
जीव ताँ'र किरणाणुगण।
तटस्थ धर्मेर वशे, जीव यदि माया स्पर्शे,
माया ता'रे करय बन्धन॥१४॥

श्रीकृष्ण चिदानन्द (ज्ञान और आनन्द) रूपी सूर्य है। माया उनकी छाया है और जीव उनका किरण-कणमात्र है। तटस्थशक्तिसे उत्पन्न होनेके कारण यदि जीव मायाको स्पर्श करता है तो माया उसे अपने जालमें बाँध लेती है॥१४॥

मायाके जालमें पड़कर जीवकी गति—

कृष्णबहिर्मुख जेइ, मायास्पर्शी जीव सेइ,
मायास्पर्शे कर्मसङ्ग पाय।
मायाजाले भ्रमि' मरे, कर्म—ज्ञाने नाहि तरे,
कष्टनाश मन्त्रणा कराय॥१५॥

जो जीव श्रीकृष्णसे बहिर्मुख होता है, वह मायाको स्पर्श करनेके फलस्वरूप कर्मके चक्करमें पड़ जाता है। मायाके जालमें पड़कर भ्रमण करते-करते कष्ट-ही-कष्ट पाता है और कर्म तथा ज्ञानके साधनों द्वारा उद्धार प्राप्त नहीं कर पाता॥१५॥

कभु कर्म आचरय, अष्टाङ्गादि योगमय,
कभु ब्रह्मज्ञान—आलोचन।
कभु कभु तर्क करे, अवशेषे नाहि तरे,
नाहि माने आत्मतत्त्वधन॥१६॥

कभी तो वह कर्मका आचरण करता है, कभी अष्टाङ्ग आदि योग करता है, तो कभी ब्रह्मज्ञानका अनुशीलन करता है। कभी-कभी तर्क-पथका अवलम्बन करता है। तब भी अन्तमें उद्धार प्राप्त नहीं कर पाता। यद्यपि आत्मतत्त्वके ज्ञानके बिना

उद्धार होना सम्भव नहीं; तथापि वह उस आत्म-ज्ञान अर्थात् भक्तिको ग्रहण ही नहीं करना चाहता॥१६॥

अनेक योनियोंमें भ्रमण करते-करते भक्तोंके सङ्गसे ही शुद्धभक्तिकी प्राप्ति—

भ्रमिते भ्रमिते जबे, भक्तजनसङ्ग ह'बे,
तबे श्रद्धा लभिबे निर्मल।
साधुसङ्गे कृष्ण भजि, हृदय-अनर्थ त्यजि',
निष्ठा लाभ करे सुविमल॥१७॥

जीव अपने पूर्वकृत कर्मोंके फलसे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें भ्रमण करते-करते जब किसी सौभाग्यसे भक्तोंका सङ्ग प्राप्त करता है, तब वह निर्मल श्रद्धाको प्राप्त करता है और साधुसङ्गमें श्रीकृष्णका भजन करते-करते उसके हृदयके सारे अनर्थ दूर हो जानेपर उसे सुविमल निष्ठाकी प्राप्ति होती है॥१७॥

भजिते भजिते तबे, सेइ निष्ठा रुचि ह'बे,
क्रमे रुचि हइबे आसक्ति।
आसक्ति हइबे भाव, ताहे ह'बे प्रेमलाभ,
एइ क्रमे हय शुद्धभक्ति॥१८॥

भजन करते-करते उसकी वह निष्ठा रुचिमें और रुचि आसक्तिमें क्रमसे परिवर्त्तित हो जाती है। तदनन्तर आसक्ति भावके रूपमें और भाव प्रेमके रूपमें प्रकाशित हो जाता है। इसी क्रमसे शुद्धभक्तिकी प्राप्ति होती है॥१८॥

भक्तोंके आनुगत्यमें की गयी नवधाभक्ति ही वास्तविक फल प्राप्तिका उपाय—

श्रवण-कीर्त्तन मति, सेवा-कृष्णार्चन नति,
दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन ।
नवधा साधन एइ, भक्तसङ्गे करे जेइ,
सेइ लभे कृष्णप्रेमधन॥१९॥

श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, सेवा, कृष्णार्चन, नति (प्रणाम), दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—नवधाभक्तिके इन अङ्गोंको जो कोई भक्तोंके आनुगत्यमें रहकर पालन करता है, उसे कृष्णप्रेमरूपी धनकी प्राप्ति होती है॥१९॥

धामवासीका कर्त्तव्य—

तुमि राजा भाग्यवान्, नवद्वीपे तव स्थान,
धामवासे तव भाग्योदय।

साधुसङ्गे श्रद्धा पे'ये, कृष्णनाम–गुण गे'ये,
प्रेमसूर्ये कराओ उदय॥२०॥

आप बहुत सौभाग्यशाली राजा हैं। क्योंकि आपका वासस्थान श्रीनवद्वीपधाममें है। धाममें वास करनेसे आपका भाग्य उदित हुआ है। अब सांसारिक विषयोंका त्यागकर साधुसङ्गमें वास करके निर्मल श्रद्धाको प्राप्त करो और श्रीकृष्णके नाम तथा गुणोंका निरन्तर कीर्त्तन करके अपने हृदयमें प्रेमरूपी सूर्यको उदय कराओ॥२०॥

श्रीनारद मुनि द्वारा श्रीगौराङ्ग अवतारकी सूचना—

धन्य कलि आगमने, हेथा कृष्ण ल'ये गणे,
श्रीगौराङ्ग–लीला प्रकाशिबे।
जेइ गौरनाम ल'बे, ता'ते कृष्णकृपा ह'बे,
ब्रजे वास सेइत' करिबे॥२१॥

आनेवाले धन्य कलियुगमें यहाँपर श्रीकृष्ण अपने परिकरोंके साथ श्रीगौराङ्गके रूपमें अपनी व्रजलीला प्रकाशित करेंगे। जो कोई भी श्रीगौरहरिका नाम उच्चारण करेगा, उसे श्रीकृष्णकी कृपाकी प्राप्ति होगी और वह व्रजमें वासस्थान प्राप्त करेगा॥२१॥

श्रीकृष्ण-प्राप्तिका सरल उपाय—

गौरनाम ना लइया, जेइ कृष्ण भजे गिया,
सेइ कृष्ण बहुकाले पाय।
गौरनाम लय जेइ, सद्य कृष्ण पाय सेइ,
अपराध नाहि रहे ताय॥२२॥

श्रीगौरहरिका आश्रय ग्रहण किये बिना—उनका नाम उच्चारण किये बिना जो श्रीकृष्णका भजन करता है, उसे श्रीकृष्ण बहुत समयके बाद प्राप्त होते हैं। किन्तु जो कोई श्रीगौरहरिका नाम ग्रहण करता है, उसे बहुत शीघ्र ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है और उसके सभी अपराध नष्ट हो जाते हैं॥२२॥

श्रीगौरनामका प्रताप—

बलिते बलिते मुनि, अधैर्य हय अमनि,
नाचिते लागिल 'गौर' बलि'।
गौरहरि बोल धरि', वीणा बले गौरहरि,
कबे से आसिबे धन्य कलि॥२३॥

ऐसा कहते-कहते नारद स्वयं ही धैर्य धारण नहीं कर पाये और "श्रीगौरहरि" कहते-कहते वीणा बजाते हुए नृत्य करने लगे। उनकी वीणा

भी कहने लगी—हे गौरहरि! धन्य कलि कब आयेगा॥२३॥

भक्तकी कृपासे ही प्रेमका आविर्भाव सम्भवपर—

एइ सब बलि' ता'य, नारद चलिया जाय,
प्रेमोदय हइल राजार।
गौराङ्ग बलिया नाचे, साधु हैते प्रेम याचे,
विषय-वासना घुचे ताँ'र॥२४॥

इस प्रकार राजाको कृष्णभक्तिका उपदेश देकर श्रीनारद मुनि वहाँसे चले गये। नारदकी कृपासे राजाके हृदयमें प्रेमका उदय हो आया। राजा "गौराङ्ग-गौराङ्ग" कहकर नृत्य करने लगा और साधुओंसे प्रेमकी भिक्षा माँगने लगा। उस राजाकी सारी विषय-वासनाएँ दूर हो गयीं॥२४॥

राजाको स्वप्नमें श्रीगौर-गदाधरके दर्शन प्राप्त—

निद्राकाले नरवर, देखे गौर-गदाधर,
सपार्षदे ताँहार अङ्गने।
नाचे 'हरे-कृष्ण' बलि', करे सबे कोलाकुलि,
सुवर्णप्रतिमा गौर सने॥२५॥

एक दिन सोते समय राजाने अपने आँगनमें सपार्षद गौर-गदाधरके दर्शन प्राप्त किये। तप्त

काञ्चन गौरवर्णवाले श्रीगौरहरिके साथ उनके सभी भक्त "हरे कृष्ण" कहते हुए नृत्य कर रहे थे और एक-दूसरेका आलिङ्गन कर रहे थे॥२५॥

नींद खुलनेपर राजाकी स्थिति—

निद्रा-भङ्गे नरपति, कातर हइल अति,
गौर लागि' कर'य क्रन्दन।
दैववाणी हैल ताय, प्रकट समये राय,
ह'बे तुमि पार्षदे गणन॥२६॥

जैसे ही राजाकी नींद खुली, वह अत्यधिक कातर हो उठा तथा श्रीगौरहरिकी प्राप्ति हेतु रोने लगा। उसी समय एक आकाशवाणीने राजासे कहा—हे राजन्! मेरी प्रकटलीलाके समय तुम्हारा जन्म होगा और तुम्हारी मेरे पार्षदोंमें गिनती होगी॥२६॥

श्रीमन् महाप्रभुकी लीलामें राजा श्रीसुवर्ण सेनका परिचय—

बुद्धिमन्त खाँन नाम, पाइबे हे गुणधाम,
सेविबे गौराङ्ग-श्रीचरण।
दैववाणी काने शुनि', स्थिर हैल नरमणि,
करे तबे गौराङ्ग-भजन॥२७॥

हे सर्वगुण–सम्पन्न राजन्! उस समय तुम्हारा नाम बुद्धिमन्त खान होगा और तुम श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके चरणकमलोंकी सेवा करोगे। उस दैववाणीको अपने कानोंसे सुनकर राजाने धैर्य धारण किया और तबसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करने लगे॥२७॥

श्रीवास पण्डितमें नारदका आवेश—

नित्यानन्द–कथा शेषे, नारदेर शक्त्यावेशे,
श्रीवास हइल अचेतन।
महाप्रेमावेशे तबे, गौरनामामृतासवे,
भूमे लोटे श्रीजीव तखन॥२८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कथाके अन्तमें श्रीवास पण्डित नारदके शक्त्यावेशमें मूर्च्छित हो गये। उनकी ऐसी अवस्था देखकर महाप्रेममें मत्त होकर गौर–नामामृतका पान करते हुए श्रीजीव वहाँकी रजमें लोट–पोट करते हुए कहने लगे—॥२८॥

भक्त वाञ्छा पूर्णकारी श्रीगौरहरि—

आहा कि गौराङ्गराय, देखिब आमि हेथाय,
सुवर्ण पुतलि गोरामणि।

बलिते बलिते तबे, श्रीगौरकीर्त्तन सबे,
नयनेते देखय अमनि ॥२९ ॥

अहो! क्या मैं भी यहाँपर उस स्वर्ण प्रतिमा स्वरूप गौरमणिके दर्शन प्राप्त करूँगा। जिस समय श्रीजीव ऐसा कह ही रहे थे कि उन्होंने (श्रीनित्यानन्द, श्रीवास और श्रीजीवने) श्रीमन् महाप्रभुको सङ्कीर्त्तन करते देखा ॥२९ ॥

आहा से अमिय जिनि', गौराङ्गेर रूपखानि,
नाचिते लागिल सेइखाने।
तबे नित्यानन्द राय, गौराङ्गेर गुण गाय,
अद्वैत सहित सर्वजने ॥३० ॥

अहो! श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका वह अपूर्व रूप अमृतको भी तिरस्कृत करनेवाला था। श्रीमन् महाप्रभु नृत्य कर रहे थे और श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीअद्वैताचार्यके साथ मिलकर सभी भक्त श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका गुणगान कर रहे थे ॥३० ॥

मृदङ्ग मन्दिरा बाजे, सङ्कीर्त्तन सुविराजे,
पूर्वलीला हइल विस्तर।

कत जे आनन्द हय, वर्णिते शकति नय,
बेला हइल द्वितीय प्रहर॥३१॥

मृदङ्ग और करताल बज रहे थे। सभी सङ्कीर्त्तनमें मस्त थे। श्रीमन् महाप्रभुके नवद्वीप वास करनेके समय हुई पूर्वलीला प्रकट हो गयी। उस समय सभीके हृदयमें कितना आनन्द हुआ, उसका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तब तक दोपहरका समय हो गया॥३१॥

श्रीनृसिंहपल्ली

तबे त' चलिल सबे, गौरगीत–कलरवे,
देवपल्ली–ग्रामेर भीतर।
तथाय विश्राम कैल, देवेर अतिथि हैल,
मध्याह्न भोजन अतःपर॥३२॥

वे लोग उच्च स्वरसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका गुणगान गाते हुए चलते–चलते देवपल्ली नामक ग्राममें पहुँचे। वहाँपर सभीने विश्राम किया और देवता (श्रीनृसिंहदेव) के अतिथि बनकर दोपहरकी प्रसाद–सेवा वहीं की॥३२॥

सत्ययुगसे भगवान् श्रीनृसिंहदेवका स्थान—

दिवसेर शेष यामे, सकले भ्रमये ग्रामे,
प्रभु—नित्यानन्द तबे कय।
देवपल्ली एइ हय, श्रीनृसिंह—देवालय,
सत्ययुग हैते परिचय॥३३॥

दिनके अन्तिम याम (सन्ध्याके समय) में वे लोग उस ग्राममें भ्रमण करने लगे। भ्रमण करते-करते श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—यह देवपल्ली है। यहाँपर सत्ययुगके समयसे प्रसिद्ध श्रीनृसिंह भगवान्का मन्दिर है॥३३॥

श्रीनृसिंह भगवान्का विश्रम-स्थान—

प्रह्लादेरे दया करि', हिरण्ये वधिया हरि,
एइ स्थाने करिल विश्राम।
ब्रह्मा आदि देवगण, निज निज निकेतन,
करि' एक बसाइल ग्राम॥३४॥

प्रह्लादपर दया करके भगवान् श्रीहरिने हिरण्य-कश्यपुका वध करनेके उपरान्त इसी स्थानपर विश्राम किया था। ब्रह्मा आदि देवताओंने अपने-

अपने घर बनाकर यहाँपर एक गाँव ही बसा लिया था॥३४॥

भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी सेवाके उद्देश्यसे अनेकानेक देवताओंका आगमन—

मन्दाकिनीतट धरि', टिलाय वसति करि',
नृसिंह सेवाय हैल रत।
श्रीनृसिंहक्षेत्र–नाम, नवद्वीपे एइ धाम,
परमपावन शास्त्रमत॥३५॥

वे सभी देवतालोग मन्दाकिनीके तटपर स्थित टीलेके ऊपर वास करते हुए भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी सेवामें मग्न हो गये। शास्त्रोंके मतानुसार श्रीनवद्वीपधाममें स्थित श्रीनृसिंहक्षेत्र नामक यह स्थान परम पवित्र है॥३५॥

सूर्यटिला, ब्रह्मटिला, नृसिंह पूरवे छिला,
एबे स्थान हैल विपर्यय।
गणेशेर टिला हेर, इन्द्रटिला तार पर,
एइरूप बहु टिलामय॥३६॥

हे जीव! सूर्यटीला तथा ब्रह्मटीलाका दर्शन करो। पहले इनके पूर्व दिशाकी ओर ही नृसिंह–

टीला था, किन्तु अब यह स्थान परिवर्त्तित हो गया है। गणेशटीलाको देखो, उसके बादमें इन्द्रटीला है। इस प्रकार यहाँपर बहुत-से टीले हैं॥३६॥

विश्वकर्मा द्वारा देवताओंके वासयोग्य भवनोंका निर्माण—

विश्वकर्मा महाशय, निर्मिला प्रस्तरमय,
कत शत देवेर वसति।
काले सब लोप हैल, मन्दाकिनी शुकाइल,
टिलामात्र आछय सम्प्रति॥३७॥

यद्यपि विश्वकर्मा महाशयने यहाँपर सैकड़ों देवताओंके वास योग्य हीरे-मोतीसे जड़े हुए अनेक भवन बनाये थे, तथापि समयके प्रभावसे वे सब लुप्त हो गये हैं। अब मन्दाकिनी भी सूख गयी है। केवलमात्र टीले ही रह गये है॥३७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी भविष्यवाणी—

शिलाखण्ड अगणन, कर एबे दरशन,
सेइ सब मन्दिरेर शेष।
पुनः किछुदिन परे, एक भक्त नरवरे,
पा'बे नृसिंहेर कृपा-लेश॥३८॥

बृहत मन्दिर करि', बसाइबे नरहरि,
पुनः सेवा करिबे प्रकाश।
नवद्वीप–परिक्रमा, तार एइ एक सीमा,
षोलक्रोश–मध्ये एइ वास॥३९॥

यहाँपर अगणित इन शिलाखण्डोंका दर्शन करो। ये सब मन्दिरके ही अवशेष हैं। कुछ दिनोंके बाद एक भक्त श्रीनृसिंह भगवान्‌की कृपालेश प्राप्त करेगा और यहाँपर बहुत बड़ा मन्दिर बनाकर भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी प्रतिष्ठा करके पुनः उनकी सेवा प्रकाशित करेगा। सोलह कोस नवद्वीप–परिक्रमाकी यह एक अन्तिम सीमा है॥३८–३९॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट–प्रार्थना—

निताइ–जाह्नवा–पद, जे–जनार सम्पद,
सेइ भक्तिविनोद काङ्गाल।
नवद्वीप–सुमहिमा, नाहि तार कभु सीमा,
ताहा गाय छाड़ि' मायाजाल॥४०॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण–कमलोंकी सेवा ही जिस व्यक्तिकी सम्पत्ति है, वही

कङ्गाल भक्तिविनोद मायाके जालको छोड़कर ऐसे श्रीनवद्वीपकी महिमाका गान कर रहा है, जिसका कोई अन्त नहीं है॥४०॥

सप्तम अध्याय समाप्त।

श्रीहरिहर

अष्टम अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय जय श्रीशचीसुत।
जय जय जय श्रीअवधूत॥१॥

श्रीशचीनन्दनकी जय हो! जय हो। अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो! जय हो॥१॥

सीतापति जय भकतराज।
गदाधर जय भकतसमाज॥२॥

भक्तराज सीतापति श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डित और भक्तसमाजकी जय हो॥२॥

जय नवद्वीप सुन्दरधाम।
जय जय जय गौर कि नाम॥३॥

परम सुन्दर श्रीनवद्वीपधामकी जय हो। श्रीगौर-नामकी जय हो! जय हो॥३॥

निताइ सहित भकतगण।
'हरि हरि' बलि' चले तखन॥४॥

श्रीवास पण्डित आदि भक्तवृन्द "हरि, हरि" कहते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ चलने लगे॥४॥

हरिरसमदिरा–मदातिमत्त श्रीनित्यानन्द प्रभु—

भावे ढल ढल निताइ चले।
प्रेमे आध आध वचन बले॥५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु मदमस्त होकर झूमते हुए चल रहे थे और प्रेममें विभोर होनेके कारण आधे–आधे अक्षर बोल रहे थे॥५॥

झर झर झरे आँखिर जल।
'गोरा' 'गोरा' बलि' हय विकल॥६॥

उनकी आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बह रह थी तथा वे "गौर, गौर" कहते हुए विह्वल हो रहे थे॥६॥

झकमक करे भूषण माल।
रूपे दशदिक् हइल आल॥७॥

उनके सभी आभूषण झलमल कर रहे थे और उनके दिव्य रूपसे दसों दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं॥७॥

श्रीवास पण्डित और श्रीजीवका नृत्य—

श्रीवास नाचिछे 'जीवेर' सने।
कभु काँदे, कभु नाचे सघने॥८॥

श्रीवास पण्डित श्रीजीवके साथ नृत्य करते-करते कभी तो क्रन्दन कर रहे थे और कभी उदण्ड नृत्य कर रहे थे॥८॥

आर जत सब भकतगण।
नाचिते नाचिते चले तखन॥९॥

अन्यान्य सभी भक्त भी नाचते-नाचते चलने लगे॥९॥

अलकानन्दार निकट आसि'।
बलेन निताइ आनन्दे भासि'॥१०॥

बिल्वपक्षग्राम पश्चिमे धरि'।
मन्दाकिनी आसे नदिया घेरि'॥११॥

अलकानन्दाके निकट पहुँचकर श्रीनित्यानन्द प्रभु आनन्दसे भरकर कहने लगे—हे जीव! बिल्वपक्ष नामक ग्रामको अपने पश्चिममें रखकर मन्दाकिनीने नदियाको घेर रखा है॥१०-११॥

सुवर्णविहार देखिले यथा।
मन्दाकिनी छाड़े अलका तथा॥१२॥

जहाँपर तुमने सुवर्ण विहार देखा था, मन्दाकिनी वहींपर अलकानन्दाको छोड़ देती है॥१२॥

श्रीहरिहरक्षेत्र

अलकानन्दार पूरव पारे।
हरिहरक्षेत्र गण्डक धारे॥१३॥

अलकानन्दाके पूर्वतट तथा गण्डकीके किनारे श्रीहरिहरक्षेत्र वर्त्तमान है॥१३॥

श्रीमूर्त्ति प्रकाश हइबे काले।
सुन्दर कानन शोभिबे भाले॥१४॥

समय आनेपर यहाँ एक श्रीमूर्त्ति प्रकाशित होगी तथा एक सुन्दर उपवन सुशोभित होगा॥१४॥

श्रीनवद्वीपधाममें विराजमान काशी नामक तीर्थ-स्थान—

अलका पश्चिमे देखह काशी।
शैव-शाक्त सेवे मुकति दासी॥१५॥

अलकानन्दाके पश्चिम तटपर काशीका दर्शन करो। जहाँपर शैव (शिवके उपासक) तथा शाक्त

(शक्तिके उपासक) मुक्ति प्राप्त करनेका प्रयास करते हैं॥१५॥

वाराणसी ह'ते ए धाम पर।
हेथाय धूर्जटी पिनाकधर॥१६॥

यह हरिहर क्षेत्र वाराणसी (काशी) से श्रेष्ठ है, यहाँपर धूर्जटी (जटाधारी शिव) डमरु धारण किये हुए विराजमान हैं॥१६॥

डमरु धारण किये हुए श्रीशिवका गौरनाम कीर्त्तन करते हुए नृत्य—

'गौर' 'गौर' बलि' सदाइ नाचे।
निजजने गौर-भकति याचे॥१७॥

यहाँपर शिव "गौर, गौर" कहकर सब समय नृत्य करते हैं और अपने अनुगत व्यक्तियोंके लिए गौरभक्तिकी प्रार्थना करते हैं॥१७॥

भक्तों द्वारा मुक्तिका अनादर—

सहस्र वरष काशीते बसि'।
लभे से मुकति ज्ञानेते न्यासी॥१८॥

ताहा त' हेथाय चरणे ठेलि'।
नाचेन भकत गौराङ्ग बलि'॥१९॥

एक हजार वर्षों तक काशीमें निवासकर ज्ञानका साधन करनेपर संन्यासियोंको जिस मुक्तिकी प्राप्ति होती है, उसी मुक्तिको यहाँपर भक्त अपने चरणोंसे ठोकर मारकर केवल श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका नाम लेते हुए नृत्य करते हैं अर्थात् श्रीगौर-नामामृतका पान करके ही अपने आपको धन्य मानते हैं॥१८-१९॥

श्रीशिव द्वारा जीवोंके कानमें 'गौर' नाम प्रदान—

निर्याण-समये एखाने जीव।
काणे 'गौर' बलि' तारेन शिव॥२०॥

यदि कोई जीव यहाँपर शरीर छोड़ता है, तो उसके अन्तिम समयमें शिव उसके कानमें 'गौर' नामका उच्चारण करके उसका उद्धार कर देते हैं॥२०॥

महावाराणसी ए धाम हय।
जीवेर मरणे नाहिक भय॥२१॥

इसलिए इस धामको महावाराणसी भी कहते हैं, क्योंकि (श्रीशिवके मुखसे शुद्ध गौरनामके श्रवणसे सद्गतिकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है, ऐसा

विचारकर) यहाँपर जीवोंको मरनेका कोई भय नहीं है अर्थात् मरनेके उपरान्त क्या गति होगी? इसकी कोई चिन्ता ही नहीं है॥२१॥

एत बलि' तथाय निताइ नाचे।
गौरहरिप्रेम 'जीवेरे' याचे॥२२॥

इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु वहाँपर नृत्य करने लगे और श्रीजीवको भी श्रीगौरहरिका प्रेम हो इसके लिए प्रार्थना करने लगे॥२२॥

श्रीशिव द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें प्रणाम—

अलक्ष्ये तखन कैलाशपति।
निताइ–चरणे करिल नति॥२३॥

अलक्षित रूपसे (बिना किसीको दिखायी दिये) कैलाशपति शिवने श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया॥२३॥

गौरीसह शिव गौराङ्ग नाम।
गाइया गाइया पूरय काम॥२४॥

यहाँपर वास करते हुए गौरी श्रीपार्वतीके साथ शिव सदैव गौराङ्ग महाप्रभुके नामोंका कीर्त्तन

करते हुए अपनी सभी अभिलाषाओंको पूर्ण कर रहे हैं॥२४॥

गदिगाछा-ग्राम (श्रीगोद्रुमद्वीप)

स्वतन्त्र ईश्वर निताइ तबे।
भकत-सङ्गेते चलिल जबे॥२५॥

गादिगाछा-ग्रामे पौंछिल आसि'।
तथाय आसिया कहिल हासि'॥२६॥

गोद्रुम-नामेते ए द्वीप हय।
सुरभि सतत एखाने रय॥२७॥

स्वतन्त्र ईश्वर श्रीनित्यानन्द प्रभु भक्तोंको साथमें लेकर चलते-चलते जब गादिगाछा नामक ग्राममें पहुँचे, तब हास्य करते हुए कहने लगे—इस द्वीपका नाम गोद्रुम है। यहाँपर सुरभि नित्य वास करती है॥२५-२७॥

श्रीकृष्णलीलाके समय इन्द्र द्वारा अभिमानपूर्वक गोकुलपर वर्षा करना—

कृष्ण-मायावशे देवेन्द्र जबे।
भासाय गोकुल निज-गौरवे॥२८॥

गोवर्द्धन–गिरि धरिया हरि।
रक्षिल गोकुल यतन करि'॥२९॥

श्रीकृष्णकी मायाके वशीभूत होकर जब इन्द्रने अभिमान पूर्वक गोकुलपर मूसलाधार वर्षा की थी तब श्रीहरिने गिरिराज–गोवर्द्धनको धारणकर यत्नपूर्वक गोकुलकी रक्षा की थी॥२८–२९॥

इन्द्रका अभिमान चूर्ण–विचूर्ण—

इन्द्रदर्पचूर्ण हइले पर।
शची–पति चिने सारङ्गधर॥३०॥

इन्द्रका अभिमान चूर्ण–विचूर्ण होनेपर उसने सारङ्गधर (सारङ्ग नामक धनुषको धारण करनेवाले विष्णुरूप) श्रीकृष्णको पहचान लिया॥३०॥

इन्द्र द्वारा श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें शरणापन्न होना—

निज अपराध मार्जन तरे।
पड़िल कृष्णेर चरण धरे॥३१॥

अपने अपराधको दूर करनेके लिए इन्द्रने भूमिपर गिरकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंको धारण किया॥३१॥

इन्द्रका भय एवं माता सुरभिसे प्रार्थना—

दयार समुद्र नन्दतनय।
क्षमिल इन्द्रेरे दिल अभय॥ ३२ ॥

तथापि इन्द्रेर रहिल भय।
सुरभि निकटे तखन कय॥ ३३ ॥

कृष्णलीला मुइ बुझिते नारि।
अपराध मम हइल भारी॥ ३४ ॥

यद्यपि दयाके सागर श्रीनन्दनन्दनने इन्द्रको क्षमा कर दिया और उन्हें अभय भी प्रदान किया, तथापि इन्द्रके हृदयसे भय दूर नहीं हुआ तथा वे सुरभिसे कहने लगे,—श्रीकृष्णलीलाको नहीं समझ पानेके कारण मुझसे बहुत भयङ्कर अपराध हुआ है॥ ३२-३४॥

शुनेछि कलिते ब्रजेन्द्रसुत।
करिबे नदीया-लीला अद्भुत॥ ३५ ॥

मैंने सुना है कि कलियुगमें श्रीव्रजेन्द्र-नन्दन नवद्वीपमें अपनी अद्भुत लीलाएँ प्रकाशित करेंगे॥ ३५ ॥

इन्द्रकी पदवी प्राप्त होनेपर भी भय—

पाछे से—समय मोहित ह'ब।
अपराधी पुनः हये रहिब ॥ ३६ ॥

किन्तु मुझे भय है कि कहीं मैं उस समय भी मायासे मोहित होकर पुनः कोई अपराध न कर बैठूँ॥ ३६ ॥

तुमि त' सुरभि सकल जान।
करह एखन ताहार विधान ॥ ३७ ॥

इसलिए हे सुरभि (कामधेनु)! अपराध करनेसे कैसे बचा जाये, इस विषयमें तुम तो सब कुछ जानती हो। कृपया मुझे भी इसका कोई उपाय बताओ॥ ३७ ॥

माता सुरभिका परामर्श—

सुरभि बलिल, चलह जाइ।
नवद्वीप—धामे भजि निमाइ ॥ ३८ ॥

सुरभिने कहा—चलो! हम दोनों श्रीनवद्वीपधाम जाकर निमाइ (श्रीचैतन्य महाप्रभु) का भजन करेंगे॥ ३८ ॥

इन्द्र और माता सुरभिकी भजन-स्थली

देवेन्द्र—सुरभि हेथाय आसि'।
गौराङ्ग भजन करिल बसि'॥३९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने आगे कहा,—तदनन्तर इन्द्र और सुरभिने यहींपर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन किया॥३९॥

गौराङ्ग—भजन सहज अति।
सहज ताहार फल—वितति॥४०॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करना बहुत ही सहज है तथा उसका फल बहुत आसानीसे प्राप्त होनेपर भी सर्वश्रेष्ठ और उत्तम है॥४०॥

इन्द्र और माता सुरभिको श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्त—

गौराङ्ग बलिया क्रन्दन करे।
गौराङ्ग—दर्शन हय सत्वरे॥४१॥

वे दोनों गौराङ्गका नाम उच्चारण करते—करते क्रन्दन करने लगे और उन्हें बहुत ही जल्दी श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शन प्राप्त हुए॥४१॥

किवा अपरूप रूप–लावणि।
देखिल गौराङ्ग–प्रतिमाखानि ॥४२॥

उन्होंने अद्भुत रूप–लावण्यसे युक्त श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दिव्य कलेवरका दर्शन किया॥४२॥

महावदान्य श्रीमन् महाप्रभु द्वारा वर–प्रदान—

आध–आध हासि वरद रूप।
प्रेमे गदगद रसेर कूप॥४३॥

श्रीमन् महाप्रभु मन्दहास्य करते हुए वर देनेकी मुद्रामें सुशोभित थे, और रसके भण्डार स्वयं ही प्रेममें गद्‌गद हो रहे थे॥४३॥

हासिया बलेन ठाकुर मोर।
जानिनु वासना आमि त' तोर॥४४॥

मुस्कराते हुए मेरे प्रभु श्रीगौरहरिने इन्द्र और सुरभिसे कहा कि मैं तुमलोगोंकी इच्छाको जानता हूँ॥४४॥

अल्पदिन आछे प्रकटकाल।
नदीया–नगरे देखिबे भाल॥४५॥

से लीला–समये सेविबे मोरे।
मायाजाल आर ना धरे तोरे॥४६॥

थोड़े ही समयमें मैं नवद्वीपमें प्रकट होऊँगा। उस समय तुमलोग भी इसी नवद्वीपमें जन्म प्राप्त करके उस लीलामें मेरी सेवा करोगे। अब तुमलोगोंको मायाका जाल स्पर्श नहीं कर पायेगा॥४५–४६॥

माता सुरभिका स्थाई रूपसे गोद्रुममें वास—

एत बलि' प्रभु अदृश्य हय।
सुरभि सुन्दरी तथाय रय॥४७॥

अश्वथ निकटे रहिला देवी।
निरन्तर गौर–चरण सेवि॥४८॥

इतना कहकर महाप्रभु अदृश्य हो गये और श्रीसुरभिदेवी निरन्तर श्रीगौरहरिके चरणोंकी सेवा करती हुई पीपलके वृक्षके नीचे रहने लगी॥४७–४८॥

'गोद्रुम' द्वीप नाम होनेका कारण—

गोद्रुमद्वीप त' हइल नाम।
हेथाय पूरय भकत–काम॥४९॥

तबसे इस स्थानका नाम गोद्रुमद्वीप (गो=गाय, द्रुम=वृक्ष, वह द्वीप जहाँपर गाय एक वृक्षके नीचे विराजमान है) हो गया। यहाँपर भक्तोंकी सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं॥४९॥

हेथाय कुटीर बाँधिया भजे।
अनायासे गौर–चरणे मजे॥५०॥

यहाँपर कुटीर बनाकर भजन करनेवाला व्यक्ति अनायास ही श्रीगौरहरिके चरणकमलोंकी सेवामें मग्न हो जाता है॥५०॥

गोद्रुमद्वीपमें मार्कण्डेय ऋषिका घटनाक्रमसे आगमन

एइ द्वीपे कभु मृकण्डसुत।
प्रलये आछिल कथा अद्भुत॥५१॥

इस द्वीपमें एक समय मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय ऋषि प्रलयके समय उपस्थित हुए थे। उनकी कथा बहुत अद्भुत है॥५१॥

सातकल्प आयु प्राप्त होनेपर भी प्रलयके समय मार्कण्डेय ऋषिकी दुःखमय अवस्था—

सातकल्प आयु पाइल मुनि।
प्रलये बड़इ विपद गणि॥५२॥

जलमय हइल समस्त स्थान।
कोथा वा रहिबे करे सन्धान॥५३॥

यद्यपि मुनिको सात कल्पकी आयु प्राप्त हुई थी, तथापि प्रलयके समय उनपर बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी, क्योंकि सभी स्थान जलमग्न हो गये थे। इसलिए मुनि अपने रहनेके लिए किसी स्थानकी खोज करने लगे॥५२-५३॥

मार्कण्डेय ऋषिका शोक—

भासिया भासिया चलिया जाय।
केन हेन वर लइनु हाय॥५४॥

वे पानीमें बहते हुए चले जा रहे थे तथा मन-ही-मन सोच रहे थे कि हाय! हाय! मैंने ऐसा वर क्यों लिया?॥५४॥

प्रलयके समय भी श्रीनवद्वीपधाम जलमग्न नहीं—

षोलक्रोश मात्र नदीया धाम।
जागिया भकते देय विश्राम॥५५॥

(यद्यपि अन्यान्य सभी स्थान जलमय हो गये थे तथापि) केवलमात्र सोलह कोस परिमाणवाले श्रीनवद्वीपधाम भक्तोंको आश्रय प्रदान करनेके लिए विराजमान थे॥५५॥

जलेर तरङ्गे भासिया मुनि।
अज्ञान हइया पड़े अमनि ॥५६॥

(श्रीनवद्वीपधामके निकट पहुँचनेपर) जलकी तरङ्गोंमें बहते-बहते मुनि मूर्च्छित हो गये॥५६॥

मार्कण्डेय ऋषिके प्रति माता सुरभिकी कृपा—

महाकृपा करि सुरभि ताय।
यतने मुनिरे हेथा उठाय॥५७॥

उस समय सुरभिने मुनिको जलमें बहते हुए देखा और बहुत कृपा करके यत्नपूर्वक उन्हें उठा लिया॥५७॥

मार्कण्डेय ऋषि द्वारा श्रीगोद्रुमद्वीपका दर्शन—

सम्वित् लभिया मृकण्डसुत।
देखिल गोद्रुमद्वीप अद्भुत॥५८॥

चेतनता प्राप्त होनेपर मार्कण्डेय ऋषिने अद्भुत गोद्रुमद्वीपके दर्शन किये॥५८॥

शतकोटि क्रोश विस्तार स्थान।
नद-नदी शोभा प्रकाशमान॥५९॥

उन्होंने देखा कि यह स्थान एक सौ करोड़ कोसका है तथा यहाँपर बहुत सुन्दर-सुन्दर नदियाँ और झरने बह रहे हैं॥५९॥

तरुलता कत शोभय तथा।
पक्षिगण गाय श्रीगौर–गाथा॥६०॥

यहाँपर नाना प्रकारके हरे–भरे वृक्ष और लताएँ शोभायमान हैं तथा पक्षी भी श्रीगौरहरिका गुणगान कर रहे हैं॥६०॥

योजनविस्तार अश्वत्थ हेर।
सुरभिके तथा दर्शन कर॥६१॥

उन्होंने देखा कि एक योजन (आठ मील) तक विस्तृत एक पीपलके वृक्षके नीचे माता सुरभि विराजमान हैं॥६१॥

(केवल सातकल्पकी आयुसे ही सबकुछ नहीं हो जाता) भूखसे पीड़ित मार्कण्डेय ऋषि द्वारा माता सुरभिसे प्रार्थना—

क्षुधाय आकुल मुनि तखन।
सुरभिर प्रति बले वचन॥६२॥

तुमि भगवति! राखह प्राण।
दुग्ध दिया मोरे करह त्राण॥६३॥

भूखसे पीड़ित मुनिने सुरभिसे कहा—हे भगवति! मेरे प्राणोंकी रक्षा करो। अपना दुग्ध पान कराकर मेरा दुःख दूर करो॥६२–६३॥

माता सुरभि द्वारा दुग्धदान—

सुरभि तखन सदय ह'ये।
पियाइल दुग्ध मुनिरे ल'ये॥६४॥

तब सुरभिने सदय होकर मुनिको अपना दुग्ध पान कराया॥६४॥

मार्कण्डेय मुनिका पश्चाताप—

सबल हइया मृकण्डसूनु।
सुरभिर प्रति कहय पुनः॥६५॥

तुमि भगवति! जननी मोर।
तोमार मायाय जगत् भोर॥६६॥

स्वस्थ्य होनेपर मृकण्डनन्दन सुरभिसे पुनः कहने लगे—आप भगवति हैं! मेरी माता हैं। आपकी मायासे सारा जगत् व्याप्त है॥६५-६६॥

ना बुझिया आमि ल'येछि वर।
सप्तकल्प जीव ह'ये अमर॥६७॥

बिना सोचे-विचारे मैंने सात कल्प तक अमर रहनेका वर लिया है॥६७॥

प्रलय-समये बड़इ दुख।
नानाविध क्लेश, नाहिक सुख॥६८॥

किन्तु मैया! प्रलयके समय बहुत दुःख है, अनेक प्रकारके कष्ट हैं, सुख तो है ही नहीं॥६८॥

कि करि जननी! बलगो मोरे।
किसे वा जाइब ए दुख त'रे॥६९॥

हे माता! मैं क्या करूँ? आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि मैं इस दुःखसे कैसे उद्धार प्राप्त करूँ?॥६९॥

माता सुरभि द्वारा मार्कण्डेय ऋषिको उपदेश—

सुरभि तखन बलि'ल वाणी।
भजह गौरपद दु'खानि॥७०॥

उनकी बात सुनकर माता सुरभिने कहा कि तुम यहाँ रहकर श्रीगौरहरिके युगल चरणकमलोंका भजन करो॥७०॥

श्रीनवद्वीपधामकी महिमा—

एइ नवद्वीप प्रकृति–पार।
कभु नाश नाहि हय इहार॥७१॥

यह नवद्वीप प्रकृतिसे अतीत है। इसलिए इसका कभी भी विनाश नहीं होता॥७१॥

चर्मचक्षे इहा षोड़श क्रोश।
परम वैकुण्ठ सदा निर्दोष॥७२॥

यद्यपि जड़नेत्रोंसे यह सोलह कोसका दिखायी देता है, तथापि यह सर्वश्रेष्ठ वैकुण्ठ लोक नित्य और सम्पूर्ण रूपसे निर्दोष है॥७२॥

अप्राकृत देश–काल एखाने।
जड़ माया केवा केह ना जाने॥७३॥

यहाँका स्थान तथा समय सदैव अप्राकृत है। जड़माया क्या होती है, यहाँ इसे कोई जानता भी नहीं है॥७३॥

नवद्वीपे देख अपूर्व अति।
चारिदिके बेड़े विरजा सती॥७४॥

जरा इस अपूर्व नवद्वीपधामका दर्शन तो करो, देखो किस प्रकार इसके चारों ओर सती विरजा (जड़जगत् और चित्–जगत्को अलग करनेवाली एक नदी) विराजमान है॥७४॥

शतकोटी क्रोश प्रत्येक खण्ड।
मध्ये मायापुर नगर गण्ड॥७५॥

यहाँका प्रत्येक प्रकोष्ठ एक सौ करोड़ कोसका है तथा इसके मध्यभागमें एक विशाल मायापुर नामक नगर है॥७५॥

अष्टदल अष्टद्वीपेर मान।
अन्तर्द्वीप ता'र केशर स्थान॥७६॥

इसके आठ द्वीप कमलके पुष्पकी आठ पंखुड़ियोंके समान हैं और मध्यमें अन्तर्द्वीप कर्णिका स्वरूप है॥७६॥

सभी तीर्थों, देवताओं और ऋषियोंकी निवास-स्थली—

सर्वतीर्थ सर्व देवता ऋषि।
गौराङ्ग भजिछे हेथाय बसि॥७७॥

सभी तीर्थ, सभी देवता और ऋषि यहाँपर निवासकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करते हैं॥७७॥

श्रीगौरहरिकी शरण ग्रहण करनेके लिए अनुरोध—

तुमि मार्कण्डेय गौराङ्गपद।
आश्रय करह जानि' सम्पद॥७८॥

हे मार्कण्डेय! तुम भी श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंको एकमात्र सम्पत्ति जानकर उनका आश्रय ग्रहण करो॥७८॥

निर्मल भक्तिधर्मका आश्रय ग्रहण करने हेतु उपदेश—

अकैतव धर्म आश्रय कर।
भुक्ति–मुक्ति–वाञ्छा सुदूरे धर॥७९॥

तुम भुक्ति–मुक्ति आदिकी इच्छाको दूरसे ही परित्याग करके निर्मल भक्ति धर्मका आश्रय ग्रहण करो॥७९॥

श्रीगौरहरिका भजन करनेका फल—

गौराङ्ग–भजन–आश्रय–बले ।
मधुर प्रेम त' लभिबे फले॥८०॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करनेसे शीघ्र ही तुम मधुर–प्रेमरूपी फलको प्राप्त कर पाओगे॥८०॥

प्रेम–प्राप्ति होनेपर साधककी अवस्था—

सेइ प्रेम जबे हृदये ब'से।
भासाय विलास–कलार रसे॥८१॥

ब्रजे राधापद–आश्रय हय।
युगल–सेवाय मानस रय॥८२॥

जिस व्यक्तिके हृदयमें प्रेम आविर्भूत होता है, वह भगवान् श्रीकृष्णके विभिन्न लीला–विलास रसमें निमज्जित हो जाता है। उसे व्रजमें श्रीराधाके

चरणकमलोंका आश्रय प्राप्त हो जाता है और उसका मन सदैव युगल-सेवामें ही लगा रहता है॥८१-८२॥

सेवामें ही अतुलनीय सुख—

सेवार सुख अतुल जान।
अभेद निर्वाणे अपार्थ ज्ञान॥८३॥

तुम एक बात अच्छी तरहसे समझो कि भगवत्-सेवामें अतुलनीय सुखकी प्राप्ति होती है। अभेद निर्वाणमें तो केवल तुच्छ और काल्पनिक सुखकी ही प्राप्ति होती है॥८३॥

श्रीमार्कण्डेय ऋषिकी जिज्ञासा—

सुरभि-वचन शुनिया मुनि।
करजोड़ करि' बले अमनि॥८४॥

श्रीगौर-चरण भजिब जबे।
आमार अदृष्ट कोथाय र'बे॥८५॥

सुरभिके वचनोंको सुनकर श्रीमार्कण्डेय मुनिने हाथ जोड़कर पूछा—यदि मैं श्रीगौरहरिके चरणोंकी सेवा करूँगा तो मेरे प्रारब्ध और अप्रारब्ध कर्मोंका क्या होगा?॥८४-८५॥

माता सुरभिका उत्तर—

सुरभि कहिल सिद्धान्तसार।
श्रीगौर-भजने नाहि विचार॥८६॥

(उनके इस प्रश्नको सुनकर) माता सुरभिने सभी सिद्धान्तोंके सारको कह सुनाया। माता सुरभिने कहा—श्रीगौरका भजन करनेमें किसी प्रकारके विधि-निषेधका विचार नहीं है॥८६॥

श्रीगौर बलिया डाकिबे जबे।
समस्त करम विनाश ह'बे॥८७॥

किछु नाहि र'बे विपाक आर।
घुचिबे तोमार भव-संसार॥८८॥

जब तुम श्रीगौरहरिका नाम लेकर पुकारोगे, तो तुम्हारे सारे कर्म नष्ट हो जायेंगे। किसी प्रकारका कोई कष्ट नहीं रहेगा, और तुम्हारा भवरोग अर्थात् जन्म-मरणका रोग सदाके लिए दूर हो जायेगा॥८७-८८॥

कर्म केने एका ज्ञानेर फल।
घुचिबे समूले ह'ये विकल॥८९॥

केवल कर्म ही क्यों? ज्ञानका फल भी जड़से नष्ट हो जायेगा॥८९॥

तुमि त' मजिबे गौराङ्गरसे।
भजिबे ताँहारे ए द्वीपे ब'से॥९०॥

जब तुम इस द्वीपमें बैठकर श्रीगौरहरिका भजन करोगे तब तुम गौराङ्गरसमें निमग्न हो जाओगे॥९०॥

मार्कण्डेय शुनि' आनन्दे हासे।
'गौर' बलि' काँदे कखन हासे॥९१॥

मार्कण्डेय मुनि माता सुरभिके वचनोंको सुनकर आनन्दसे हँसने लगे और "गौर, गौर" कहते-कहते कभी रोने लगते, तो कभी हँसने॥९१॥

एइ देख 'जीव' अपूर्व स्थान।
मार्कण्डेय जथा पाइल प्राण॥९२॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! तुम इस अपूर्व स्थानका दर्शन करो, जहाँपर मार्कण्डेय ऋषिको पुनः प्राण प्राप्त हुए थे॥९२॥

गौराङ्ग–महिमा निताइ–मुखे।
शुनि 'जीव' भासे परम सुखे॥९३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके मुखसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी महिमा सुनकर श्रीजीव परम आनन्दसे सराबोर हो गये॥९३॥

से स्थाने से–दिन यापन करि'।
मध्यद्वीपे चले बलिया 'हरि'॥९४॥

उस दिन उसी स्थानपर विश्राम करनेके उपरान्त, अगले दिन प्रातः वे लोग "हरि, हरि" बोलते हुए मध्यद्वीपकी ओर चल पड़े॥९४॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट–प्रार्थना—

निताइ–जाह्नवा–चरण सार।
जानिया भक्तिविनोद छार॥९५॥

निताइ–आदेश मस्तके ध'रे।
नदीया–महिमा वर्णन करे॥९६॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके चरण–कमलोंकी सेवाको ही सारस्वरूप समझकर दीन–हीन भक्तिविनोद द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुके आदेशको

मस्तकपर धारण करके नदियाके माहात्म्यका वर्णन किया जा रहा है॥९५–९६॥

अष्टम अध्याय समाप्त।

श्रीगौर–गदाधर (गोद्रुमद्वीप)

नवम अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय गौरचन्द्र, जय नित्यानन्द,
जय जय गदाधर।
श्रीवासादि जय, जय भक्तालय,
नवद्वीप धामवर॥१॥

श्रीगौरचन्द्रकी जय हो! श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो। श्रीवास आदि सभी भक्तोंकी जय हो। भक्तोंके वासस्थान सर्वश्रेष्ठ श्रीनवद्वीपधामकी जय हो॥१॥

प्रेमदाताशिरोमणि श्रीनित्यानन्द प्रभु—

निशि अवसाने, मत्त गौरगाने,
चलिलेन नित्यानन्द।
सङ्गे भक्तगण, प्रेमेते मगन,
विस्तारिया परानन्द॥२॥

सवेरा होनेपर श्रीनित्यानन्द प्रभु मत्त होकर श्रीगौरनामका गान करते हुए चलने लगे। उनके

साथ जो भक्त चल रहे थे, वे भी प्रेममें निमग्न होकर परानन्दका विस्तार कर रहे थे॥२॥

श्रीमध्यद्वीप

मध्यद्वीपे आसि', बले हासि' हासि',
एइ त' माजिदा ग्राम।
हेथा सप्त ऋषि, भजि' गौरशशी,
करिलेन सुविश्राम॥३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु मध्यद्वीपमें आकर मुस्कराते हुए कहने लगे कि यह माजिदा नामक गाँव है। यहाँपर मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वशिष्ट नामक सप्त-ऋषियोंने श्रीगौरचन्द्रका भजन करते हुए सुविश्राम किया था॥३॥

सप्त-ऋषियों द्वारा अपने पिता श्रीब्रह्माके मुखसे श्रीगौरहरिका गुणगान श्रवण—

पितृ-सन्निधाने, गौर-गुणगाने,
सत्ययुगे ऋषिगण।
हइया मगन, याचिल तखन,
गौरप्रेम नित्यधन॥४॥

सत्ययुगमें उन ऋषियोंने अपने पिता ब्रह्माके मुखसे श्रीगौरहरिका गुणगान श्रवण किया। श्रीगौरहरिके गुण श्रवण करनेसे वे मुग्ध हो गये तथा श्रीब्रह्मासे गौरप्रेमरूपी नित्यधनकी भिक्षा माँगने लगे॥४॥

श्रीब्रह्मा द्वारा अपने सात-पुत्रोंको श्रीनवद्वीप प्रेरण—

ब्रह्मा चतुर्मुख, पेये बड़ सुख,
सप्तपुत्रे बले तबे।
नवद्वीपे जाओ, गौर-गुण गाओ,
अनायासे प्रेम ह'बे॥५॥

उनकी बात सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माने अत्यधिक प्रसन्न होकर कहा—तुम सभी नवद्वीपधाममें जाकर श्रीगौरहरिके गुणगानका कीर्त्तन करो। तुम्हें अनायास ही प्रेमकी प्राप्ति होगी॥५॥

श्रीब्रह्मा द्वारा धामकी महिमाका वर्णन—

धाम-कृपा सार, लाभ हय जा'र,
ता'र हय साधुसङ्ग।
साधुसङ्गे भजे, कृष्णप्रेमे मजे,
एइ त' परम रङ्ग॥६॥

जिस व्यक्तिको धामकी कृपा प्राप्त होती है, उसे धामकी कृपाके फलस्वरूप साधुओंका सङ्ग मिलता है। साधुसङ्गमें रहकर भजन करते-करते वह कृष्णप्रेममें डूब जाता है। प्रेममें आविष्ट होना ही परम आनन्दका विषय है॥६॥

नवद्वीपे रति, लभे जा'र मति,
सेइ पाय ब्रजवास।
अप्राकृत धाम, गौरहरि नाम,
केवल साधुर आश॥७॥

श्रीनवद्वीपधाममें जिस व्यक्तिकी मति लग जाती है, उसे व्रजवासकी प्राप्ति होती है। अप्राकृत श्रीनवद्वीपधाममें बैठकर श्रीगौरहरिका नाम गान करना ही साधुओंकी एकमात्र आशा होती है॥७॥

सप्त-ऋषियोंका श्रीनवद्वीपधाममें आगमन—

पितृ-उपदेश, बुझिया विशेष,
सप्तऋषि आसि' तबे।
'हरि' बलि' नाचे, गौर-प्रेम याचे,
गाय गुण उच्चरवे॥८॥

अपने पिताके उपदेशको भलीभाँति समझकर सप्तऋषि इस स्थानपर उपस्थित हुए। वे यहाँ 'हरि' नामका उच्चारण करते-करते नृत्य करने लगे और श्रीगौरहरिके गुणोंका उच्च स्वरसे गान करते हुए प्रेम प्राप्तिके लिए प्रार्थना करने लगे॥८॥

सप्त-ऋषियोंकी प्रार्थना—

बले गौरहरि, अनुग्रह करि',
देखा दाओ एकबार।
नाना धर्म साधि', हैनु अपराधी,
भक्ति एबे कैनु सार॥९॥

कीर्त्तन करते-करते वे कहने लगे—हे गौरहरि! कृपा करके अन्ततः एक बार तो दर्शन दीजिये। यद्यपि आज तक अनेक प्रकारके धर्मोंका पालन करके हमने अपराध किया है, तथापि अब हमने भक्तिको ही अपने जीवनका एकमात्र उद्देश्य बना लिया है॥९॥

भक्तिनिष्ठा करि', भजि' गौरहरि,
ऋषिगण करे तप।

किछु नाहि खाय, निद्रा नाहि जाय,
गौरनाम करे जप ॥१० ॥

इस प्रकार ऋषिगण तपस्या करने लगे और भक्तिके प्रति एकनिष्ठ होकर श्रीगौरहरिका भजन करने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण रूपसे भोजन और निद्राको त्याग दिया तथा एकमात्र श्रीगौरहरिके नामका जप करने लगे॥१०॥

सप्त-ऋषियोंको पञ्चतत्त्वका दर्शन-प्राप्त—

मध्याह्न-समय, गौर दयामय,
देखा दिल ऋषिगणे।
शतसूर्य-प्रभा, योगी-मनोलोभा,
शुद्ध पञ्चतत्त्व सने ॥११ ॥

एक दिन दोपहरके समय परमदयालु श्रीगौरहरिने पञ्चतत्त्वके साथ आविर्भूत होकर उन ऋषियोंको दर्शन दिया। प्रभुके दिव्य कलेवरसे ऐसी आभा निकल रही थी, जैसी एक सौ सूर्योंके एक साथ उदित होनेसे होती है। उनका वह रूप योगियोंके भी मनको आकर्षित करनेवाला था॥११॥

श्रीमन् महाप्रभुके दिव्य रूपका वर्णन—

किवा सेइ रूप, अति अपरूप,
सुवर्णसुन्दर मूर्त्ति।
गले वनमाला, दिक् करे आला,
ताहे आभरण स्फूर्त्ति॥१२॥

श्रीमन् महाप्रभुकी वह स्वर्णवर्णकी सुन्दर मूर्त्ति कैसी अद्भुत थी! उन्होंने गलेमें वनके फूलोंसे बनी हुई माला पहन रखी थी और उनके आभूषणोंसे निकल रही ज्योति दसों दिशाओंको उज्ज्वल बना रही थीं॥१२॥

चाहनि सुन्दर, चिकुर चाँचर,
चन्दनेर बिन्दु भाले।
त्रिकच्छ वसन, सूत्र सुशोभन,
शोभित मल्लिका–माले॥१३॥

श्रीमन् महाप्रभुकी दृष्टिभङ्गि बहुत सुन्दर थी। उनके केश लम्बे तथा घुँघराले थे। उनके मस्तकपर चन्दनका एक बिन्दु सुशोभित था। उन्होंने त्रिकच्छ (धोती) धारण किया हुआ था। उनके वक्षःस्थलपर उपवीत अत्यधिक शोभा पा

रहा था। उनके गलेमें मल्लिकाके फूलोंसे बनी हुई एक माला शोभा पा रही थी॥१३॥

श्रीमन् महाप्रभुके चरणकमलोंमें सप्त-ऋषियोंकी प्रार्थना—

सेरूप देखिया, मोहित हइया,
सबे करे निवेदन।
तोमार चरण, लइनु शरण,
देह पदे भक्तिधन॥१४॥

उस रूपका दर्शन करके सभी मोहित होकर महाप्रभुसे निवेदन करने लगे—हे प्रभो! हमने आपके श्रीचरणकमलोंमें शरण ग्रहण की है, कृपया हमें भक्तिरूपी धन प्रदान कीजिये॥१४॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा सप्त-ऋषियोंको उपदेश—

शुनि' गौरहरि, बले दया करि',
शुन ओहे ऋषिगण।
छाड़ि' अभिलाष, ज्ञान-कर्म-पाश,
कर कृष्ण-आलोचन॥१५॥

उनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीगौरहरिने दयापूर्वक कहा—हे ऋषियो! सुनो। कृष्णेतर अन्यान्य अभिलाषाओंको त्याग दो। ज्ञान और कर्मके

बन्धनसे निकलकर केवल श्रीकृष्णभक्तिका ही अनुशीलन करो॥१५॥

सप्त-ऋषियोंके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका आशीर्वाद—

स्वल्प दिनान्तरे, नदीया-नगरे,
हइबे प्रकट-लीला।
तुमि सबे तबे, दर्शन करिबे,
नाम-सङ्कीर्त्तन-खेला ॥१६॥

थोड़े ही दिनोंके बाद नदियामें मेरी लीला प्रकाशित होगी, उस समय तुम सभी मेरी उस नामसङ्कीर्त्तनरूपी लीलाका दर्शन करोगे॥१६॥

ए कथा एखन, राखह गोपन,
आमार वचन धर।
श्रीकुमारहट्टे, निजकृत घट्टे,
कृष्णेर भजन कर॥१७॥

किन्तु अभी इन सभी विषयोंको गुप्त ही रखना, ऐसा मेरा आदेश है। श्रीकुमारहट्टमें अपने द्वारा बनाये गये घाटोंपर जाकर श्रीकृष्णका भजन करो॥१७॥

श्रीकुमारहट्ट

गौर–अदर्शने, सप्तर्षि तखने,
कुमारहट्टेते जाय।
ए स्थाने एखन, कर दरशन,
सप्तटीला शोभा पाय॥१८॥

श्रीगौरहरिके अन्तर्धान होनेके उपरान्त सातों ऋषि श्रीकुमारहट्ट चले आये। देखो! अभी भी इस स्थानपर उनकी भजन–स्थलीकी साक्षी देते हुए सप्त टीला (सात टीले) शोभा पा रहे हैं॥१८॥

सप्तर्षि आकाशे, जेमत प्रकाशे,
सप्तटीला तार सम।
हेथा वास करि', पाय गौरहरि,
ना–साधि' नियम–यम॥१९॥

यहाँपर ये सात टीले ऐसे दिखायी देते हैं मानो आकाशमें प्रकाशित सप्तर्षिमण्डल हो। यहाँपर यम–नियम आदिका पालन किये बिना केवलमात्र वास करनेसे ही श्रीगौरहरिकी प्राप्ति हो जाती है॥१९॥

नैमिषारण्य

इहार दक्षिणे, देखह नयने,
आछे एक जलाधार।
एइ त' गोमती, सुपवित्र अति,
नैमिष-कानन आर॥२०॥

हे जीव! इसके दक्षिणमें जो जलकी धारा प्रवाहित होती हुई देख रहे हो, वह परम पवित्र गोमती नदी है। इसके निकट ही नैमिषारण्य है॥२०॥

पुराकल्पे कलि, हैले महाबली,
शौनकादि ऋषिगण।
सुतेर श्रीमुखे, शुने सबे सुखे,
गौर-भागवत-धन॥२१॥

पूर्वकल्पके कलियुगमें जब कलिका प्रभाव अत्यधिक हो गया, उस समय शौनक आदि ऋषियोंने सुखपूर्वक श्रीसूत गोस्वामीके श्रीमुखसे यहींपर गौर-भागवतका[१] श्रवण किया॥२१॥

---

[१] गौर-परक श्रीमद्भागवतकी व्याख्या अथवा श्रीगौरहरिके मतानुसार श्रीमद्भागवत।

कार्त्तिकमासमें नैमिषारण्यमें वास करनेका फल—

हेथा जेइ जन, पुराण पठन,
करय कार्त्तिक मासे।
सर्वक्लेश त्यजे, गौर–रङ्गे मजे,
ब्रज लभे अनायासे॥२२॥

इस स्थानपर जो व्यक्ति कार्त्तिक–मासमें पुराणका पाठ करता है, उसके सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं और वह श्रीगौरहरिकी लीलाओंमें मग्नचित्त होकर अनायास ही व्रजको प्राप्त कर लेता है॥२२॥

श्रीशिवका नैमिषारण्यमें आगमन—

कभु पञ्चानन, छाड़ि' वृषासन,
श्रीहंसवाहन ह'ये।
शुनिल पुराण, गौरगुणगान,
आपन भकत ल'ये॥२३॥

एक समय पञ्चानन (शिव) अपने वाहन नन्दीको छोड़कर श्रीब्रह्माके वाहन हंसको ही अपना वाहन बनाकर अपने भक्तोंके साथ यहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने पुराणोंमें वर्णित श्रीगौरहरिकी लीलाओंका श्रवण किया॥२३॥

गाइया गाइया, नाचिया नाचिया,
शैव जत काशीवासी।
पञ्चानने घेरि', बलि' गौरहरि,
पुष्प फेले राशि राशि॥२४॥

काशीवासी सभी शैवलोग पञ्चानन (शिव) को घेरकर श्रीगौरहरिका नाम गान करते-करते नृत्य करने लगे और उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥२४॥

श्रीजीव द्वारा धामके प्रभावका आस्वादन—

निताइ-वचन, शुनिया तखन,
'जीवेर' उथले भाव।
गड़ागड़ि जाय, धैरय ना पाय,
आस्वादे धाम-प्रभाव॥२५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके वचन सुनकर श्रीजीवके हृदयमें अष्ट-सात्त्विक भाव उदित होने लगे और वे वहाँकी रजमें लोट-पोट होने लगे। धामके प्रभावका आस्वादन करते-करते वे धैर्य धारण नहीं कर पा रहे थे॥२५॥

सेदिन यापन, करे भक्तगण,
निताइचाँदेर सने।

परदिन सबे, चलिलेन तबे,
श्रीपुष्कर दरशने ॥२६॥

उस दिन सभी भक्तोंने अपना दिन श्रीनिताइचाँदके साथ वहीं रहकर व्यतीत किया और अगले दिन सभी श्रीपुष्कर दर्शन करनेके लिए अग्रसर हुए॥२६॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

जाह्नवा-निताइ, भजन सदाइ,
जाहार अन्तरे जागे।
नदीया-महिमा, भक्त-मधुरिमा,
गाइछे से जन रागे॥२७॥

श्रीजाह्नवादेवी और श्रीनित्यानन्द प्रभुका भजन ही जिसके हृदयमें सदैव प्रकाशित होता है, उसी व्यक्ति (श्रीभक्तिविनोद ठाकुर) द्वारा अनुरागमें भरकर श्रीनदियाके माहात्म्य तथा भक्तोंकी मधुरिमाका गान किया जा रहा है॥२७॥

नवम अध्याय समाप्त।

दशम अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय गौर–नित्यानन्द अद्वैत–सहित।
जय गदाधर जय श्रीवास पण्डित॥१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैताचार्य सहित श्रीगौरहरिकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो। श्रीवास पण्डितकी जय हो॥१॥

जय नवद्वीप शुद्ध प्रेमभक्तिधाम।
जय जय जय गौर–नित्यानन्द–नाम॥२॥

शुद्ध प्रेमभक्तिस्वरूप श्रीनवद्वीपधामकी जय हो तथा श्रीगौर–नित्यानन्द प्रभुके नामकी जय हो। जय हो॥२॥

ग्रन्थकारका अनुरोध—

शुन हे कलिर जीव छाड़ि' ज्ञान–कर्म।
निताइ–चैतन्य भज त्यजि' धर्माधर्म॥३॥

दयार समुद्र सेइ गौर–नित्यानन्द।
अकातरे दिबे भाइ सार ब्रजानन्द॥४॥

हे कलिके जीवो! सुनो! ज्ञान, कर्म और धर्माधर्म सबको त्यागकर श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुका भजन करो। हे भाइयो! दयाके सागर, श्रीगौर-नित्यानन्द प्रभु तुम्हारी ऐसी चेष्टाको देखकर अकातर होकर अवश्य ही व्रजके आनन्दको प्रदान करेंगे॥३-४॥

यामिनि प्रभात हैल नित्यानन्द राय।
'जीवेरे' लइया धाम-भ्रमणेते जाय॥५॥

सवेरा होनेपर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीजीवको अपने साथ लेकर धामकी परिक्रमाके लिए आगे चल पड़े॥५॥

श्रीब्राह्मणपुष्कर

बले' देख 'जीव' एइ ग्राम मनोहर।
एखन बाह्मणपुरा डाके सर्व नर॥६॥
ब्राह्मणपुष्कर-नाम सर्वशास्त्रे कय।
हेथा जे रहस्य ताहा अति गुह्य हय॥७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! इस मनोहर ग्रामको देखो। यद्यपि आजकल सभी लोग इसे ब्राह्मणपुरा कहकर पुकारते हैं, तथापि शास्त्रोंके

अनुसार इसका नाम ब्राह्मणपुष्कर है। इस स्थानका रहस्य बहुत गूढ़ है॥६-७॥

दिवदास नामक तैर्थिक ब्राह्मणका उपाख्यान—

सत्ययुगे दिवदास नामेते ब्राह्मण।
गृह त्यजि' करे सर्वतीर्थ दरशन॥८॥

सत्ययुगमें एक दिवदास नामका ब्राह्मण गृह त्यागकर सभी तीर्थोंके दर्शन करता हुआ भ्रमण कर रहा था॥८॥

दिवदासका नवद्वीप आगमन—

पुष्करतीर्थेते ता'र हैल बड़ प्रीत।
तथापि भ्रमिते नवद्वीपे उपस्थित॥९॥

यद्यपि पुष्कर तीर्थके प्रति उसे बहुत प्रीति थी, तथापि एकदिन भ्रमण करते-करते वह श्रीनवद्वीप-धाममें आ पहुँचा॥९॥

दिवदासके स्वप्नका वृत्तान्त—

एइ स्थाने रात्रयोगे देखिल स्वपन।
हेथा वास कर विप्र पाबे नित्यधन॥१०॥

इसी स्थानपर रात्रिको उसने स्वप्नमें देखा कि कोई उसे कह रहा है कि हे विप्र! तुम यहींपर

वास करो, तुम्हें नित्यधन (कृष्णप्रेम) की प्राप्ति होगी॥१०॥

वृद्धकालमें दिवदासकी इच्छा—

एइ स्थाने कुटीर बाँधिया दिवदास।
वृद्धकालावधि तेंह करिलेन वास॥११॥

वृद्धकाले चलिते अशक्त द्विजवर।
इच्छा हैल एबे आमि देखिब पुष्कर॥१२॥

इसी स्थानपर कुटीर बनाकर दिवदासने वृद्धकाल तक वास किया। वृद्धकालमें जब वह ब्राह्मण चलनेमें असमर्थ हो गया, तब उसके मनमें पुष्करके दर्शन करनेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई॥११-१२॥

चलनेमें असमर्थ दिवदासका विलाप—

चलिते ना पारे द्विज करय क्रन्दन।
आर ना पाइब आमि पुष्कर दर्शन॥१३॥

नहीं चल पानेके कारण ब्राह्मण विलाप करते हुए कहने लगा कि हाय! हाय। अब मुझे पुष्कर तीर्थके दर्शन प्राप्त नहीं होंगे॥१३॥

पुष्कारतीर्थका ब्राह्मणवेश धारण—

तखन पुष्कारराज सदय हइल।
द्विजरूपे दिवदासे दरशन दिल॥१४॥

(उसे विलाप करते हुए देखकर) पुष्करराजने कृपाकर दिवदासको ब्राह्मणके रूपमें दर्शन दिया॥१४॥

ब्राह्मणवेशधारी पुष्करतीर्थ द्वारा दिवदासको परामर्श—

दिवदासे बले विप्र,—"ना कर क्रन्दन।
तोमार सम्मुखे एइ कुण्ड सुशोभन॥१५॥

एइ कुण्डे स्नान तुमि कर एकबार।
प्रत्यक्ष हइबे तीर्थ पुष्कर तोमार॥"१६॥

ब्राह्मण दिवदाससे कहने लगा कि तुम क्रन्दन मत करो। तुम्हारे सामने जो कुण्ड सुशोभित हो रहा है, तुम एक बार उसमें स्नान करो, पुष्कर तीर्थ प्रत्यक्ष रूपसे तुम्हारे सामने प्रकट हो जायेंगे॥१५-१६॥

दिवदासको नवद्वीपमें ही पुष्करतीर्थके दर्शन-प्राप्त—

ताहा शुनि' कुण्डे स्नान करे द्विजवर।
दिव्यचक्षु लभि' देखे सम्मुखे पुष्कर॥१७॥

उसकी बात सुनकर दिवदासने उस कुण्डमें स्नान किया। (स्नान करनेके फलस्वरूप) उसे दिव्यचक्षु प्राप्त हुए, जिससे वह पुष्करतीर्थका दर्शन करने लगा॥१७॥

क्रन्दन करिया द्विज पुष्करे बलिल।
''आमा लागि' बड़ क्लेश तोमार हइल॥''१८॥

रोते-रोते दिवदास पुष्करतीर्थसे कहने लगा कि मेरे लिए आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ा॥१८॥

पुष्करतीर्थ द्वारा श्रीनवद्वीपधामका माहात्म्य-वर्णन—

पुष्कर बलेन,—''शुन द्विज भाग्यवान्।
दूर हैते ना आसिनु हेथा विद्यमान्॥१९॥

पुष्करने कहा—हे सौभाग्यशाली ब्राह्मण! सुनो। मैं दूरसे नहीं आया हूँ, मैं तो सदैव यहींपर निवास करता हूँ॥१९॥

एइ नवद्वीपधाम सर्वतीर्थमय।
नवद्वीपे सेवि' हेथा थाके तीर्थचय॥२०॥

यह श्रीनवद्वीपधाम सर्वतीर्थमय है। श्रीनवद्वीपधामकी सेवा करनेके लिए ही यहाँपर सभी तीर्थ वास करते हैं॥२०॥

श्रीनवद्वीपमें ही पुष्करतीर्थका वास्तविक स्वरूप—

आमार स्वरूप एक पाश्चात्त्ये प्रकाश।
निजे आमि एइस्थाने नित्य करि वास॥२१॥

यद्यपि मेरे एक स्वरूपका प्रकाश पश्चिममें है, तथापि मैं स्वयं नित्य इसी स्थानपर निवास करता हूँ॥२१॥

शतबार केह सेइ तीर्थे करि' स्नान।
जेइ फल पाय हेथा से फल विधान॥२२॥

एक सौ बार उस तीर्थमें (पश्चिममें स्थित पुष्कर तीर्थमें) स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह यहाँपर केवल एक बार स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है॥२२॥

श्रीनवद्वीपधामको छोड़कर अन्यान्य तीर्थोंकी आशा करनेवाला व्यक्ति महामूर्ख—

अतएव नवद्वीप छाड़ि' जेइ जन।
अन्य तीर्थ आशा करे, से मूढ़ दुर्जन॥२३॥

अतएव श्रीनवद्वीपधामको छोड़कर जो व्यक्ति किसी अन्य तीर्थकी आशा करता है, वह महामूर्ख दुर्जन है॥२३॥

सभी तीर्थोंमें भ्रमण करनेका फल—

सर्वतीर्थ भ्रमि' यदि हय फलोदय।
नवद्वीप तबे ता'र वासस्थान हय॥२४॥

जब किसीको सभी तीर्थोंमें भ्रमण करनेका फल प्राप्त होता है, तभी श्रीनवद्वीपधाममें उसे वास स्थानकी प्राप्ति होती है॥२४॥

श्रीनवद्वीपधाममें कुरुक्षेत्र और ब्रह्मावर्त्त—

ऐ देख उच्चस्थान हट्टेर समान।
कुरुक्षेत्र ब्रह्मावर्त्त तथा विद्यमान्॥२५॥

हट्टके समान उस ऊँचे स्थानको देखो, वहाँपर कुरुक्षेत्र और ब्रह्मावर्त्त विद्यमान हैं॥२५॥

सरस्वती दृषद्वती दुइ पार्श्वे ता'र।
अति शोभा पाय पुण्य करये विस्तार॥२६॥

उसके दोनों ओर सरस्वती और दृषद्वती बहती हैं। वे बहुत सुन्दर तथा पुण्य प्रदान करनेवाली हैं॥२६॥

पुष्करतीर्थ द्वारा भावी श्रीमन् महाप्रभुके आविर्भूत होनेकी सूचना—

ओहे विप्र, गूढ़ कथा बलिब तोमाय।
अति अल्पकाले ह'बे आनन्द हेथाय॥२७॥

हे विप्र! मैं तुम्हें एक बहुत गूढ़ बात बतला रहा हूँ—थोड़े ही समयमें यहाँपर परम आनन्द प्रकाशित होगा॥२७॥

मायापुरे शचीगृहे गौराङ्गसुन्दर।
प्रकट हइया प्रेम बिला'बे विस्तर॥२८॥

मायापुरके अन्तर्गत श्रीशचीमाताके घरमें श्रीगौरसुन्दर आविर्भूत होंगे और जनसाधारणमें कृष्णप्रेमका वितरण करेंगे॥२८॥

एइसब स्थाने प्रभु भक्तवृन्द ल'ये।
सङ्कीर्त्तनरसे नाचिबेन मत्त ह'ये॥२९॥

इन सभी स्थानोंपर श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने भक्तोंको साथ लेकर सङ्कीर्त्तनरसमें मत्त होकर नृत्य करेंगे॥२९॥

सर्व अवतारे छिला जे जे भक्तगण।
सकले लइया प्रभु करिबे कीर्त्तन॥३०॥

सभी अवतारोंमें प्रभुके जो-जो भक्त थे, वे (महाप्रभु) उन सबको अपने साथ लेकर सङ्कीर्त्तन करेंगे॥३०॥

प्रेम–वन्या–जले सर्व जगत् भासा'बे।
कुतार्किक बिना सबे महाप्रेम पा'बे॥३१॥

प्रेमरूपी बाढ़में सारा संसार डूब जायेगा। कुतार्किकोंको छोड़कर अन्य सभी महाप्रेमको प्राप्त करेंगे॥३१॥

एइ धामनिष्ठा करि' जेवा करे वास।
तारे मिले गौरपद ओहे दिवदास॥३२॥

हे दिवदास! धामके प्रति ऐसी निष्ठा रखकर जो कोई भी यहाँ वास करता है, उसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है॥३२॥

श्रीराधाकृष्णको प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय—

कोटि कोटि वर्ष धरि श्रीकृष्ण–भजन।
तथापि नामेते रति ना पाय दुर्जन॥३३॥

गौराङ्ग भजिले दुष्टभाव दूरे जाय।
अल्पदिने ब्रजधामे राधा–कृष्ण पाय॥३४॥

करोड़ों–करोड़ों वर्षों तक, श्रीकृष्णका भजन करनेपर भी दुर्जन व्यक्तिको श्रीहरिनाममें रुचि नहीं होती। किन्तु श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करनेपर शीघ्र ही दुष्ट स्वभाव दूर हो जाता है और थोड़े

ही दिनोंमें व्रजधाममें श्रीराधाकृष्णकी प्राप्ति होती है॥३३-३४॥

निज सिद्धदेह पाय सखीर आश्रय।
निज कुञ्ज श्रीयुगलसेवा ता'र हय॥३५॥

वह व्यक्ति स्वस्वरूपगत सिद्ध देह और व्रजाङ्गनाओंका आश्रय प्राप्त करता है और उसे कुञ्जमें श्रीयुगलसेवा करनेका अधिकार प्राप्त होता है॥३५॥

पुष्करतीर्थ द्वारा दिवदासको वर-प्राप्त—

ओहे विप्र, हेथा थाकि' करह भजन।
सपार्षदे श्रीगौराङ्ग पा'बे दरशन॥३६॥

हे विप्र! यहीं रहकर भजन करो, तुम्हें सपार्षद श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शन प्राप्त होंगे॥३६॥

आकाशवाणी—

एइ कथा बलि' तीर्थराज गेल चलि'।
शुनिल आकाशवाणी आइसे धन्य कलि॥३७॥

तुमि विप्र सेइकाले जन्मिबे आबार।
श्रीगौरकीर्त्तन प्रेमे दिबे त' साँतार॥"३८॥

इतना कहकर तीर्थराज पुष्कर तो चले गये; किन्तु उस ब्राह्मणने एक आकाशवाणीके माध्यमसे सुना कि जल्दी ही धन्य कलि आनेवाला है। हे विप्र! उसी समय (पुनः) तुम्हारा जन्म होगा और तुम श्रीगौरकीर्त्तनके प्रेमरूपी रसमें डुबकियाँ लगाओगे॥३७–३८॥

एत शुनि' दिवदास निश्चिन्त हइल।
एइ कुण्डतीरे वसि' भजन करिल॥३९॥

ऐसा सुनकर दिवदास बहुत निश्चिन्त होकर इसी कुण्डके तटपर बैठकर भजन करने लगा॥३९॥

श्रीउच्चहट्ट (नवद्वीपमें कुरुक्षेत्र)

एसब पुराण कथा 'श्रीजीवे' कहिया।
उच्चहट्ट कुरुक्षेत्रे प्रवेशिल गिया॥४०॥

श्रीजीवको इन सब पौराणिक कथाओंको सुनानेके बाद श्रीनित्यानन्द प्रभुने कुरुक्षेत्रस्वरूप उच्चहट्टमें प्रवेश किया॥४०॥

श्रीउच्चहट्टमें कुरुक्षेत्र सहित सभी देवताओंका आगमन—

नित्यानन्द बले,—हेथा सर्वदेवगण।
कुरुक्षेत्रे तीर्थसह कैल आगमन॥४१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—यहाँपर सभी देवता कुरुक्षेत्र तीर्थके साथ उपस्थित हुए थे॥४१॥

श्रीउच्चहट्टमें ब्रह्मावर्त्त और कुरुक्षेत्र स्थित सभी तीर्थोंका आगमन—

ब्रह्मावर्त्ते कुरुक्षेत्रे जत तीर्थ छिल।
सर्वतीर्थ आसि' हेथा विराज करिल॥४२॥

ब्रह्मावर्त्त तथा कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत जितने भी तीर्थ थे, सभी यहाँपर आकर बस गये॥४२॥

पृथुदक् आदि करि' सब हेथा बैसे।
सबे नवद्वीप सेवा करे अनायासे॥४३॥

पृथुदक् आदि सभी तीर्थ यहाँ वास करते हैं और अनायास ही श्रीनवद्वीपधामकी सेवा करते हैं॥४३॥

एक रात्रि श्रीउच्चहट्टमें वास करनेका फल—

शतवर्ष कुरुक्षेत्रे वासे जेइ फल।
हेथा एकरात्र–वासे लभे से–सकल॥४४॥

एक सौ वर्षों तक कुरुक्षेत्रमें वास करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह यहाँपर केवल एक रात वास करनेसे ही प्राप्त हो जाता है॥४४॥

'श्रीउच्चहट्ट' नाम पड़नेका कारण—

प्रभु बले,—हेथा वास करि' देवगण।
हट्ट करि गौरकथा करे आलोचन॥४५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—देवतालोग यहाँपर वास करने लगे और निकट ही एक ऊँचा स्थान बनाकर परस्पर श्रीगौरकथा कहने और सुनने लगे॥४५॥

श्रीउच्चहट्टका ही अपर नाम हट्टडाङ्गा—

हट्टडाङ्गा बलि' नाम हइल इहार।
इहार दर्शने पाय प्रेम-पारावार॥४६॥

तबसे इस स्थानका नाम हट्टडाङ्गा [हट्ट (बाजार) अर्थात् ऐसा स्थान जहाँपर सब समय श्रीगौरकथाका ही श्रवण और कीर्त्तनरूपी क्रय और विक्रय होता रहता है।] पड़ गया। इस स्थानका दर्शन करनेवाले व्यक्तिको अथाह प्रेमकी प्राप्ति होती है॥४६॥

एइ एक सीमा 'जीव' देख नदीयार।
एबे चल जाइ मोरा भागीरथी पार॥४७॥

यह भी श्रीनवद्वीपकी एक सीमा है। चलो! अब हम भागीरथीको पार करें॥४७॥

भागीरथी पार ह'ये मध्याह्न–समय।
कोलद्वीपे नित्यानन्द हइल उदय॥४८॥

भागीरथीको पार करके दोपहरके समय श्रीनित्यानन्द प्रभु कोलद्वीप पहुँचे। ऐसा लग रहा था, मानो सूर्य उदित हुए हों॥४८॥

श्रीनवद्वीप-परिक्रमाका क्रम

कुलियापाहाड़ पुरे जाइते जाइते।
'श्रीजीवे' निताइचाँद लागिल कहिते॥४९॥
''जे–क्रमे आइनु मोरा ह'ये गङ्गापार।
सेइ क्रम सिद्ध–क्रम परिक्रमा–सार॥५०॥

कुलिया पहाड़के मार्गपर चलते–चलते श्रीनिताइ–चाँद श्रीजीवसे कहने लगे—जिस क्रमसे गङ्गा पार करके हमने परिक्रमा की है, यही क्रम वास्तवमें परिक्रमा करनेका प्रामाणिक क्रम है और ऐसा करनेसे परिक्रमा करनेका वास्तविक फल प्राप्त होता है॥४९–५०॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा आयोजित प्रथम नगर–सङ्कीर्त्तन—

जबे प्रभु श्रीचैतन्य ल'ये निजगण।
करिलेन श्रीचौद्दमादल–सङ्कीर्त्तन॥५१॥

काजिरे शोधिते प्रभु सन्ध्या—आगमने।
मायापुर छाड़ि' चले ल'ये भक्तजने॥५२॥

एक दिन सन्ध्याके समय श्रीचैतन्य महाप्रभु मायापुरसे अपने हजारों परिकरोंके साथ काजीका उद्धार करनेके लिए चौदह मृदङ्गोंके साथ विराट नगर—सङ्कीर्त्तन करते हुए चल पड़े॥५१—५२॥

सेइ रात्र ब्रह्मरात्र शीघ्र नहे शेष।
एइ क्रमे महाप्रभु भ्रमे निज देश॥५३॥

वह रात ब्रह्माकी रातके समान बहुत बड़ी हो गयी। इस प्रकार श्रीमन् महाप्रभु अपने श्रीनवद्वीप—धाममें भ्रमण करने लगे॥५३॥

तारपर प्रति एकादशी तिथि धरि'।
भ्रमिला आमार प्रभु सङ्कीर्त्तन करि'॥५४॥

उसके बाद प्रत्येक एकादशीके दिन भक्तोंको साथ लेकर मेरे प्रभु नगर—सङ्कीर्त्तन करते हुए नवद्वीपमें भ्रमण करते थे॥५४॥

कभु पञ्चक्रोश भ्रमे अन्तर्द्वीपमय।
कभु अष्टक्रोश भ्रमे जेन मने लय॥५५॥

श्रीमन् महाप्रभु अपनी इच्छानुसार कभी पाँच कोस परिमाणवाले अन्तर्द्वीपका भ्रमण करते तो कभी आठ कोस भ्रमण करते॥५५॥

निज गृह हैते बारकोणा घाट छाड़ि'।
दीर्घिका वेष्टने जाय श्रीधरेर बाड़ी॥५६॥
तथा हैते अन्तर्द्वीप–सीमा भ्रमि' आसे।
पञ्चक्रोश परिक्रमा हय अनायासे॥५७॥

(पाँच कोस भ्रमणके लिए) अपने घरसे पहले बारकोणा घाट तक जाते, फिर बल्लालदीर्घिका और फिर श्रीधरके घर जाते। श्रीधरके घरसे अन्तर्द्वीपकी सीमा तक जाते और इस प्रकार अनायास ही पाँच कोसकी परिक्रमा करते॥५६–५७॥

सिमुलिया ह'ये काजिगृह बेड़ि' चले।
श्रीधरे सम्भाषि' आइसे गादिगाछा स्थले॥५८॥
माजिदा हइते हय भागीरथी पार।
पारडाङ्गा छिनाडाङ्गा पुलिन विस्तार॥५९॥
छाड़िया जाह्नवी पार हइया तखन।
अष्टक्रोश भ्रमि' चले आपन भवन॥६०॥

(आठ कोस भ्रमणके लिए) सिमुलियासे काजीके घर जाते। श्रीधरसे वार्त्तालाप करनेके बाद गदिगाछा (गोद्रुम) आ जाते, वहाँसे माजिदा (मध्यद्वीप) पहुँच जाते और भागीरथीको पार करके गङ्गाके दूसरे तटपर स्थित पारडाङ्गा एवं छिनाडाङ्गा नामक स्थान तक जाते। पुनः गङ्गा पार करके आठ कोस भ्रमण करनेके उपरान्त अपने घर लौट आते॥५८–६०॥

सम्पूर्ण–परिक्रमा—

सिद्ध–परिक्रमा हय पूर्ण षोलक्रोश।
सेइ परिक्रमा कैले प्रभुर सन्तोष॥६१॥

सोलह कोस भ्रमण करनेपर पूरी परिक्रमा होती है। पूरी परिक्रमा करनेपर महाप्रभु सन्तुष्ट होते हैं॥६१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीवको सोलह कोसवाली परिक्रमा कराना—

सेइ परिक्रमा आमि तोमारे कराइ।
इहार समान परिक्रमा आर नाइ॥६२॥

हे जीव! मैं तुम्हें वही (सोलह कोसवाली) परिक्रमा करा रहा हूँ। इसके समान और कोई परिक्रमा हो ही नहीं सकती॥६२॥

वृन्दावन षोलक्रोश द्वादश कानन।
एइ परिक्रमा–मध्ये पा'बे दरशन॥६३॥

सोलह कोस वृन्दावनमें स्थित द्वादश वनोंके दर्शन तुम्हें इसी परिक्रमामें ही हो जायेंगे॥६३॥

शास्त्रोंमें 'नवरात्र' का वर्णन

'नवरात्रे' एइ परिक्रमा शेष हय।
नवरात्र बलि' एर नाम शास्त्रे कय॥६४॥

यह परिक्रमा नौ रात्रिमें पूरी होती है, इसलिए शास्त्रोंमें इसे नवरात्र भी कहा जाता है॥६४॥

पञ्चक्रोश परिक्रमा एकदिने करे।
रात्रत्रय अष्टक्रोश परिक्रमा धरे॥६५॥

पाँच कोसकी परिक्रमा एक दिनमें और आठ कोसकी परिक्रमा तीन रातोंमें होती है॥६५॥

एकरात्र मायापुरे, द्वितीय गोद्रुमे।
पुलिने तृतीय रात्र एइ क्रमे भ्रमे॥"६६॥

एक रात्रि मायापुर, दूसरी गोद्रुम और तीसरी गङ्गाके पुलिनपर व्यतीत करते हुए परिक्रमा करनी चाहिये॥६६॥

शुनि' परिक्रमा-तत्त्व 'जीव' महाशय।
प्रेमेते अधैर्य ह'ये कतक्षण रय॥६७॥

परिक्रमाके तत्त्वको सुनकर श्रीजीव महाशय बहुत देर तक प्रेमाविष्ट हो गये॥६७॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा-पदछाया आश जार।
नदीया-महिमा वर्णे अकिञ्चन छार॥६८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे अकिञ्चन, दीन-हीन (श्रीभक्तिविनोद ठाकुर) द्वारा नदियाके माहात्म्यका वर्णन किया जा रहा है॥६८॥

दशम अध्याय समाप्त।

एकादश अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैत–श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द॥१॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो! जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो! श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी जय हो! श्रीवास आदि गौरभक्तोंकी जय हो!॥१॥

जय जय गौरभूमि—सर्वभूमिसार।
यथा नामसह श्रीचैतन्य–अवतार॥२॥

अन्यान्य सभी तीर्थस्थानोंके सारस्वरूप उस गौरभूमिकी जय हो! जय हो। जहाँपर श्रीहरिनामके साथ श्रीचैतन्य महाप्रभु अवतरित हुए हैं॥२॥

पञ्चवेणी

नित्यानन्द प्रभु बले,—शुन सर्वजन।
पञ्चवेणीरूपे गङ्गा हेथाय मिलन॥३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—सभी सुनो! यह पञ्चवेणी है, यहाँपर पाँच नदियोंका गङ्गासे मिलन होता है॥३॥

मन्दाकिनी–अलका–सहित भागीरथी।
गुप्तभावे हेथाय आछेन सरस्वती॥४॥

भागीरथी, मन्दाकिनी और अलकानन्दाके साथ मिलकर बहती है तथा सरस्वती गुप्त रूपमें प्रवाहित होती है॥४॥

पश्चिमे यमुनासह आइसे भोगवती।
ताहाते मानसगङ्गा महावेगवती॥५॥

पश्चिम दिशामें यमुनाके साथ भोगवती आती है, तथा उनमें मानस–गङ्गा भी बहुत तेजीसे बहती हुई आती है॥५॥

पञ्चवेणी (श्रीनवद्वीपमें प्रयागराजका स्थान)—

महा महा प्रयाग बलिया ऋषिगणे।
कोटि कोटि यज्ञ हेथा कैल ब्रह्मा–सने॥६॥

ऋषिगण इस स्थानको महा–महाप्रयाग कहते हैं, क्योंकि उन्होंने इसी स्थानपर ब्रह्माके साथ बैठकर करोड़ों–करोड़ों यज्ञ किये हैं॥६॥

पञ्चवेणीका अपर नाम ब्रह्मसत्र—

ब्रह्मसत्र—स्थान एइ महिमा अपार।
हेथा स्नान करिले जनम नहे आर॥७॥

ब्रह्मसत्र नामक इस स्थानकी अपार महिमा है। यहाँपर स्नान करनेसे पुनः जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता॥७॥

इहार महिमा केवा वर्णिवारे पारे।
शुष्क धारासम कोन तीर्थ हइते नारे॥८॥

इस स्थानकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है? शुष्कधारा सम (अर्थात् जैसे जल सूख जानेपर नदीका कोई मूल्य नहीं रहता, उसी प्रकार शक्तिरहित) अन्यान्य कोई भी तीर्थ इसके समान नहीं हो सकता॥८॥

जले—स्थले—अन्तरीक्षे त्यजिया जीवन।
सर्वजीव पाय श्रीगोलोक—वृन्दावन॥९॥

इस स्थानपर यदि कोई व्यक्ति जलमें, स्थलमें अथवा अन्तरीक्षमें शरीर छोड़ता है, तो उसे श्रीगोलोक—वृन्दावनकी प्राप्ति होती है॥९॥

कुलियापाहाड़ (कोलद्वीप)

कुलियापाहाड़ बलि' ख्यात एइ स्थान।
गङ्गातीरे उच्चभूमि पर्वत समान॥१०॥

क्योंकि गङ्गाके तटपर स्थित यह ऊँची भूमि देखनेमें पर्वतके समान लगती है इसलिए सभी इस स्थानको कुलिया पाहाड़ कहते हैं॥१०॥

कोलद्वीप—नाम शास्त्रे आछय वर्णन।
सत्ययुग—कथा एक शुन सर्वजन॥११॥

शास्त्रोंमें इस स्थानको कोलद्वीप कहा गया है। इस स्थानसे सम्बन्धित सत्ययुगका एक उपाख्यान श्रवण करो॥११॥

कोलदेव (वराह भगवान्) के भक्त श्रीवासुदेव विप्रका उपाख्यान—

वासुदेव नामे एक ब्राह्मण कुमार।
वराहदेवेर सेवा करे बार बार॥१२॥

वासुदेव नामक एक ब्राह्मण बालक सब समय श्रीवराहदेवकी सेवा करता था॥१२॥

शास्त्र-अनुमोदित श्रीविग्रहकी आराधना—

श्रीवराहमूर्त्ति पूजि' करे उपासना।
सर्वदा वराहदेवे करय प्रार्थना॥१३॥

"प्रभु मोरे कृपा करि' देह दरशन।
सफल हउक मोर नयन जीवन॥"१४॥

प्रतिदिन श्रीवराह भगवान्‌के श्रीविग्रहकी आराधना करनेके उपरान्त वह श्रीवराहदेवसे प्रार्थना करता कि हे प्रभो! मुझपर कृपा करके अपना दर्शन दीजिये, जिससे मेरा इन नेत्रोंको और जीवनको धारण करना सफल हो जाये॥१३-१४॥

एइ बलि काँदे विप्र गड़ागड़ि जाय।
प्रभु नाहि देखा दिले जीवन वृथाय॥१५॥

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण बालक रोते-रोते वहाँकी रजमें लोट-पोट होने लगता और मन-ही-मन विचार करता कि यदि प्रभुने मुझे दर्शन ही नहीं दिये तो मेरा जीवन धारण करना वृथा है॥१५॥

वासुदेवको श्रीकोलदेवका दर्शन-प्राप्त—

कतदिने श्रीवराह अनुकम्पा करि'।
देख दिला वासुदेवे कोलरूप धरि'॥१६॥

कुछ दिनोंके उपरान्त श्रीवराहदेवने कृपा करके वासुदेवको अपने कोलरूपके दर्शन कराये॥१६॥

श्रीकोलदेवके रूपका वर्णन—

नाना रत्न—भूषणे भूषित कलेवर।
पद—ग्रीवा—नासा—मुख—चक्षु मनोहर॥१७॥

श्रीवराहदेवके श्रीअङ्ग अनेक रत्नजड़ित आभूषणोंसे भूषित थे। उनके श्रीचरणकमल, गला, नाक, मुख और नेत्र आदि सभी अङ्ग मनको हरण करनेवाले थे॥१७॥

पर्वत—समान उच्च शरीर ताँहार।
देखि' विप्र निजे धन्य माने बार बार॥१८॥

उनका दिव्य कलेवर पर्वतके समान ऊँचा था। उनका दर्शन करके विप्र अपने आपको धन्यातिधन्य मानने लगा॥१८॥

वासुदेव विप्र द्वारा कोलदेवके श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम—

भूमे पड़ि' विप्र प्रणमिया प्रभु—पाय।
काँदिया आकुल हैल गड़ागड़ि जाय॥१९॥

भूमिपर गिरकर वह ब्राह्मण बालक श्रीकोलदेवके चरणोंकी रजमें आकुल होकर लोट—पोट करते हुए रोने लगा॥१९॥

श्रीकोलदेव द्वारा वासुदेव विप्रको उपदेश प्रदान—

विप्रेर भकति देखि' वराह तखन।
कहिलेन वासुदेवे मधुर वचन॥२०॥

"ओहे वासुदेव, तुमि भकत आमार।
बड़ तुष्ट हैनु पूजा पाइया तोमार॥२१॥

उस ब्राह्मण बालककी भक्ति देखकर श्रीवराहदेवने वासुदेवको मधुर वचनोंसे कहा—हे वासुदेव! तुम मेरे भक्त हो। तुम्हारी आराधनासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ॥२०-२१॥

एइ नवद्वीपे मोर प्रकट विहार।
कलि-आगमने ह'बे शुन वाक्यसार॥२२॥

कलियुगके प्रारम्भमें मैं इस श्रीनवद्वीपमें अपनी लीलाएँ प्रकाशित करूँगा। मेरी बात ध्यानसे सुनो॥२२॥

नवद्वीप-सम धाम नाहि त्रिभुवने।
अति प्रियधाम मोर आछे सङ्गोपने॥२३॥

त्रिभुवनमें इस श्रीनवद्वीपधामके समान कोई भी स्थान नहीं है। यह मेरा बहुत प्रिय धाम होनेपर भी अभी गुप्त है॥२३॥

ब्रह्मावर्त्तसह आछे पुण्यतीर्थ जत।
से—सब आछये हेथा शास्त्रेर सम्मत॥२४॥

सभी शास्त्रोंका भी यही निर्णय है कि ब्रह्मावर्त्त सहित अन्यान्य सभी तीर्थ यहाँपर विराजमान हैं॥२४॥

हिरण्याक्षके वधका स्थान

जे—स्थाने ब्रह्मार यज्ञे प्रकाश हइया।
नाशिलाम हिरण्याक्ष दन्ते विदारिया॥२५॥

सेइ स्थान पुण्यभूमि एइ स्थाने रय।
यथाय आमार एबे हइल उदय॥२६॥

जिस स्थानपर ब्रह्माके यज्ञमें प्रकाशित होकर मैंने अपने दाँतसे हिरण्याक्षके अङ्गोंको चीरकर उसका वध किया था, यह वही पुण्यभूमि है, जहाँपर मैं तुम्हारे सामने आविर्भूत हुआ हूँ॥२५-२६॥

नवद्वीप वाससे सभी तीर्थोंमें एकसाथ वास सम्भवपर—

नवद्वीप सेवि' सर्वतीर्थ विराजय।
नवद्वीपवासे सर्वतीर्थ वास हय॥२७॥

यहाँपर श्रीनवद्वीपकी सेवा करते हुए सभी तीर्थ विराजमान हैं। श्रीनवद्वीपमें वास करनेसे सभी तीर्थोंमें वास करना हो जाता है॥२७॥

श्रीकोलदेव द्वारा वासुदेव विप्रको वर-प्रदान—

धन्य तुमि नवद्वीपे सेविले आमाय।
श्रीगौर-प्रकटकाले जन्मिबे हेथाय॥२८॥

तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने इसी नवद्वीपमें मेरी सेवा की है। श्रीगौरहरिकी प्रकटलीलाके समय तुम्हारा भी यहींपर जन्म होगा॥२८॥

अनायासे देखिबे से महासङ्कीर्त्तन।
अपूर्व गौराङ्ग-रूप पा'बे दरशन॥"२९॥

तुम अनायास ही महासङ्कीर्त्तनका दर्शन कर पाओगे तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके अपूर्व रूपका दर्शन प्राप्त करोगे॥२९॥

एत बलि' श्रीवराह हइल अन्तर्ध्यान।
दैव-वाणी हैल विप्रे बुझिते सन्धान॥३०॥

इतना कहकर श्रीवराहदेव वहाँसे अन्तर्धान हो गये तथा उसी समय विप्रने एक दैववाणी

(आकाशवाणी) सुनी, जो उससे कह रही थी कि तुम श्रीमन् महाप्रभुके तत्त्वको ठीकसे समझनेके लिए शास्त्रीय प्रमाणोंका अनुसन्धान करो॥३०॥

श्रीवासुदेव विप्रको शास्त्रोंमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका इङ्गित प्राप्त—

परम पण्डित वासुदेव महाशय।
सर्वशास्त्र विचारिया जानिल निश्चय॥३१॥

वैवस्वत-मन्वन्तरे कलिर सन्ध्याय।
श्रीगौराङ्गप्रभु-लीला ह'बे नदीयाय॥३२॥

क्योंकि वासुदेव परम विद्वान् था, इसलिए उसने शास्त्रोंका विचार करनेके उपरान्त निश्चय किया कि वैवस्वत-मन्वन्तरमें कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें श्रीगौराङ्ग महाप्रभु इस श्रीनवद्वीपमें अपनी लीला प्रकाशित करेंगे॥३१-३२॥

ऋषिगण सेइ तत्त्व राखिल गोपने।
इङ्गिते कहिल सब बुझे विज्ञजने॥३३॥

उसने अपने मन-ही-मन कहा—ऋषियोंने शास्त्रोंमें इस तत्त्वको गुप्त रूपमें इङ्गित किया है। केवल

बुद्धिमान व्यक्ति ही इस तत्त्वको समझ सकते हैं॥३३॥

प्रकट हइले लीला हइबे प्रकाश।
एबे गोप्य एइ तत्त्व पाइल आभास॥३४॥

महाप्रभुकी लीला प्रकाशित होनेपर ये सब तत्त्व भी प्रकाशित हो जायेंगे। परन्तु अभी ये सब तत्त्व गोपन रखने योग्य हैं, उस ब्राह्मण बालकको इसका आभास हो गया॥३४॥

परम आनन्दे विप्र करे सङ्कीर्त्तन।
गौरनाम गाय मने मने सर्वक्षण॥३५॥

वह विप्र अत्यधिक आनन्दित होकर सङ्कीर्त्तन करने लगा और मन-ही-मन सदैव श्रीगौरहरिका नाम गान करने लगा॥३५॥

'कोलद्वीप' नामका कारण—

पर्वतप्रमाण कोलदेवेर शरीर।
देखि' वासुदेव मने विचारिल धीर॥३६॥

कोलद्वीप पर्वताख्य एइ स्थान हय।
सेइ हैते पर्वताख्य हैल परिचय॥३७॥

पर्वतके समान दिखायी देनेवाले कोलदेवके दिव्य कलेवरका दर्शनकर बुद्धिमान वासुदेवने मन-ही-मन विचार किया कि हो-न-हो। यही स्थान ही शास्त्रोंमें वर्णित कोलद्वीप पर्वत है। तबसे सभी इसे कोलद्वीप पर्वत कहकर पुकारने लगे॥३६-३७॥

कोलद्वीप, व्रजका सर्वाऽभीष्ट प्रदाता गिरिराज-गोवर्धन—

ओहे 'जीव'! नित्यलीलामय वृन्दावने।
गिरि गोवर्द्धन एइ जाने भक्तजने॥३८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! भक्तलोग जानते हैं कि यह स्थान नित्यलीलामय श्रीवृन्दावनमें गिरिराज-गोवर्धन है॥३८॥

कोलद्वीपके उत्तरमें व्रजका श्रीबहुलावन—

श्रीबहुलावन देख इहार उत्तरे।
रूपेर छटाय सर्वदिक शोभा करे॥३९॥

इसके उत्तरमें स्थित श्रीबहुलावनका दर्शन करो। देखो! बहुलावनके रूपकी छटा सभी दिशाओंको उज्ज्वल कर रही है॥३९॥

श्रीनवद्वीपमें व्रजस्थित द्वादश वनोंके क्रमका विपर्यय

वृन्दावने जे जे–क्रमे द्वादश कानन।
से–क्रम नाहिक हेथा वल्लभ–नन्दन॥४०॥

हे वल्लभनन्दन! वृन्दावनमें जिस क्रमसे द्वादश वन हैं, वह क्रम यहाँपर वैसा नहीं हैं॥४०॥

प्रभु–इच्छामते हेथा क्रम–विपर्यय।
इहार तात्पर्य जाने प्रभु इच्छामय॥४१॥

श्रीमन् महाप्रभुकी इच्छानुसार ही यहाँपर ऐसा क्रम–विपर्यय है। किन्तु इसके ऐसे होनेके कारणको तो केवल वे इच्छामय प्रभु ही जानते हैं॥४१॥

जेइरूप आछे हेथा देख सेइरूप।
विपर्यये प्रेमवृद्धि एइ अपरूप॥४२॥

यहाँपर ये स्थान जिस प्रकारसे व्यवस्थित हैं, उनका उसी प्रकारसे दर्शन करना चाहिये, क्योंकि विपर्ययसे प्रेममें अपूर्व वृद्धि होती है॥४२॥

श्रीसमुद्रगढ़

किछु दूर गिया प्रभु बलेन वचन।
एइ जे समुद्रगड़ि कर दरशन॥४३॥

कुछ दूर जाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! यह समुद्रगढ़ है, इसका दर्शन करो॥४३॥

श्रीनवद्वीपधाममें द्वारकापुरी और श्रीगङ्गासागरका स्थान—

साक्षात् द्वारकापुरी श्रीगङ्गासागर।
दुइ तीर्थ आछे हेथा देख विज्ञवर॥४४॥

हे विज्ञवर! देखो! यहाँपर साक्षात् द्वारकापुरी और श्रीगङ्गासागर नामक दो तीर्थ वास करते हैं॥४४॥

(श्रीसमुद्रगढ़में द्वारकापुरीके विद्यमान होनेका उपाख्यान)

श्रीसमुद्रगढ़के राजा श्रीसमुद्रसेनका परिचय—

श्रीसमुद्रसेन राजा छिल एइ स्थाने।
बड़ कृष्णभक्त, कृष्ण बिना नाहि जाने॥४५॥

यहाँपर श्रीसमुद्रसेन नामक एक राजा रहते थे। वे श्रीकृष्णके बहुत बड़े भक्त थे। भगवान्

श्रीकृष्णके अतिरिक्त वे कुछ भी नहीं जानते थे॥४५॥

दिग्विजयके समय पाण्डुपुत्र भीमका समुद्रगढ़में आगमन—

जबे भीमसेन आइल निज सैन्य ल'ये।
घेरिल समुद्रगड़ि बङ्गदिग्विजये॥४६॥

राजा जाने कृष्ण एक पाण्डवेर गति।
पाण्डव विपदे पैले आइसे यदुपति॥४७॥

बङ्गालमें दिग्विजयके समय जब भीमसेनने अपने सैन्यबलके द्वारा समुद्रगढ़को घेर लिया, तब उस समय समुद्रसेन राजाने विचार किया कि श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंके एकमात्र प्रभु और अनन्य गति हैं। यदि पाण्डवोंपर कोई विपत्ति आती है, तो यदुपति श्रीकृष्ण उनकी रक्षा हेतु दौड़े चले आते हैं॥४६-४७॥

राजा श्रीसमुद्रसेनकी भावना—

यदि आमि पारि भीमे देखाइते भय।
भीम-आर्त्तनादे हरि हबे दयामय॥४८॥

यदि किसी तरह मैं भीमको भयभीत कर दूँ तो भीम दुःखी होकर श्रीकृष्णको पुकारेंगे और

उनकी पुकार सुनकर श्रीहरि अवश्य ही उनपर दया करेंगे॥४८॥

दया करि' आसिबेन ए दासेर देशे।
देखिवे से श्याममूर्त्ति चक्षे अनायासे॥४९॥

श्रीकृष्ण दया करके अपने इस दासके स्थान (समुद्रगढ़) में आयेंगे और मैं अनायास ही उनके उस श्याम रूपका दर्शन कर पाऊँगा॥४९॥

एत भावि' निज सैन्य साजाइल राय।
गज–बाजि–पदातिक ल'ये युद्धे जाय॥५०॥

ऐसा सोचकर राजाने अपनी सेनाको सुसज्जित किया तथा हाथी, घोड़े और पैदल सेनाको साथ लेकर युद्धके लिए निकल पड़े॥५०॥

राजा श्रीसमुद्रसेनके बाणोंसे भीमका भयभीत होना—

श्रीकृष्ण स्मरिया राजा बाण निक्षेपय।
बाणे जर जर भीम पाइल बड़ भय॥५१॥

श्रीकृष्णका स्मरण करके राजा बाण चलाने लगे और उनके बाणोंसे जर्जर होकर भीम बहुत भयभीत हो गये॥५१॥

‘अवश्य रक्षिबे कृष्ण’ मन्त्रमें दीक्षित श्रीभीमसेन द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रार्थना—

मने मने डाके कृष्णे विपद देखिया।
“रक्षा कर भीमे नाथ श्रीचरण दिया॥५२॥

समुद्रसेनेर सह जुझिते ना पारि।
भङ्ग दिले बड़ लज्जा ताहा सहिते नारि॥५३॥

घोर विपत्ति देखकर भीम मन-ही-मन श्रीकृष्णको पुकारते हुए कहने लगे—हे श्रीकृष्ण! हे नाथ! अपने श्रीचरणकमलोंका आश्रय देकर अपने इस दासकी रक्षा करें। मैं इस समुद्रसेनके सामने युद्धमें टिक नहीं पा रहा हूँ, यदि मैं हार गया तो यह बहुत लज्जाकी बात होगी और मैं इसे सहन भी नहीं कर पाऊँगा॥५२-५३॥

पाण्डवेर नाथ कृष्ण पाइ पराजय।
बड़इ लज्जार कथा ओहे दयामय॥”५४॥

हे पाण्डवोंके नाथ श्रीकृष्ण! हे दयामय! पराजित होना तो बहुत लज्जाकी बात है॥५४॥

श्रीभीमसेनकी पुकारसे भगवान् श्रीकृष्णका युद्धभूमिमें आविर्भूत होना—

भीमेर करुण–नाद शुनि' दयामय।
सेइ युद्धस्थले कृष्ण हइल उदय॥५५॥
ना देखे से रूप केह अपूर्व घटना।
श्रीसमुद्रसेन मात्र देखे एकजना॥५६॥

यद्यपि भीमकी इस करुण पुकारको सुनकर दयामय श्रीकृष्ण उस युद्धभूमिमें सहसा आविर्भूत हो गये, तथापि वहाँ एक अद्भुत घटना हुई। एकमात्र श्रीसमुद्रसेनके अतिरिक्त और कोई भी उन्हें नहीं देख पाया॥५५-५६॥

राजा श्रीसमुद्रसेन द्वारा श्रीकृष्णके रूपका दर्शन—

नवजलधर–रूप कैशोर मूरति।
गले दोले वनमाला मुकुतार भाति॥५७॥

श्रीसमुद्रसेनने देखा कि किशोर अवस्थावाले श्रीकृष्णकी अङ्गकान्ति घने बादलोंके समान है, उनके गलेमें वनमाला मुक्ताकी भाँति देदीप्यमान हो रही है॥५७॥

सर्व अङ्गे अलङ्कार अति सुशोभन।
पीतवस्त्र परिधान अपूर्व गठन॥५८॥

उनके सभी अङ्गोंमें विराजमान अलङ्कार बहुत सुशोभित हो रहे हैं। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है तथा उनकी देहका गठन अपूर्व सुन्दर है॥५८॥

राजा श्रीसमुद्रसेनकी भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना—

से–रूप देखिया राजा प्रेमे मूर्च्छा जाय।
मूर्च्छा सम्वरिया कृष्णे प्रार्थना जानाय॥५९॥

"तुमि कृष्ण जगन्नाथ पतित–पावन।
पतित देखिया मोरे तव आगमन॥६०॥

श्रीकृष्णके उस रूपका दर्शनकर राजा प्रेमके कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। चेतना प्राप्त करनेपर श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे—हे श्रीकृष्ण! आप पतित–पावन जगन्नाथ हैं, मुझे पतित देखकर ही आप यहाँपर उपस्थित हुए हैं॥५९–६०॥

तव लीला जगज्जन करय कीर्त्तन।
शुनि' देखिवार इच्छा हइल तखन॥६१॥

जगत्के सभी लोग आपकी लीलाओंका कीर्त्तन करते हैं, उनके मुखसे आपका गुणगान सुनकर

मेरी भी आपके दर्शन करनेकी इच्छा होती थी॥६१॥

राजा श्रीसमुद्रसेनकी प्रतिज्ञा—

किन्तु मोर व्रत छिल, ओहे दयामय।
एइ नवद्वीपे तव हइबे उदय॥६२॥
हेथाय देखिब तव रूप मनोहर।
नवद्वीप छाड़िवारे ना हय अन्तर॥६३॥

परन्तु हे दयामय! (मैं बहुत ही दुविधामें था) एक तो इस श्रीनवद्वीपको छोड़कर मेरी कहींपर भी जानेकी इच्छा नहीं होती थी और साथ-ही-साथ आपके मनोहर रूपको देखनेकी भी प्रबल इच्छा होती थी। इसलिए मैंने यह व्रत लिया था कि आपके इसी श्रीनवद्वीपमें आविर्भूत होनेपर ही मैं आपका दर्शन करूँगा॥६२-६३॥

राजा श्रीसमुद्रसेनकी एक गूढ़ इच्छा—

सेइ व्रत रक्षा मोर करि' दयामय।
नवद्वीपे कृष्णरूपे हइले उदय॥६४॥
तथापि आमार इच्छा अति गूढ़तर।
गौराङ्ग हउन मोर अक्षिर गोचर॥"६५॥

हे दयामय! यद्यपि आज आपने मेरे समक्ष श्रीनवद्वीपमें श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट होकर मेरे उस व्रतकी रक्षा की है तथापि मेरी एक बहुत गूढ़ इच्छा है कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभु मेरी आँखोंके सामने प्रकट हों॥६४-६५॥

भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उनकी इच्छाकी पूर्ति—

देखिते देखिते राजा सम्मुखे देखिल।
राधाकृष्ण-लीलारूप माधुर्य अतुल॥६६॥

देखते-ही-देखते राजाने अपने समक्ष श्रीराधा-कृष्णकी लालाओंके अतुलनीय माधुर्यका दर्शन किया॥६६॥

श्रीकुमुदवने कृष्ण सखीगण सने।
अपराह्ने करे लीला गिया गोचारणे॥६७॥

उसने देखा कि श्रीकृष्ण गोचारण करते-करते दोपहरके समय श्रीकुमुदवनमें आकर सखियोंके साथ लीला कर रहे थे॥६७॥

श्रीसमुद्रसेनको सपरिकर श्रीगौरहरिके दर्शन-प्राप्त—

क्षणेके हइल सेइ लीला अदर्शन।
श्रीगौराङ्ग-रूप हेरे भरिया नयन॥६८॥

महासङ्कीर्त्तनावेश, सङ्गे भक्तगण।
नाचिया नाचिया प्रभु करेन कीर्त्तन॥६९॥

थोड़ी ही देरमें वह लीला अन्तर्धान हो गयी और राजाने उसके स्थानपर सपार्षद श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शन किये। महाप्रभु अपने परिकरोंके साथ सङ्कीर्त्तनमें रत थे तथा आवेशमें भरकर नृत्य करते हुए कीर्त्तन कर रहे थे॥६८-६९॥

पुरटसुन्दरकान्ति अति मनोहर।
नयन माताय अति काँपाय अन्तर॥७०॥

उनकी उज्ज्वल स्वर्णिम अङ्गकान्ति मनको आकर्षित करनेवाली, नेत्रोंको मत्त बना देनेवाली तथा हृदयमें उथल-पुथल मचा देनेवाली थी॥७०॥

श्रीसमुद्रसेन द्वारा श्रीगौरहरिकी स्तव-स्तुति—

सेइ रूप हेरि' राजा निजे धन्य माने।
बहु स्तव करे तबे गौराङ्ग-चरणे॥७१॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके उस रूपके दर्शन करके राजा अपने आपको धन्य मानने लगे और वे उनके श्रीचरणकमलोंमें अनेक प्रकारकी स्तव-स्तुति करने लगे॥७१॥

कतक्षणे से–सकल हैल अदर्शन।
काँदिते लागिल राजा हये अन्य मन॥७२॥

थोड़ी ही देरमें वह लीला अदृश्य हो गयी तथा राजा बहुत दुःखी होकर रोने लगे॥७२॥

पाण्डुपुत्र श्रीभीमसेनका विक्रम प्रदर्शन—

भीमसेन एइ पर्व ना देखे नयने।
भावे राजा युद्धे भीत हइल एतक्षणे॥७३॥

श्रीभीमसेनको तो यह सब लीला दिखायी नहीं दे रही थी, इसलिए वे मन–ही–मन विचार करने लगे कि शायद राजा युद्धसे भयभीत हो गया है॥७३॥

राजा द्वारा स्वेच्छापूर्वक अपनी पराजय स्वीकार करना—

अत्यन्त विक्रम करे पाण्डुर नन्दन।
राजा तुष्ट हये कर याचे ततक्षण॥७४॥

ऐसा विचारकर पाण्डुपुत्र भीम बहुत अधिक बल दिखाने लगे। राजा समुद्रसेनने सन्तुष्ट होकर उनसे कर स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की॥७४॥

कर पेये भीमसेन अन्य स्थाने जाय।
भीम–दिग्विजयी सर्व जगतेते गाय॥७५॥

श्रीभीमसेन कर लेकर दूसरे स्थानपर चले गये तथा जगत्‌में सभी श्रीभीमसेन दिग्विजयी हैं—यह कहकर उनका गुणगान गाने लगे॥७५॥

एइ से समुद्रगड़ि नवद्वीप–सीमा।
ब्रह्मा नाहि जाने एइ स्थानेर महिमा॥७६॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! ऐसी दिव्य लीला जिस स्थानपर हुई थी, यह वही समुद्रगढ़ है। यह श्रीनवद्वीपकी दक्षिण सीमापर स्थित है। ब्रह्मा भी इस स्थानके माहात्म्यको नहीं जानते॥७६॥

श्रीसमुद्रगढ़में गङ्गासागरकी विद्यमानता

समुद्र आसिया हेथा जाह्नवी–आश्रये।
प्रभुपद सेवा करे भक्तभाव ल'ये॥७७॥

समुद्र यहाँ आकर श्रीजाह्नवीका आश्रय लेकर भक्तभाव द्वारा श्रीमन् महाप्रभुके चरणकमलोंकी सेवा करता है॥७७॥

समुद्र और जाह्नवी श्रीगङ्गाका वार्त्तालाप—

जाह्नवी बलेन,—"सिन्धु, अति अल्पदिने।
तव तीरे प्रभु मोर रहिबे विपिने॥"७८॥

एक दिन जाह्नवीने समुद्रसे कहा—हे सिन्धो! बहुत ही थोड़े दिनोंमें मेरे प्रभु जगन्नाथपुरीमें तुम्हारे तटपर वास करेंगे॥७८॥

सिन्धु बले,—"शुन देवि, आमार वचन।
नवद्वीप नाहि छाड़े शचीर नन्दन॥७९॥

समुद्रने कहा—हे देवि! मेरी बात सुनो। श्रीशचीनन्दन श्रीनवद्वीपधामको छोड़कर कहीं नहीं जाते॥७९॥

यद्यपिओ किछुदिन रहे मम तीरे।
अप्रत्यक्षे रहे तबु नदीया–भितरे॥८०॥

यद्यपि वे कुछ समय तक मेरे तटपर रहेंगे, तथापि अप्रत्यक्ष रूप (अपने वास्तविक स्वरूप) से वे नवद्वीपमें ही रहते हैं॥८०॥

नित्यधाम नवद्वीप प्रभुर हेथाय।
प्रकट ओ अप्रकट–लीला वेदे गाय॥८१॥

श्रीनवद्वीप श्रीमन् महाप्रभुका नित्यधाम है। उनकी यहाँपर होनेवाली प्रकट और अप्रकट–लीलाओंका वेद गान करते हैं॥८१॥

समुद्रकी श्रीगङ्गासे प्रार्थना—

हेथा तवाश्रये आमि रहिब सुन्दरि।
सेविब श्रीनवद्वीपे श्रीगौराङ्ग हरि॥"८२॥

हे सुन्दरि! मैं यहाँपर तुम्हारे आश्रयमें रहकर श्रीनवद्वीपमें श्रीगौरहरिकी सेवा करूँगा॥८२॥

एइ बलि' पयोनिधि नवद्वीपे रय।
गौराङ्गेर नित्यलीला सतत चिन्तय॥८३॥

इतना कहकर समुद्र श्रीनवद्वीपमें रहने लगे तथा दिन-रात सब समय श्रीगौरहरिकी नित्य लीलाओंका चिन्तन करने लगे॥८३॥

श्रीचम्पकहट्ट
(श्रीद्विजवाणीनाथका स्थान)

तबे नित्यानन्द आइला चम्पाहट्ट-ग्राम।
वाणीनाथ-गृहे तथा करिल विश्राम॥८४॥

समुद्रगढ़से श्रीनित्यानन्द प्रभु चम्पकहट्टमें उपस्थित हुए और वहाँपर द्विजवाणीनाथके घरपर विश्राम किया॥८४॥

श्रीचम्पकहट्ट, व्रजका खदीरवन—

अपराह्ले चम्पाहट्ट करय भ्रमण।
नित्यानन्द बले,—शुन वल्लभ नन्दन॥८५॥

एइ स्थाने छिल पूर्वे चम्पक–कानन।
खदिर वनेर अंश सुन्दर दर्शन॥८६॥

दोपहरके समय चम्पकहट्टमें भ्रमण करते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे वल्लभनन्दन (श्रीजीव) सुनो! पहले यहाँपर चम्पक पुष्पोंका एक वन था। यह स्थान व्रज स्थित खदीरवनका अंश है तथा देखनेमें बहुत ही सुन्दर है॥८५–८६॥

चम्पकलता सखी नित्य चम्पक लइया।
माला गाँथि राधाकृष्णे सेवितेन गिया॥८७॥

चम्पकलता सखी नित्यप्रति यहाँसे चम्पकके पुष्पोंको चयनकर माला गूँथती थी तथा उससे श्रीराधाकृष्णकी सेवा करती थी॥८७॥

'श्रीचम्पकहट्ट' नाम पड़नेका कारण—

कलि वृद्धि हइले सेइ चम्पक–कानने।
मालिगण फूल लय अति हृष्टमने॥८८॥

कलियुगकी वृद्धि होनेपर माली लोग इस चम्पकवनमें आकर अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक चम्पक-पुष्पोंको एकत्रित करते थे॥८८॥

हट्ट करि' चम्पक-कुसुम ल'ये बसि'।
विक्रय करय, लय जत ग्रामवासी॥८९॥

वे लोग यहींपर ही एक हट्ट (बाजार) बनाकर चम्पकके पुष्पोंको बेचने लगे तथा आस-पासके सभी ग्रामवासी उनसे उन पुष्पोंको खरीदने लगे॥८९॥

'चाँपाहाटि' श्रीचम्पकहट्टका ही अपर नाम—

सेइ हैते श्रीचम्पकहट्ट हैल नाम।
चाँपाहाटि सबे बले मनोहर धाम॥९०॥

तबसे इस स्थानका नाम श्रीचम्पकहट्ट पड़ गया। साधारण भाषामें लोग इस मनोहर धामको चाँपाहाटि कहने लगे॥९०॥

कविकुल शिरोमणि श्रीजयदेव गोस्वामीके श्रीचम्पकहट्टमें आकर वास करनेसे सम्बन्धित उपाख्यान—

जेकाले लक्ष्मणसेन नदीयार राजा।
जयदेव नवद्वीपे हन ताँ'र प्रजा॥९१॥

जिस समय श्रीलक्ष्मणसेन नदियाके राजा थे, उस समय कविकुल शिरोमणि श्रीजयदेव नपद्वीपमें उनकी प्रजाके रूपमें रहते थे॥९१॥

सर्वप्रथम श्रीजयदेवका बल्लालदीर्घिकामें वासस्थान—

बल्लालदीर्घिकाकूले बाँधिया कुटीर।
पद्मासह बैसे तथा जयदेव धीर॥९२॥

बल्लालदीर्घिकाके तटपर कुटीर बनाकर दृढ़ और शान्त चित्तवाले श्रीजयदेव अपनी पत्नी पद्माके साथ वास करते थे॥९२॥

दशावतारकी रचना-स्थली बल्लालदीर्घिका—

दश—अवतार स्तव रचिल तथाय।
सेइ स्तव लक्ष्मणेर हस्ते कभु जाय॥९३॥

वहींपर ही उन्होंने दशावतार नामक स्तवकी रचना की। किसी समय उनके द्वारा रचित वह स्तव राजा लक्ष्मणसेनके हाथमें पहुँचा॥९३॥

राजा लक्ष्मणसेन द्वारा दशावतार-स्तोत्रका पाठ—

परम आनन्दे स्तव करिल पठन।
जिज्ञासिला राजा, ''स्तव कैल कोन् जन॥''९४॥

राजा लक्ष्मणसेनने बहुत आनन्दित होकर उस स्तवका पाठ किया तथा पाठ करनेके उपरान्त अपने मन्त्रियोंसे जिज्ञासा करने लगे कि इस स्तवकी रचना किसने की है॥९४॥

गोवर्द्धन आचार्य राजारे तबे कय।
"महाकवि जयदेव रचयिता हय॥"९५॥

सभामें उपस्थित श्रीगोवर्धन आचार्यने राजासे कहा कि महाकवि जयदेव इसके रचयिता हैं॥९५॥

कोथा जयदेव कवि जिज्ञासे भूपति।
गोवर्द्धन बले,—"एइ नवद्वीपे स्थिति॥"९६॥

राजाने पूछा कि कवि जयदेव कहाँपर रहते हैं? गोवर्धनने उत्तर दिया कि वे इसी नवद्वीपमें ही रहते हैं॥९६॥

राजा लक्ष्मणसेन द्वारा अकिञ्चन वेश धारण करके श्रीजयदेवका सन्धान—

शुनिया गोपने राजा करिया सन्धान।
रात्रयोगे आइल तबे जयदेव–स्थान॥९७॥

वैष्णववेशेते राजा कुटीरे प्रवेशे।
जयदेवे नति करि' बैसे एकदेशे॥९८॥

ऐसा सुनकर राजाने गुप्त रूपसे उनके वास स्थानका पता लगाया और रात्रिके समय वैष्णवका वेश धारण करके श्रीजयदेवकी कुटियामें आये तथा उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गये॥९७-९८॥

जयदेव जानिलेन, भूपति ए जन।
वैष्णव-वेशेते आइल ह'ये अकिञ्चन॥९९॥

जयदेव समझ गये कि राजा ही वैष्णव-वेश धारण करके अकिञ्चन बनकर यहाँ आये हैं॥९९॥

राजा लक्ष्मणसेनकी श्रीजयदेवसे प्रार्थना—

अल्पक्षणे राजा तबे देय परिचय।
जयदेवे याचे जाइते आपन आलय॥१००॥

थोड़ी ही देरमें राजाने अपना परिचय दिया तथा जयदेवको अपने राजभवनमें चलनेके लिए प्रार्थना करने लगे॥१००॥

विरक्त कृष्णभक्त श्रीजयदेवकी असहमति—

अत्यन्त विरक्त जयदेव महामति।
विषयि-गृहेते जेते ना करे सम्मति॥१०१॥

किन्तु महामति जयदेव बहुत विरक्त थे, इसलिए उन्होंने विषयीके घरपर जानेके लिए अपनी सहमति नहीं दी॥१०१॥

कृष्णभक्त जयदेव बलिल तखन।
तव देश छाड़ि' आमि करिब गमन॥१०२॥

अनन्य कृष्णभक्त श्रीजयदेवने कहा कि यदि ऐसा कहोगे तो मैं आपके देशको ही छोड़कर चला जाऊँगा॥१०२॥

श्रीजयदेव कवि द्वारा असत्सङ्ग त्यागकी शिक्षा—

विषयि संसर्ग कभु ना देय मङ्गल।
गङ्गा पार ह'ये जा'ब यथा नीलाचल॥१०३॥

विषयी लोगोंके सङ्गसे कभी भी मङ्गल नहीं होता। मैं गङ्गा पार करके नीलाचल चला जाऊँगा॥१०३॥

दैन्य, दया, अन्यमान, प्रतिष्ठावर्जन नामक चारों गुणोंमें गुणी कृष्णभक्त राजा लक्ष्मणसेनकी श्रीजयदेव कविसे प्रार्थना—

राजा बले,—"शुन प्रभु, आमार वचन।
नवद्वीप त्याग नाहि कर कदाचन॥१०४॥

राजाने कहा—हे प्रभो! मेरी बात सुनो। आप कृपया इस श्रीनवद्वीपको त्यागकर मत जाइये॥१०४॥

तव वाक्य सत्य हबे मोर इच्छा रबे।
हेन कार्य कर देव मोर कृपा जबे॥१०५॥

हे प्रभो! आप मुझपर कृपा करके ऐसा कार्य कीजिये, जिससे आपकी बात भी सत्य हो और मेरी इच्छा भी पूरी हो जाय॥१०५॥

चम्पकहट्टमें वास हेतु प्रार्थना—

गङ्गापारे चम्पहट्ट स्थान मनोहर।
सेइ स्थाने थाक तुमि दु' एक वत्सर॥१०६॥

गङ्गाके उस पार चम्पकहट्ट नामक एक मनोहर स्थान है। अन्ततः आप वहाँपर एक-दो वर्ष वास कीजिये॥१०६॥

मम इच्छामते आमि तथा ना जाइब।
तव इच्छा ह'ले तव चरण हेरिब॥"१०७॥

मैं अपनी इच्छासे कभी भी वहाँ नहीं आऊँगा, यदि कभी आपकी इच्छा होगी, तभी मैं वहाँ आकर आपके चरणकमलोंका दर्शन करूँगा॥१०७॥

सदैन्य प्रार्थना सुनकर श्रीजयदेव कवि द्वारा उनकी प्रशंसा—

राजार वचन शुनि' महा कविवर।
सम्मत हइया बले वचन सत्वर॥१०८॥

'यद्यपि विषयी तुमि, ए राज्य तोमार।
कृष्णभक्त तुमि, तव नाहिक संसार॥१०९॥

राजाकी बात सुनकर महाकवि जयदेवने अपनी सहमति देते हुए जल्दीसे कहा—यद्यपि आप विषयी (राजा) हैं और यह राज्य आपका है। तथापि आप कृष्णभक्त हैं तथा संसारके बन्धनमें बँधे हुए नहीं हैं॥१०८-१०९॥

परीक्षा करिते आमि विषयी बलिया।
सम्भाषिनु, तबु तुमि सहिले शुनिया॥११०॥

मैंने आपकी परीक्षा लेनेके लिए ही आपको विषयी कहकर सम्बोधन किया था, परन्तु राजा होनेपर भी आपने मेरी बातको सहन कर लिया॥११०॥

श्रीकृष्णभक्तका स्वाभाविक गुण—

अतएव जानिलाम, तुमि कृष्णभक्त।
विषय लइया फिर हये अनासक्त॥१११॥

अतएव मैं समझ गया हूँ कि आप शुद्ध कृष्णभक्त हैं। अनासक्त होकर विषयोंमें रहते हैं॥१११॥

वाञ्छाकल्पतरु श्रीजयदेव द्वारा चम्पकहट्टमें वास करने हेतु स्वीकृति प्रदान—

चम्पकहट्टेते आमि किछुदिन र'ब।
गोपने आसिबे तुमि छाड़िया वैभव॥११२॥

मैं कुछ दिन चम्पकहट्टमें वास करूँगा, आप अपने वैभवको छोड़कर गुप्त रूपसे वहाँपर आ सकते हैं॥११२॥

हृष्टचित्त ह'ये राजा अमात्यद्वाराय।
चम्पकहट्टेते गृह निर्माण कराय॥११३॥

अत्यधिक प्रसन्न होकर राजाने अपने मन्त्रियोंके माध्यमसे चम्पकहट्टमें श्रीजयदेवके वासस्थान योग्य एक घरका निर्माण करवाया॥११३॥

कवि जयदेव द्वारा रागमार्गसे श्रीकृष्णभजन—

तथा जयदेव कवि रहे दिनकत।
श्रीकृष्णभजन करे रागमार्ग मत॥११४॥

वहाँपर श्रीजयदेव कविने रागमार्गके मतानुसार श्रीकृष्णका भजन करते हुए कुछ समय तक वास किया॥११४॥

पद्मावती देवी आने चम्पकेर भार।
जयदेव पूजे कृष्ण नन्देर कुमार॥११५॥

श्रीपद्मावतीदेवी बहुत सारे चम्पकके पुष्पोंका चयन करके ले आती और श्रीजयदेव उन पुष्पोंके द्वारा श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णकी आराधना करते थे॥११५॥

प्रेमपूर्वक आराधनाके फलस्वरूप श्रीकृष्णका गौररूपमें दर्शन—

महाप्रेमे जयदेव करय पूजन।
देखिल, श्रीकृष्ण हैल चम्पकवरण॥११६॥

श्रीजयदेव अत्यधिक प्रेमपूर्वक आराधना करते थे। एक दिन उन्होंने श्रीकृष्णको चम्पक पुष्प जैसे वर्णको धारण किये हुए देखा॥११६॥

पुरटसुन्दर कान्ति अति मनोहर।
कोटिचन्द्र निन्दि' मुख परम सुन्दर॥११७॥

उनकी तप्त काञ्चन जैसी सुन्दर कान्ति बहुत मनोहर थी तथा उनका अत्यधिक सुन्दर मुखकमल करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमाओंकी सुन्दरताको भी लज्जित कर रहा था॥११७॥

चाँचर-चिकुर शोभे गले फुलमाला।
दीर्घबाहु रूपे आलो करे पर्णशाला॥११८॥

उनके केश घुँघराले थे और गलेमें फूलोंसे बनी एक माला शोभा पा रही थी। उनके हाथ बहुत लम्बे थे तथा उनके रूपकी छटा श्रीजयदेवकी पर्णकुटीरको आलोकित कर रही थी॥११८॥

श्रीजयदेव और पद्मावतीका मूर्च्छित होना—

देखिया गौराङ्ग-रूप महाकविवर।
प्रेमे मूर्च्छा जाय चक्षे अश्रु झर झर॥११९॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रूपको देखकर महाकविवर प्रेमसे मूर्च्छित हो गये तथा उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी॥११९॥

पद्मावती देवी सेइ रूप निरखिया।
हइल चैतन्यहीन भूमेते पड़िया॥१२०॥

श्रीपद्मावतीदेवी भी प्रभुके उस रूपके दर्शन करके मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी॥१२०॥

दोनोंके प्रति श्रीमन् महाप्रभुके कृपाशीर्वादरूपी वचन—

पद्महस्त दिया प्रभु तोले दुइ जने।
कृपा करि' बले तबे अमिय–वचने॥१२१॥

श्रीमन् महाप्रभुने अपने हस्तकमलोंसे उन दोनोंको उठाया तथा कृपा करके मधुर वचन बोले— ॥१२१॥

तुमि दोंहे मम भक्त परम उदार।
दरशन दिते इच्छा हइल आमार॥१२२॥

तुम दोनों मेरे भक्त हो तथा बहुत उदार स्वभाववाले हो, इसलिए मेरे मनमें तुम्हें दर्शन देनेकी इच्छा हुई॥१२२॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा अपने भावी अवतारकी सूचना—

अति अल्पदिने एइ नदीया–नगरे।
जनम लइब आमि शचीर उदरे॥१२३॥

थोड़े ही दिनोंमें मैं इस नदियामें माता शचीके गर्भसे जन्म ग्रहण करूँगा॥१२३॥

सर्व अवतारेर सकल भक्त–सने।
श्रीकृष्ण–कीर्त्तने वितरिब प्रेमधने॥१२४॥

सभी अवतारोंके भक्तोंको अपने साथ लेकर श्रीकृष्ण–कीर्त्तनके माध्यमसे प्रेमरूपी धनका वितरण करूँगा॥१२४॥

चौबीश वत्सरे आमि करिया संन्यास।
करिब अवश्य नीलाचलेते वास॥१२५॥

चौबीस वर्षकी आयु होनेपर मैं संन्यास ग्रहण करूँगा और अवश्य ही नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में वास करूँगा॥१२५॥

तथा भक्तगण–सङ्गे महाप्रेमावेशे।
श्रीगीतगोविन्द आस्वादिब अवशेषे॥१२६॥

अपनी प्रकटलीलाके अन्तिम चरणमें मैं जगन्नाथ–पुरीमें भक्तोंके साथ अत्यधिक प्रेमाविष्ट होकर श्रीगीतगोविन्दका आस्वादन करूँगा॥१२६॥

श्रीमन् महाप्रभुकी अति प्रिय वस्तु श्रीजयदेव कवि विरचित श्रीगीतगोविन्द—

तव विरचित गीतगोविन्द आमार।
अतिशय प्रियवस्तु कहिलाम सार॥१२७॥

हे जयदेव! मैं संक्षेपमें ही तुम्हें अपने मनकी बात बता रहा हूँ कि तुम्हारे द्वारा विरचित श्रीगीतगोविन्द मुझे बहुत ही प्रिय है॥१२७॥

श्रीजयदेव और पद्मावतीके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका कृपाशीर्वाद-रूपी वर-प्रदान—

एइ नवद्वीपधाम परम चिन्मय।
देहान्ते आसिबे हेथा कहिनु निश्चय॥१२८॥

यह श्रीनवद्वीपधाम परम चिन्मय स्थान है। तुम इस देहको त्यागकर अपने अगले जन्ममें अवश्य ही यहाँपर जन्म ग्रहण करोगे॥१२८॥

स्वतन्त्र इच्छामय श्रीमन् महाप्रभु द्वारा दोनोंको नीलाचल जानेका आदेश—

एबे तुमि दोंहे जाओ यथा नीलाचल।
जगन्नाथे सेवो गिया पाबे प्रेमफल॥१२९॥

अभी तुम दोनों नीलाचल जाकर भगवान् श्रीजगन्नाथकी सेवा करो, तुम्हें अवश्य ही प्रेमफलकी प्राप्ति होगी॥१२९॥

एत बलि' गौरचन्द्र हैल अदर्शन।
प्रभुर विच्छेदे मूर्छा हय दुइजन॥१३०॥

इतना कहकर श्रीगौरचन्द्र तो अन्तर्धान हो गये परन्तु वे दोनों श्रीमन् महाप्रभुके विरहमें मूर्च्छित हो गये॥१३०॥

श्रीमन् महाप्रभुके अन्तर्धान होनेसे दोनोंकी दैन्यपूर्ण उक्ति—

मूर्छाशेषे अनर्गल काँदिते लागिल।
काँदिते काँदिते सब निवेदन कैल॥१३१॥

"हाय किबा रूप मोरा देखिनु नयने।
केमने बाँचिबो एबे ताँ'र अदर्शने॥१३२॥

चेतनता प्राप्त होनेपर श्रीमन् महाप्रभुके विरहमें आतुर होकर निरन्तर विलाप करते हुए निवेदन करने लगे—हाय! हाय! जिस रूपको एकबार हमने अपनी आँखोंसे देखा है, उसके दर्शन प्राप्त नहीं होनेपर अब हम किस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करेंगे?॥१३१-१३२॥

श्रीमन् महाप्रभुके आदेशसे दोनोंके मनमें उथल-पुथल—

नदीया छाड़िते प्रभु केन आज्ञा कैल।
बुझि एइ धामे किछु अपराध हैल॥१३३॥

श्रीमन् महाप्रभुने हमें नदिया छोड़नेकी आज्ञा क्यों दी है? लगता है कि इस धामके प्रति हमारा कोई अपराध हो गया है॥१३३॥

एइ नवद्वीप-धाम परम चिन्मय।
छाड़िते मानस एबे विकलित हय॥१३४॥

यह श्रीनवद्वीपधाम परम चिन्मय स्थान है। मनमें इसे छोड़नेका विचार आते ही जब हृदय व्याकुल हो जाता है, तब इस स्थानको छोड़नेपर हमारी कैसी अवस्था होगी? ॥१३४॥

श्रीनवद्वीपधामके प्रति उनकी निष्ठा—

भाल हैत नवद्वीपे पशु–पक्षी ह'ये।
थाकिताम चिरदिन धामचिन्ता ल'ये ॥१३५॥

(इस धामको छोड़नेकी अपेक्षा हम अपने इस शरीरको ही छोड़कर) यदि श्रीनवद्वीपमें पशु–पक्षी बनकर ही धामकी स्मरण करते–करते चिरदिन वास करते, तो अच्छा होता॥१३५॥

पराण छाड़िते पारि, तबु एइ धाम।
छाड़िते ना पारि, एइ गूढ़ मनस्काम॥१३६॥

हम अपने प्राणोंको तो छोड़ सकते हैं, किन्तु इस धामको नहीं छोड़ सकते, यही हमारा दृढ़ निश्चय है॥१३६॥

उनके द्वारा श्रीमन् महाप्रभुके चरणकमलोंमें निवेदन—

ओहे प्रभु, श्रीगौराङ्ग कृपा वितरिया।
राख आमा दोंहे हेथा श्रीचरण दिया॥"१३७॥

हे श्रीगौराङ्ग महाप्रभु! कृपा करके हम दोनोंको यहींपर अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थान दीजिये॥१३७॥

आकाशवाणी द्वारा पुनः भगवान्‌का आदेश—

बलिते बलिते दोंहे काँदे उच्चराय।
दैववाणी सेइक्षणे शुनिवारे पाय॥१३८॥

ऐसा कहते-कहते जब दोनों उच्च स्वरसे क्रन्दन कर रहे थे, तब उसी समय उन्होंने एक आकाशवाणी सुनी॥१३८॥

आकाशवाणीके माध्यमसे भगवान् द्वारा उन्हें सान्त्वना प्रदान—

"दुःख नाहि कर दोंहे जाओ नीलाचल।
दुइ कथा ह'बे, चित्त ना कर चञ्चल॥१३९॥

तुम दोनों दुःख मत करो, नीलाचल जाओ। वहाँ जानेपर दो कार्य सम्पन्न होंगे। इसलिए तुम अपने चित्तको चञ्चल मत करो॥१३९॥

श्रीनवद्वीपधाममें वास करनेपर भी श्रीजगन्नाथपुरी जानेकी अभिलाषाका फल—

किछुदिन पूर्वे दोंहे करिले मानस।
नीलाचले वास करि' कतक दिवस॥१४०॥

कुछ दिन पहले ही तुम दोनोंने सोचा था कि कुछ दिन तक नीलाचलमें वास करोगे॥१४०॥

भगवान्‌की भी अपने भक्तोंका दर्शन करनेकी अभिलाषा—

सेइ वाञ्छा जगद्वन्धु पूराइल तव।
जगन्नाथ चाहे तव दर्शन सम्भव॥१४१॥

जगत्-वासियोंके परम बन्धु श्रीजगन्नाथने तुम्हारी उस इच्छाको पूर्ण किया है और साथ ही जगन्नाथ भी तुम्हें देखना चाहते हैं॥१४१॥

जगन्नाथे तुषि' पुनः छाड़िया शरीर।
नवद्वीपे दुइजने नित्य ह'बे स्थिर॥"१४२॥

श्रीजगन्नाथको प्रसन्न करनेके उपरान्त तुम दोनों शरीर छोड़कर अपने अगले जन्ममें पुनः इस नवद्वीपमें आकर वास करोगे॥१४२॥

श्रीजयदेव और पद्मावतीका नीलाचलकी ओर प्रस्थान—

दैववाणी शुनि' दोंहे चले ततक्षण।
पाछे फिरि' नवद्वीप करेन दर्शन॥१४३॥

आकाशवाणी सुनकर दोनों उसी समय श्रीजगन्नाथ पुरीके लिए चल पड़े और पीछे मुड़-मुड़कर नवद्वीपके दर्शन करने लगे॥१४३॥

नवद्वीपवासियोंके चरणकमलोंमें प्रार्थना—

छल छल करे नेत्र, जलधारा बहे।
नवद्वीपवासीगणे दैन्यवाक्य कहे॥१४४॥

"तोमरा करिया कृपा एइ दुइजने।
अपराध करियाछि करह मार्जने॥"१४५॥

उनकी आँखें छल-छला रही थीं और उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बह रही थी। वे श्रीनवद्वीप-वासियोंको देखकर दीनतापूर्वक कहने लगे—आप सभी हम दोनोंपर कृपा कीजिये तथा हमारे द्वारा किये गये अपराधोंको क्षमा कीजिये॥१४४-१४५॥

अष्टदल पद्मसम नवद्वीप भाय।
देखिते देखिते दोंहे कतदूरे जाय॥१४६॥

आठ पंखुड़ियोंवाले कमलके पुष्पकी भाँति दिखनेवाले श्रीनवद्वीपधामको देखते-देखते वे बहुत दूर पहुँच गये॥१४६॥

दूरे गिया नवद्वीप नाहि देखे आर।
काँदिते काँदिते गौरभूमि हय पार॥१४७॥

कतदिने नीलाचले पौंछिया दु'जने।
जगन्नाथ दरशन कैल हृष्टमने॥१४८॥

बहुत दूर जानेपर अब वे श्रीनवद्वीपको नहीं देख पा रहे थे, रोते-रोते गौड़भूमिको पार करके कुछ ही दिनोंमें दोनों नीलाचल पहुँचे और प्रसन्न चित्तसे भगवान् श्रीजगन्नाथका दर्शन करने लगे॥१४७-१४८॥

ओहे जीव! एइ जयदेव-स्थान हय।
उच्चभूमि मात्र आछे वृद्धलोके कय॥१४९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! वृद्धलोग इसी उच्चभूमिको ही श्रीजयदेवका स्थान बतलाते हैं॥१४९॥

श्रीजीव गोस्वामी द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुसे प्रार्थना—

जयदेव-स्थान देखि' 'श्रीजीव' तखन।
प्रेमे गड़ागड़ि जाय करये रोदन॥१५०॥

श्रीजयदेवके स्थानको देखकर श्रीजीव प्रेमसे उस स्थानकी रजमें रोते-रोते लोट-पोट होने लगे॥१५०॥

धन्य जयदेव कवि, धन्य पद्मावती।
श्रीगीतगोविन्द धन्य, धन्य कृष्णरति॥१५१॥

श्रीजीव कहने लगे—धन्य हैं श्रीजयदेव कवि! धन्य हैं श्रीपद्मावतीदेवी! धन्य हैं श्रीगीतगोविन्द तथा धन्य हैं श्रीकृष्णरति॥१५१॥

जयदेव भोग कैल जेइ प्रेमसिन्धु।
कृपा करि' देह मोरे तार एकबिन्दु॥१५२॥

हे प्रभो! श्रीजयदेवको जिस प्रेमरूपी सिन्धुकी प्राप्ति हुई थी, कृपा करके मुझे उस सिन्धुके एक बिन्दुका पान कराइये॥१५२॥

एइ कथा बलि 'जीव' धरणी लोटाय।
नित्यानन्द–श्रीचरणे गड़ागड़ि जाय॥१५३॥

ऐसा कहकर श्रीजीव श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरण-कमलोंकी रजमें लोट-पोट होने लगे॥१५३॥

सेइ रात्र सबे रय वाणीनाथ–घरे।
वंश–सह वाणी नित्यानन्द–सेवा करे॥१५४॥

उस रात वे सभी लोग श्रीवाणीनाथके घरपर ही रहे। अपने पूरे परिवार सहित श्रीवाणीनाथने श्रीनित्यानन्द प्रभुकी सेवा की॥१५४॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट–प्रार्थना—

निताइ–जाह्नवा–पदछाया आश जार।
नदीया–माहात्म्य गाय अकिञ्चन छार॥१५५॥

श्रीनित्यान्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके चरण–कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे दीन–हीन–अकिञ्चन भक्तिविनोद द्वारा नदियाके माहात्म्यका गान किया जा रहा है॥१५५॥

एकादश अध्याय समाप्त।

द्वादश अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय श्रीचैतन्यचन्द, जय प्रभु नित्यानन्द,
जयाद्वैत जय गदाधर।
श्रीवासादि भक्त जय, जय जगन्नाथालय,
जय नवद्वीप धामवर॥१॥

श्रीचैतन्यचन्द्रकी जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो। श्रीवास आदि भक्तोंकी जय हो। श्रीजगन्नाथ मिश्रके भवनकी जय हो। सर्वश्रेष्ठ धाम श्रीनवद्वीपकी जय हो॥१॥

प्रभात हइल रात्र, भक्तगण तुले गात्र,
श्रीगौर–निताइचाँदे डाके।
भक्तसह नित्यानन्द, चले भजि' परानन्द,
चम्पाहट्ट पश्चातेते राखे॥२॥

प्रभातके समय उठकर सभी भक्त श्रीगौर–निताइका नाम प्रेमसे उच्चारण करने लगे। भक्तों

सहित श्रीनित्यानन्द प्रभु चम्पकहट्टसे परमानन्दित होकर कीर्त्तन करते हुए अग्रसर होने लगे॥२॥

श्रीद्विजवाणीनाथका मनोऽभीष्ट—

तथा हैते वाणीनाथ, चले नित्यानन्द–साथ,
बले,—"हेन दिन कबे पाब।
निताइचाँदेर सङ्गे, परिक्रमा करि' रङ्गे,
मायापुरे प्रभु–गृहे जाब॥"३॥

चम्पकहट्टसे श्रीवाणीनाथ भी श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ चलने लगे तथा मन–ही–मन कहने लगे कि क्या मेरे जीवनमें कभी ऐसा दिन आयेगा कि मैं भी श्रीनिताइचाँदके साथ आनन्दित होकर परिक्रमा करते–करते मायापुर स्थित श्रीमन् महाप्रभुके घरपर जाऊँगा? ॥३॥

रातुपुर (श्रीऋतुद्वीप)

देखिते देखिते तबे, रातुपुर चले सबे,
देखि' सेइ नगरेर शोभा।
प्रभु नित्यानन्द बले, ऋतुद्वीपे आइले च'ले,
एइ स्थान अति मनोलोभा॥४॥

देखते–ही–देखते वे रातुपुर पहुँचे। उस नगरकी शोभा देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा कि अब हमलोग इस परम आकर्षक ऋतुद्वीपमें पहुँच गये हैं॥४॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा ऋतुद्वीपकी शोभाका वर्णन—

वृक्ष सब नतशिर, पवन बहये धीर,
कुसुम फुटेछे चारिभित।
भृङ्गेर झङ्कार रव, कुसुमेर गन्धासव,
माताय पथिकगणचित्त॥५॥

यहाँपर सभी वृक्ष अपना मस्तक झुकाकर खड़े हुए हैं, पवन धीरे–धीरे प्रवाहित हो रही है और चारों दिशाओंमें पुष्प प्रस्फुटित हो रहे हैं। भ्रमरकी गुञ्जार और पुष्पोंकी अत्यधिक सुगन्ध मार्गमें आने–जानेवाले पथिकोंके चित्तको मदमस्त बना रही है॥५॥

साक्षात् बलदेवतत्त्व श्रीनित्यानन्द प्रभुका श्रीबलदेवके भावमें आविष्ट होना—

बलिते बलिते राय, हैल पागलेर प्राय,
बले'—''शिङ्गा आन शीघ्रगति।

वत्सगण जाय दूरे, कानाइ निद्रितपुरे,
एखन ना आइसे शिशुमति॥६॥

ऐसा कहते-कहते श्रीनित्यानन्द प्रभु भावाविष्ट होकर पागल व्यक्तिकी भाँति कहने लगे—जल्दीसे मेरा शिङ्गा (सींगसे बना बजानेका एक वाद्य यन्त्र) लाओ। बछड़े दूर चले जा रहे हैं। कानाइ (कृष्ण) अभी तक घरपर सो रहा है। बालक-बुद्धिवाला कृष्ण अभी तक नहीं आया॥६॥

कोथाय सुबल दाम, आमि एका बलराम,
गोचारणे जाइते ना पारि।"
'कानाइ' 'कानाइ' बलि', डाक छाड़े महाबली,
लाफ मारे हात दुइ चारि॥७॥

सुबल! तुम कहाँ हो? तथा श्रीदाम! तुम कहाँपर हो? मैं अकेला गोचारणमें नहीं जा सकता। बहुत जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर "कानाइ! कानाइ!" कहते-कहते अत्यन्त बलवान श्रीनित्यानन्द प्रभु दो-चार हाथ ऊँची-ऊँची छलाँगें लगाने लगे॥७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीचरणकमलोंमें भक्तों द्वारा निवेदन—

से भाव दर्शन करि', भक्तगण त्वरा करि',
निवेदय निता'येर पाय।
ओहे प्रभु नित्यानन्द, भाइ तव गौरचन्द्र,
नाहि एबे आछेन हेथाय॥८॥

उनके उस भावके दर्शन करके भक्तोंने जल्दीसे श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें निवेदन किया—हे नित्यानन्द प्रभो! आपके भाई श्रीगौरचन्द्र इस समय यहाँपर नहीं हैं॥८॥

श्रीगौर-विरहमें श्रीनित्यानन्द प्रभुकी भावावस्था—

संन्यास करिया हरि, गेल नीलाचलोपरि,
आमादेर काङ्गाल करिया।"
ताहा शुनि' नित्यानन्द, हइलेन निरानन्द,
काँदि लोटे भूमेते पड़िया॥९॥

हमें कङ्गाल बनाकर वे श्रीगौरहरि इस समय संन्यास लेकर नीलाचल चले गये हैं। ऐसा सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु दुःखी होकर रोते-रोते भूमिपर लोट-पोट होने लगे॥९॥

"कि दुःखे कानाइ भाइ, आमा सबे छाड़ि' जाइ,
संन्यासी हइल नीलाचले।"
ए जीवन ना राखिब, यमुनाय झाँप दिब,
बलि' अचेतन सेइ स्थले॥१०॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु कहने लगे—किस दुःखके कारण भैया कानाइ (श्रीगौरहरि) हम सबको छोड़कर और संन्यासी बनकर नीलाचल चले गये। उनके बिना मैं भी जीवित नहीं रहूँगा, यमुनामें कूद जाऊँगा। इतना कहते-कहते मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥१०॥

नित्यानन्दे महाभाव, करि' सबे अनुभव,
हरिनाम सङ्कीर्त्तन करे।
चारिदण्ड दिन हैल, नित्यानन्द ना उठिल,
भक्त सब गौर-गीत धरे॥११॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी महाभाववाली अवस्थाका अनुभव करके सभी हरिनाम-सङ्कीर्त्तन करने लगे। लगभग चार दण्ड (एक घण्टा छत्तीस मिनट) पर्यन्त भी जब श्रीनित्यानन्द प्रभु नहीं उठे, तब

सभी भक्तोंने मिलकर गौरनामका गान करना प्रारम्भ कर दिया॥११॥

ऋतुद्वीप, व्रज स्थित श्रीराधाकुण्ड

गौराङ्गेर नाम शुनि', निताइ उठे अमनि,
बले—एइ राधाकुण्ड–स्थान।
हेथा भक्तसङ्गे करि', अपराह्ले गौरहरि,
करितेन कीर्त्तन–विधान॥१२॥

श्रीगौरहरिका नाम श्रवण करके श्रीनित्यानन्द प्रभु उठ खड़े हुए तथा कहने लगे—यह राधाकुण्ड है। यहाँपर दोपहरमें श्रीगौरहरि भक्तोंके साथ कीर्त्तन करते थे॥१२॥

अभिन्न व्रजमण्डल नवद्वीपमें श्रीश्यामकुण्डके दर्शन—

देख श्यामकुण्ड–शोभा, जगज्जन–मनोलोभा,
सखीगण–कुञ्ज नाना स्थाने।
हेथा अपराह्ले गोरा, सङ्कीर्त्तने ह'ये भोरा,
तुषिलेन सबे प्रेमदाने॥१३॥

जगत्–वासियोंके मनको आकर्षित करनेवाले इस श्यामकुण्डकी शोभाका दर्शन करो। इसके

आस-पासके अनेक स्थानोंपर सखियोंके कुञ्ज हैं। यहाँपर दोपहरके समय आकर श्रीगौरहरि सङ्कीर्त्तनमें विभोर होकर सबको प्रेमदान देकर आनन्दित करते थे॥१३॥

श्रीऋतुद्वीप (राधाकुण्ड) की सर्वश्रेष्ठता तथा ऋतुद्वीपमें वास करनेका फल—

ए स्थान समान भाइ, त्रिजगते नाहि पाइ,
भक्तेर भजन-स्थान जान।
हेथाय बसति जाँ'र, प्रेमधन लाभ ताँ'र,
सुशीतल हय ताँ'र प्राण॥१४॥

हे भाई! ऐसा स्थान त्रिभुवनमें कहीं नहीं है। यहाँपर भक्तजन भगवान्‌का भजन करते हैं। जो व्यक्ति इस स्थानपर वास करता है, उसे प्रेमधनकी प्राप्ति होती है तथा उसका हृदय सुशीतल हो जाता है॥१४॥

से-दिन से-स्थाने थाकि', श्रीगौराङ्ग-नाम डाकि',
प्रेमे मग्न सर्व भक्तगण।
ऋतुद्वीपे सबे बसि', भजे श्रीचैतन्य-शशी,
रात्रदिन करिल यापन॥१५॥

उस दिन उसी स्थानपर रहकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका नाम करते-करते सभी भक्त प्रेममें निमग्न हो गये, ऋतुद्वीपमें ही सभीने श्रीचैतन्यचन्द्रका भजन करते-करते रात-दिन व्यतीत किया॥१५॥

नाचिते नाचिते तबे, नित्यानन्द चले जबे,
श्रीविद्यानगरे उपनीत।
विद्यानगरेर शोभा, मुनिजन-मनोलोभा,
भक्तगण देखि' प्रफुल्लित॥१६॥

अगले दिन नृत्य करते-करते श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीविद्यानगर पहुँचे। मुनियोंके भी मनको आकर्षित करनेवाले उस विद्यानगरकी शोभा देखकर सभी भक्त प्रफुल्लित हो उठे॥१६॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा-पद, जे जनार सुसम्पद,
से भक्तिविनोद अकिञ्चन।
नदीया-माहात्म्य गाय, धरि' भक्तजन पाय,
याचे मात्र कृष्णभक्तिधन॥१७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीजाह्नवादेवीके चरणकमल ही जिसकी एकमात्र सम्पत्ति है, उसी अकिञ्चन

भक्तिविनोद द्वारा भक्तोंके श्रीचरणकमलोंको धारणकर इस नदियाके माहात्म्यका गान करते हुए केवलमात्र श्रीकृष्णभक्तिरूपी धनकी भिक्षा की जा रही है॥१७॥

द्वादश अध्याय समाप्त।

त्रयोदश अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय गौर–नित्यानन्दाद्वैत गदाधर।
श्रीवास श्रीनवद्वीप कीर्त्तनसागर॥१॥

श्रीगौरहरिकी जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो। श्रीवास पण्डितकी जय हो। कीर्त्तनके समुद्रस्वरूप श्रीनवद्वीपधामकी जय हो॥१॥

ऋतुद्वीपके अन्तर्गत स्थित श्रीविद्यानगरके इतिहासका वर्णन

श्रीविद्यानगरे आसि' नित्यानन्दराय।
विद्यानगरेर तत्त्व 'श्रीजीवे' शिखाय॥२॥

श्रीविद्यानगरमें आकर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीजीवको वहाँके तत्त्वके विषयमें बताने लगे॥२॥

नित्यधाम नवद्वीप प्रलय–समये।
अष्टदल पद्मरूपे थाके शुद्ध ह'ये॥३॥

नित्यधाम श्रीनवद्वीप प्रलयके समय भी आठ पंखुड़ियोंवाले कमलपुष्पके रूपमें शुद्ध अर्थात् पवित्र रहता है[१] ॥३॥

सर्व अवतार आर धन्यजीव जत।
कमलेर एकदेशे थाके कत शत॥४॥

भगवान्‌के सभी अवतार तथा अनेकों सौभाग्यशाली जीव उस कमलके एक भागमें ही रहते हैं॥४॥

प्रलयके समय श्रीमत्स्य भगवान् सहित वेदोंका विद्यानगरमें आगमन—

ऋतुद्वीप–अन्तर्गत ए विद्यानगरे।
मत्स्यरूपी भगवान् सर्ववेद धरे॥५॥

ऋतुद्वीपके अन्तर्गत इसी विद्यानगरमें भगवान्‌ने अपने मत्स्य अवतारके समय सभी वेदोंको लाकर रखा था॥५॥

'श्रीविद्यानगर' नाम पड़नेका कारण—

सर्व विद्या थाके वेद आश्रय करिया।
श्रीविद्यानगर–नाम एइ स्थाने दिया॥६॥

---

[१] जैसे कीचड़में रहनेपर भी कमल शुद्ध रहता है, उसी प्रकार प्रलयके समय भी श्रीनवद्वीपधाम शुद्ध ही रहता है।

क्योंकि सभी प्रकारकी विद्याएँ वेदोंका आश्रय करके इस स्थानपर रहती हैं, इसलिए यह स्थान श्रीविद्यानगरके नामसे प्रसिद्ध हो गया॥६॥

सृष्टिकर्त्ता, लोकपितामह ब्रह्माका भयभीत होना—

पुनः जबे सृष्टि-मुखे ब्रह्मा महाशय।
अति भीत हन देखि' सकल प्रलय॥७॥

जब ब्रह्मा पुनः सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए, उस समय वे प्रलयको देखकर बहुत भयभीत हो गये॥७॥

शुद्धा सरस्वतीकी कृपासे श्रीब्रह्मा द्वारा भगवान्‌की स्तुति—

सेइकाले प्रभु-कृपा हय ताँर प्रति।
एइ स्थान पे'ये भगवाने करे स्तुति॥८॥

उन्हें भयभीत देखकर भगवान्‌ने उनपर कृपा की, जिसके फलस्वरूप उन्होंने (ब्रह्माने) यहींपर भगवान्‌की स्तुति की॥८॥

मुख खुलिवार काले देवी सरस्वती।
ब्रह्माजिह्वा हैते जन्मे अति रूपवती॥९॥

जैसे ही ब्रह्माने स्तुति करनेके लिए अपना मुख खोला, उसी समय उनकी जिह्वासे बहुत रूपवती सरस्वतीदेवी आविर्भूत हुई॥९॥

सरस्वती–शक्ति पे'ये देव–चतुर्मुख।
श्रीकृष्णे करेन स्तव पे'ये बड़ सुख॥१०॥

सरस्वतीदेवी द्वारा प्रदानकी गयी शक्तिसे श्रीचतुर्मुख ब्रह्माने अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णका स्तव किया॥१०॥

सृष्टिके प्रारम्भमें चौदह भुवनोंमें मायादेवीका वास—

सृष्टि जबे हय माया सर्वदिक् घेरि'।
विरजार पारे थाके गुणत्रय धरि'॥११॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! जिस समय सृष्टि होती है, उस समय मायादेवी तीनों गुणों (तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण) के साथ विरजाके दूसरी तरफ जड़जगत्‌में वास करती है॥११॥

माया (अविद्या) ग्रस्त संसारमें परदुःखदुःखी ऋषियों द्वारा विद्याका प्रकाश—

माया–प्रकाशित विश्वे विद्यार प्रकाश।
करे ऋषिगण तबे करिया प्रयास॥१२॥

ऋषिलोग बहुत प्रयास करके माया द्वारा प्रकाशित उस विश्वमें विद्याको प्रकाशित करते हैं॥१२॥

एइ त' सारदापीठ करिया आश्रय।
ऋषिगण करे अविद्यार पराजय॥१३॥

इसी शारदापीठ (सरस्वतीदेवीके स्थान) का आश्रय करके ऋषिलोग अविद्याको पराजित करते हैं॥१३॥

ऋषियों द्वारा चौसठ प्रकारकी विद्यायोंका प्रचार-प्रसार—

चौषट्टि विद्यार पाठ ल'ये ऋषिगण।
धरातले स्थाने स्थाने करे विज्ञापन॥१४॥

चौसठ प्रकारकी विद्याओंको सीखकर ऋषिलोग पृथ्वीके अनेकानेक स्थानोंपर प्रचार करते हैं॥१४॥

जे जे ऋषि जे जे विद्या करे अध्ययन।
एइ पीठे से-सबार स्थान अनुक्षण॥१५॥

जो-जो ऋषि जिस-जिस विद्याका अध्ययन करना चाहता है, वह इस स्थानपर आकर अपनी इच्छानुरूप विद्या ग्रहण कर सकता है॥१५॥

रामायणकी प्राकट्य-स्थली—

श्रीबाल्मीकि काव्यरस एइ स्थाने पाय।
नारद-कृपाय तेंह आइल हेथाय॥१६॥

श्रीनारदकी कृपासे यहाँपर आकर श्रीबाल्मीकिको काव्यरस (रामायण) की प्राप्ति हुई थी॥१६॥

आयुर्वेद और धनुर्विद्याकी प्राकट्य-स्थली—

धन्वन्तरी आसि' हेथा आयुर्वेद पाय।
विश्वामित्र आदि धनुर्विद्या शिखि' जाय॥१७॥

धन्वन्तरीने भी यहींपर आयुर्वेदको प्राप्त किया और विश्वामित्र आदिने भी धनुर्विद्या यहींपर सीखी॥१७॥

वेद मन्त्र और तन्त्रकी प्राकट्य-स्थली—

शौनकादि ऋषिगण पड़े वेदमन्त्र।
देव-देव महादेव आलोचय तन्त्र॥१८॥

शौनक आदि ऋषियोंने वेदोंके मन्त्रोंका पाठ करना भी यहींपर सीखा और देवादिदेव महादेवने यहींपर तन्त्रका निरूपण किया॥१८॥

चारों वेदोंकी प्राकट्य-स्थली—

ब्रह्मा चारिमुख हैते वेद-चतुष्टय।
ऋषिगण-प्रार्थनाय करिल उदय॥१९॥

ऋषियोंकी प्रार्थनासे ब्रह्माने अपने चार मुखोंसे चार वेद यहींपर प्रकट किये॥१९॥

सांख्य और न्याय-तर्ककी प्राकट्य-स्थली—

कपिल रचिल सांख्य एइ स्थाने बसि'।
न्याय-तर्क प्रकाशिल श्रीगौतम ऋषि॥२०॥

इसी स्थानपर बैठकर ही कपिलने सांख्यकी रचना की तथा श्रीगौतमऋषिने न्याय और तर्कको प्रकाशित किया॥२०॥

वैशेषिक और योगशास्त्रकी प्राकट्य-स्थली—

वैशेषिक प्रकाशिल कण्भुक मुनि।
पातञ्जलि योगशास्त्र प्रकाशे आपनि॥२१॥

कण्भुक (कणाद) नामक मुनिने वैशेषिक और पातञ्जलिने योगशास्त्रको यहींपर प्रकाशित किया॥२१॥

मीमांसा-शास्त्र और पुराण आदिकी प्राकट्य-स्थली—

जैमिनि मीमांसा-शास्त्र करिल प्रकाश।
पुराणादि प्रकाशिल ऋषि वेदव्यास॥२२॥

इसी स्थानपर ही जैमिनिऋषिने मीमांसा-शास्त्र (पूर्व मीमांसा) तथा श्रीवेदव्यासने पुराण आदिको प्रकाशित किया॥२२॥

पञ्चरात्रकी प्राकट्य-स्थली

पञ्चरात्र नारदादि ऋषि पञ्चजन।
प्रकाशिया जीवगणे शिखाय साधन॥२३॥

नारद आदि पाँच ऋषियोंने यहींपर पञ्चरात्रको प्रकाशित करके जीवोंको साधनकी शिक्षा प्रदान की॥२३॥

उपनिषदों द्वारा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी आराधना—

एइ उपवने सर्व उपनिषद्गण।
बहुकाल श्रीगौराङ्ग करे आराधन॥२४॥

इसी उपवनमें निवासकर सभी उपनिषदोंने बहुत समय तक श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी आराधना की॥२४॥

उपनिषदोंके प्रति श्रीगौरहरिकी कृपा—

अलक्षये श्रीगौरहरि से-सबे कहिल।
निराकार-बुद्धि तव हृदय दूषिल॥२५॥

अलक्षित रूपसे श्रीगौरहरिने उन सबसे कहा कि निराकार (अर्थात् भगवान्का कोई आकार नहीं है तुम्हारी इस) बुद्धिने तुम्हारे हृदयको दूषित कर दिया है॥२५॥

तुमि सबे श्रुतिरूपे मोरे ना पाइबे।
आमार पार्षदरूपे जबे जन्म ल'बे॥२६॥

प्रकट–लीलाय तबे देखिबे आमाय।
मम गुण–कीर्त्तन करिबे उभराय॥२७॥

तुम सब श्रुतियोंके रूपमें मुझे प्राप्त नहीं कर पाओगे, किन्तु जब मेरे पार्षदोंके रूपमें जन्म ग्रहण करोगे, तब उस समय तुम मेरी प्रकटलीलामें मुझे देख पाओगे तथा दोनों (उपनिषद और श्रुति) मेरे गुणोंका कीर्त्तन करोगे॥२६–२७॥

ताहा शुनि' श्रुतिगण निस्तब्ध हइया।
गोपने आछिल हेथा काल अपेक्षिया॥२८॥

यह सुनकर श्रुतियाँ निस्तब्ध होकर गुप्त रूपसे समय (कलियुग) की अपेक्षा करते हुए यहींपर रहने लगीं॥२८॥

एइ धन्य कलियुग सर्वयुग–सार।
जाहाते हइल श्रीगौराङ्ग–अवतार॥२९॥

यह धन्य कलियुग अन्यान्य सभी युगोंका सार है, क्योंकि इसमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभु आविर्भूत हुए हैं॥२९॥

श्रीविद्यानगरमें बृहस्पतिका श्रीवासुदेव सार्वभौमके रूपमें प्राकट्य—

विद्यालीला करिबेन गौराङ्गसुन्दर।
गणसह बृहस्पति जन्मे अतःपर॥३०॥

इस स्थानपर श्रीगौराङ्गसुन्दर अपनी विद्यालीला करेंगे, ऐसा जानकर बृहस्पतिने अपने सभी परिकरोंके साथ यहाँपर जन्म ग्रहण किया॥३०॥

वासुदेव सार्वभौम सेइ बृहस्पति।
गौरङ्गे तुषिते यत्न करिलेन अति॥३१॥

श्रीवासुदेव सार्वभौम ही बृहस्पति हैं। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुको प्रसन्न करनेके लिए इन्होंने अत्यधिक प्रयास किया॥३१॥

बृहस्पतिका उदास होना—

प्रभु, मोर नवद्वीपे श्रीविद्या-विलास।
करिबेन जानि मने हइया उदास॥३२॥

श्रीबृहस्पति जानते थे कि मेरे प्रभु भूतलपर नवद्वीपमें विद्याविलासरूपी लीला करेंगे, इसलिए (क्या मैं स्वर्गमें ही पड़ा रहूँगा, ऐसा सोचकर) वे उदास हो गये॥३२॥

बृहस्पति द्वारा नगण्य स्वर्गसुखका परित्याग—

इन्द्रसभा परिहरि' निज-गण ल'ये।
जन्मिलेन स्थाने स्थाने आनन्दित ह'ये॥३३॥

उन्होंने इन्द्रकी सभाका परित्यागकर अपने परिकरों सहित आनन्दित होकर विद्यानगरके आस-पास अनेक स्थानोंपर जन्म ग्रहण किया॥३३॥

श्रीवासुदेव सार्वभौम द्वारा विद्याका प्रचार—

एइ विद्यानगरीते करि' विद्यालय।
विद्या प्रचारिल सार्वभौम महाशय॥३४॥

इसी विद्यानगरमें एक विद्यालय बनाकर सार्वभौम महाशय विद्याका प्रचार करने लगे॥३४॥

पाछे विद्याजाले डु'बे हाराइ गौराङ्ग।
एइ मने करि' एक करिलेन रङ्ग॥३५॥

कुछ समयके बाद उन्होंने मनमें विचार किया कि कहीं मैं विद्याके जालमें पड़कर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुको न खो दूँ, इसलिए उन्होंने एक लीला की॥३५॥

श्रीमन् महाप्रभुके आविर्भावसे पहले ही श्रीसार्वभौमका नीलाचल प्रस्थान—

निज—शिष्यगणे राखि' नदिया—नगरे।
गौरजन्म—पूर्वे तेंह गेला देशान्तरे॥३६॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके आविर्भावसे पहले ही अपने शिष्योंको नदियामें ही छोड़कर, वे दूसरे स्थानपर चले गये॥३६॥

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका दृढ़विश्वास—

मने भावे यदि आमि हइ गौरदास।
कृपा करि' मोरे प्रभु लइबेन पाश॥३७॥

वे मन—ही—मन विचार करने लगे कि यदि मैं श्रीगौरहरिका दास हूँ तो वे अवश्य ही मुझपर कृपा करके मुझे अपना सङ्ग प्रदान करेंगे॥३७॥

एइ बलि सार्वभौम जाय नीलाचल।
मायावाद—शास्त्र तथा करिल प्रबल॥३८॥

ऐसा सोचकर सार्वभौम नीलाचल चले गये तथा वहाँपर जाकर उन्होंने मायावाद—शास्त्रके प्रभावका विस्तार किया॥३८॥

श्रीमन् महाप्रभुका विद्याविलास—

हेथा प्रभु गौरचन्द्र श्रीविद्या-विलासे।
सार्वभौम-शिष्यगणे जिने परिहासे॥३९॥

यहाँपर श्रीगौरचन्द्रने विद्याविलासके छलसे श्रीसार्वभौमके शिष्योंको हास-परिहासमें अर्थात् अनायास ही पराजित कर दिया॥३९॥

न्याय फाँकि करि प्रभु सकले हाराय।
कभु विद्यानगरेते आइसे गौरराय॥४०॥

कभी-कभी विद्यानगरमें आकर श्रीगौरहरि अपनी न्यायकी फाँकि अर्थात् न्यायके तर्कोंके द्वारा सभीको हरा देते थे॥४०॥

अध्यापकगण आर पड़ुयार गण।
पराजित ह'ये सबे करे पलायन॥४१॥

अध्यापक और विद्यार्थी श्रीगौरहरिसे पराजित होकर भाग जाते थे॥४१॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके विद्याविलास श्रवणका फल—

गौराङ्गेर विद्या-लीला अपूर्व कथन।
अविद्या छाड़ये ता'र, जे करे श्रवण॥४२॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी अद्भुत विद्यालीलाका जो कोई श्रवण करता है, उसे अविद्या छोड़कर भाग जाती है॥४२॥

शुनि' 'जीव' प्रेमानन्दे से वेदनगरे।
व्यासपीठे गड़ागड़ि जाय प्रेमभरे॥४३॥

श्रीजीव श्रीमन् महाप्रभुके विद्याविलासकी कथा सुनकर प्रेमानन्दमें भरकर उस वेदनगर (विद्यानगरका एक और नाम) में स्थित व्यासपीठमें प्रेमपूर्वक लोट-पोट होने लगे॥४३॥

श्रीजीव गोस्वामीका संशय—

नित्यानन्द-श्रीचरणे करे निवेदन।
आमार संशय छेद करह एखन॥४४॥

श्रीजीवने श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें निवेदन किया कि हे प्रभो! अब आप मेरे एक संशयका छेदन करें॥४४॥

सांख्यविद्या, तर्कविद्या अमङ्गलमय।
केमने ए नित्यधामे से-सकल रय॥४५॥

सांख्यविद्या और तर्कविद्या तो अमङ्गलस्वरूप हैं, तो फिर वे इस नित्यधाममें किस प्रकार अवस्थान करती हैं॥४५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुका उत्तर—

शुनि' प्रभु नित्यानन्द 'जीवे' देय कोल।
आदर करिया बले,—'हरि' 'हरि' बोल॥४६॥

ऐसा सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीजीवका आलिङ्गन किया और उन्हें स्नेहपूर्वक "हरि बोल, हरि बोल" कह कर उत्तर दिया—॥४६॥

श्रीविद्यानगरमें सभी प्रकारकी विद्याएँ भक्ति महादेवीकी दासियाँ—

प्रभुर पवित्र धामे नाहि अमङ्गल।
तर्क सांख्य स्वतः नहे हेथाय प्रबल॥४७॥

भक्तिर अधीन सब भक्तिदास्य करे।
कर्मदोषे दुष्ट जने विपर्यय धरे॥४८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! श्रीमन् महाप्रभुके इस पवित्र धाममें अमङ्गल हो ही नहीं सकता। यहाँपर तर्क और सांख्य अपने आपमें बलवान नहीं हैं, वे तो भक्तिके अधीन हैं और

भक्तिकी ही दासता करते हैं। केवल कर्मोंके दोषके कारण ही दुष्ट लोग इनका विपर्यय करते हैं॥४७–४८॥

भक्ति महादेवी हेथा, आर सब दास।
सकले करय भक्तिदेवीर प्रकाश॥४९॥

यहाँपर भक्ति महादेवी हैं और अन्य सब उनके दास हैं। तर्क, योग, सांख्य आदि भी भक्तिदेवीको ही प्रकाशित करते हैं॥४९॥

नवद्वीपमें नवधाभक्तिका अधिष्ठान—

नवद्वीपे नवविध भक्ति अधिष्ठान।
भक्तिरे सेवय सदा कर्म आर ज्ञान॥५०॥

नवद्वीपमें नवधाभक्तिका अधिष्ठान है। यहाँपर कर्म और ज्ञान सदैव भक्तिकी सेवा करते हैं॥५०॥

बहिर्मुख–जने शास्त्र देय दुष्टमति।
शिष्टजने सेइ शास्त्र देय कृष्णरति॥५१॥

शास्त्र भगवान्‌से बहिर्मुख व्यक्तिको दुर्बुद्धि प्रदान करते हैं और सज्जन व्यक्तिको कृष्णरतिरूप सुबुद्धि प्रदान करते हैं॥५१॥

प्रौढ़ामाया, विद्यानगरकी अधिष्ठात्री देवी—

प्रौढ़ामाया गौरदासी अधिष्ठात्री देवी।
सर्वयुगे एइ स्थाने थाके गौर सेवि'॥५२॥

श्रीगौरहरिकी दासी प्रौढ़ामाया यहाँकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे सभी युगोंमें इसी स्थानपर रहकर श्रीगौरहरिकी सेवा करती हैं॥५२॥

वैष्णव विद्वेषीकी गति—

अति कर्मदोष जा'र वैष्णवेते द्वेष।
ता'रे माया अन्ध करि' देय नाना क्लेश॥५३॥

महामायाके रूपमें यही प्रौढ़ामाया कुकर्म करनेवाले वैष्णव विद्वेषियोंको अपनी माया द्वारा अन्धा (ज्ञानान्ध) बनाकर उन्हें अनेक प्रकारसे कष्ट देती हैं॥५३॥

सर्वपाप सर्वकर्म हेथा हय क्षय।
प्रौढ़ामाया विद्यारूपे करे कर्म लय॥५४॥

प्रौढ़ामाया अपने विद्यारूप (शुद्धा सरस्वतीरूप) से सब प्रकारके पाप और कर्मोंको नष्ट कर देती है॥५४॥

किन्तु यदि श्रीवैष्णवे अपराध थाके।
तबे दूर करे तारे कर्मेर विपाके॥५५॥

किन्तु यदि कोई वैष्णवोंके प्रति अपराध करता है तो उसे उसके कर्मदोषके कारण अपनेसे दूर रखती है॥५५॥

धाममें वास करनेपर भी वैष्णव विद्वेषीके लिए प्रेमधनकी प्राप्ति असम्भव—

विद्या पड़ि' नदीयाय से-सब दुर्जन।
कभु नाहि पाय कृष्णपदे प्रेमधन॥५६॥

ऐसे दुर्जन व्यक्ति नदियामें विद्या उपार्जन करनेपर भी श्रीकृष्णके पादपद्मरूपी प्रेमधनको कभी भी प्राप्त नहीं कर पाते॥५६॥

विद्यार अविद्या लाभ करे सेइ सब।
नाहि देखे श्रीगौराङ्ग नदीया-वैभव॥५७॥

ऐसे व्यक्ति विद्याके स्थानपर अविद्याको ही प्राप्त करते हैं और श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके नदियारूपी वैभवको कदापि नहीं देख पाते॥५७॥

विद्याकी छाया अविद्या ही अमङ्गलमय—

अतएव विद्या नहे अमङ्गलमय।
विद्यार अविद्या छाया अमङ्गल हय॥५८॥

अतएव विद्या कभी भी अमङ्गलमय नहीं होती, बल्कि विद्याकी छाया अविद्या ही अमङ्गलमय होती है॥५८॥

श्रीजीवके प्रति श्रीनित्यानन्द प्रभुके कृपाशीर्वादरूपी वचन—

ए सब स्फुरिबे 'जीव' गौराङ्ग-कृपाय।
लिखिबे आपन शास्त्रे प्रभुर इच्छाय॥५९॥

हे जीव! श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी कृपासे ये सब तत्त्व तुम्हारे हृदयमें स्फुरित होंगे और तुम स्वयं श्रीमन् महाप्रभुकी इच्छानुसार इन सबका अपने शास्त्रोंमें वर्णन करोगे॥५९॥

तोमार द्वारा करिबेन शास्त्र-परकाश।
एबे चल जाइ मोरा जह्नुर आवास॥६०॥

श्रीमन् महाप्रभु तुम्हारे द्वारा शास्त्रोंको प्रकाशित करवायेंगे। चलो! अब हमलोग श्रीजह्नुमुनिके निवास स्थानपर चलें॥६०॥

जान्नगर (श्रीजह्नुद्वीप), व्रजका भद्रवन

बलिते बलिते सबे जान्नगर जाय।
जह्नु–तपोवन शोभा देखिवारे पाय॥६१॥

इस प्रकार कथोपकथन करते हुए सभी जान्नगर पहुँचकर, जह्नुमुनिके तपोवनकी शोभाको निहारने लगे॥६१॥

नित्यानन्द बले एइ जह्नुद्वीप–नाम।
भद्रवन–नामे ख्यात मनोहर धाम॥६२॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा कि इस परम मनोहर स्थानका नाम जह्नुद्वीप है। यह व्रजका प्रसिद्ध भद्रवन है॥६२॥

श्रीजह्नुमुनिकी तपस्या–स्थली—

एइ स्थाने 'जह्नुमुनि' तप आचरिल।
सुवर्ण प्रतिमा गौर दर्शन करिल॥६३॥

इसी स्थानपर जह्नुमुनिने तप किया था और स्वर्णवर्णकी अङ्गकान्तिवाले श्रीगौरहरिका दर्शन प्राप्त किया था॥६३॥

हेथा जह्नुमुनि वैसे सन्ध्या करिवारे।
भागीरथी–वेगे कोशाकुशी पड़े धारे॥६४॥

एक समय जह्नुमुनि यहाँपर सन्ध्या करनेके लिए बैठे ही थे कि अचानक उनका आचमन-पात्र भागीरथीके तेज प्रवाहमें बह गया॥६४॥

श्रीजह्नुमुनि द्वारा गङ्गाके सम्पूर्ण जलको पान करनेका कारण—

धारे पड़ि' कोशाकुशी भासिया चलिल।
गण्डुषे गङ्गार जल सब पान कैल॥६५॥

भगीरथ मने भावे कोथा गङ्गा गेल।
विह्वल हइया तबे भाविते लागिल॥६६॥

जह्नुमुनि पान कैल सब गङ्गाजल।
जानि' भगीरथ मने हइल विकल॥६७॥

भागीरथीके तेज प्रवाहमें आचमन-पात्रको बहता हुआ देखकर जह्नुमुनिने एक ही घूँटमें गङ्गाके पूरे जलका पान कर लिया। भगवती-गङ्गाकी धाराको अपने पीछे आती हुई न देखकर भगीरथ मन-ही-मन चिन्ता करने लगे कि गङ्गा कहाँ चली गयी? विह्वल होकर सोचते-सोचते उन्होंने निर्धारित किया कि जह्नुमुनिने ही सम्पूर्ण गङ्गाजलका पान कर लिया है। इस प्रकार भगीरथका मन बहुत दुःखी हुआ॥६५-६७॥

राजा भगीरथ द्वारा श्रीजह्नुमुनिकी पूजा—

कतदिन मुनिरे पूजिल महाधीर।
अङ्ग विदारिया गङ्गा करिल बाहिर॥६८॥

धैर्य धारण करके भगीरथने बहुत दिनों तक जह्नुमुनिकी पूजा की। (भगीरथकी पूजासे सन्तुष्ट होकर) जह्नुमुनिने अपने शरीरके एक अङ्गको चीरकर गङ्गाको बाहर निकाल दिया॥६८॥

श्रीगङ्गादेवीके जाह्नवी नाम होनेका कारण—

सेइ हैते जाह्नवी हैल नाम ताँ'र।
जाह्नवी बलिया डाके सकल संसार॥६९॥

तभीसे सभी लोग गङ्गाको जाह्नवी (जह्नुमुनिकी पुत्री) कहकर पुकारने लगे॥६९॥

गङ्गापुत्र श्रीभीष्मका अपने नाना श्रीजह्नुमुनिकी कुटीरमें आगमन—

कतदिन परे हेथा गङ्गार नन्दन।
भीष्मदेव कैल मातामह दरशन॥७०॥

इस घटनाके बहुत दिन बाद गङ्गापुत्र श्रीभीष्मदेवने यहाँपर अपने मातामह (नाना) श्रीजह्नुमुनिके दर्शन किये॥७०॥

भीष्मेरे आदर करे जह्नु महाशय।
बहुदिन राखे ता'रे आपन आलय॥७१॥

श्रीजह्नु महाशयने भीष्मको बहुत स्नेह किया और उन्हें अनेक दिनों तक अपनी ही कुटियामें रखा॥७१॥

श्रीजह्नुमुनि द्वारा भीष्मको धर्मका उपदेश प्रदान—

जह्नुस्थाने भीष्म धर्म शिखिल अपार।
युधिष्ठिरे शिक्षा दिल सेइ धर्मसार॥७२॥

भीष्मदेवने जह्नुमुनिसे परमधर्मकी अपार शिक्षा प्राप्त की। उसी शिक्षाको ही उन्होंने युधिष्ठिर महाराजको धर्मके सारके रूपमें प्रदान किया॥७२॥

अन्याभिलाषिताशून्य होकर नवद्वीपमें वास करनेके फलस्वरूप भीष्मको भक्तिधनकी प्राप्ति—

नवद्वीप थाकि' भीष्म पाइल भक्तिधन।
वैष्णव–मध्येते भीष्म हइल गणन॥७३॥

नवद्वीपमें रहकर भीष्मने भक्तिरूपी धनको प्राप्त किया तथा प्रधान वैष्णवोंमें गिने जाने लगे॥७३॥

अतएव जह्नुद्वीप परम पावन।
हेथा वास करे सदा भाग्यवान् जन॥७४॥

अतएव जह्नुद्वीप परम पवित्र है, यहाँपर सौभाग्यशाली व्यक्ति ही वास करते हैं॥७४॥

सेइदिन जह्नुद्वीपे नित्यानन्द राय।
भक्तगण-सह रहे भक्तेर आलय॥७५॥

उस दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु सभी भक्तोंके साथ जह्नुद्वीप स्थित किसी भक्तके घरपर रहे॥७५॥

परदिन प्राते प्रभु ल'ये भक्तगण।
मोदद्रुमद्वीपे तबे करिल गमन॥७६॥

अगले दिन सुबह श्रीनित्यानन्द प्रभुने भक्तोंको अपने साथ लेकर मोदद्रुमद्वीपकी ओर प्रस्थान किया॥७६॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

जाह्नवा-निताइ-पद जाहार गरिमा।
ए भक्तिविनोद गाय नदीया-महिमा॥७७॥

श्रीजाह्नवादेवी और श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीचरण-कमल ही जिसका गौरव है, उसी भक्तिविनोद

द्वारा नदियाके माहात्म्यका गान किया जा रहा है ॥७७॥

त्रयोदश अध्याय समाप्त।

भगवान् श्रीरामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण और हनुमान

चतुर्दश अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय पञ्चतत्त्वात्मक गौरहरि।
जय जय नवद्वीप–धाम सर्वोपरि॥१॥

पञ्चतत्त्वात्मक श्रीगौरहरिकी जय हो! जय हो। सर्वश्रेष्ठ धाम श्रीनवद्वीपकी जय हो! जय हो॥१॥

मामगाछि (मोदद्रुमद्वीप), श्रीनवद्वीप स्थित श्रीअयोध्या नगरी

मामगाछि–ग्रामे गिया नित्यानन्दराय।
बले,—एइ मोदद्रुम, अयोध्या हेथाय॥२॥

मामगाछि ग्राममें पहुँचकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—यह मोदद्रुमद्वीप है और यहाँपर अयोध्या विराजमान है॥२॥

वनवासके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रका देवी सीता और लक्ष्मण सहित आगमन—

पूर्वकल्पे जबे राम हइल वनवासी।
लक्ष्मण, जानकी ल'ये एइस्थाने आसि'॥३॥

महावट वृक्षतले कुटीर बाँधिया।
कतदिन वास कैल आनन्दित हैया॥४॥

पिछले कल्पमें भगवान् श्रीरामचन्द्र वनवासके समय लक्ष्मण और जानकीके साथ इस स्थानपर आये थे तथा उन्होंने एक बहुत बड़े वट (बरगद) वृक्षके नीचे कुटीर बनाकर बहुत दिनों तक आनन्दपूर्वक यहीं वास किया था॥३-४॥

श्रीरामचन्द्रका मन्द-मन्द मुस्कराना—

नवद्वीप-प्रभा राम करि' दरशन।
अल्प अल्प हास्य करे श्रीरघुनन्दन॥५॥

श्रीनवद्वीपकी शोभा देखकर श्रीरघुनन्दन भगवान् रामचन्द्र मन्द-मन्द मुस्कराने लगे॥५॥

किवा दुर्वादलश्याम-रूप मनोहर।
राजीवलोचन, हस्ते धनुक सुन्दर॥६॥

अहा! दुर्वादलश्याम (कोमल-कोमल नई दूबकी घासके समूहके समान) श्याम वर्णवाला वह रूप कैसा मनमोहक था। उनके नेत्र कमलके समान थे और उनके हाथमें एक सुन्दर धनुष सुशोभित हो रहा था॥६॥

ब्रह्मचारिवेश, शिरे जटा शोभा करे।
दर्शने सकल प्राणिगण–मन हरे॥७॥

सिरपर जटा–जूट शोभा पा रहा था और उनका ब्रह्मचारी–वेश सभी प्राणियोंके मनको हरण कर रहा था॥७॥

श्रीसीतादेवी द्वारा श्रीरामचन्द्रसे मुस्करानेका कारण जिज्ञासा करना—

हासि हासि मुख देखि' जानकी तखन।
जिज्ञासे श्रीरामे देवी हास्येर कारण॥८॥

श्रीरामचन्द्रको मुस्कराते देखकर श्रीजानकीने उनसे मुस्करानेका कारण पूछा॥८॥

श्रीरामचन्द्र द्वारा गोपनीय उपाख्यानका उद्‌घाटन—

राम बले,—"शुन सीता, जनक–नन्दिनी।
अति गोपनीय एक आछे त' काहिनी॥९॥

श्रीरामचन्द्रने कहा—हे जनकनन्दिनी सीते! सुनो मैं तुम्हें एक बहुत गोपनीय उपाख्यान सुना रहा हूँ॥९॥

श्रीरामचन्द्र द्वारा श्रीगौरावतारकी सूचना—

धन्य कलि जबे हय एइ नदीयाय।
पीतवर्ण रूप मोर देखिवारे पाय॥१०॥

जब धन्य कलियुग आयेगा, तब मैं पीतवर्ण धारण करके इस नदियामें प्रकट होऊँगा॥१०॥

श्रीगौरावतारमें होनेवाले भावी माता-पिताकी सूचना—

जगन्नाथमिश्र-गृहे श्रीशची-उदरे।
गौराङ्ग-रूपेते जन्म लभिब सत्वरे॥११॥

मैं श्रीजगन्नाथमिश्रके घरपर श्रीशचीदेवीके गर्भसे गौराङ्गके रूपमें आविर्भूत होऊँगा॥११॥

बाल्यलीला देखिबे जे-सब भाग्यवान्।
करिब से-सबे आमि परा-प्रेम दान॥१२॥

जो सौभाग्यशाली व्यक्ति मेरी बाल-लीलाओंके दर्शन करेंगे, मैं उन्हें सर्वश्रेष्ठ प्रेम प्रदान करूँगा॥१२॥

विद्याविलास और नामसङ्कीर्त्तनकी सूचना—

करिब से-काले प्रिये विद्यार विलास।
श्रीनाम-माहात्म्य आमि करिब प्रकाश॥१३॥

हे प्रिये! मैं उस समय विद्याध्ययन-अध्यापनकी लीला करूँगा और श्रीनामके माहात्म्यको प्रकाशित करूँगा॥१३॥

संन्यासकी सूचना—

संन्यास करिया आमि जाब नीलाचले।
काँदिबे जननी स्वीय वधू ल'ये कोले॥"१४॥

मैं संन्यास ग्रहण करके नीलाचल जाऊँगा और मेरी माँ अपनी बहुको गोदमें लेकर क्रन्दन करेगी॥१४॥

श्रीसीतादेवी द्वारा गौरावतारमें संन्यास ग्रहण करनेकी आवश्यकताका कारण पूछना—

एइ कथा शुनि' सीता बलेन वचन।
"जननी काँदाबे केन राजीवलोचन॥१५॥

संन्यास करिबे केन छाड़िया गृहिणी।
पत्नी–दुःख दिया सुख किवा नाहि जानि॥"१६॥

श्रीरामचन्द्रके मुखसे ऐसा सुनकर सीतादेवीने पूछा—हे कमललोचन! आप अपनी माताको क्यों रुलायेंगे? अपनी पत्नीको छोड़कर संन्यास भी ग्रहण क्यों करेंगे? किस सुखको प्राप्त करनेके लिए अपनी पत्नीको दुःख देंगे?॥१५-१६॥

श्रीरामचन्द्रका उत्तर—

श्रीराम बलेन,—"प्रिये, तुमि सब जान।
जीवेरे शिखाते एबे हइल अज्ञान॥१७॥

श्रीरामचन्द्रने कहा—हे प्रिये! तुम सब जानती हो। जीवोंको शिक्षा देनेके लिए ही अभी अनजान बन रही हो॥१७॥

प्रेमाभक्तिका दो प्रकारसे आस्वादन—

आमाते जे प्रेमभक्ति तार आस्वादन।
दुइ मते हय सीता शुनह वचन॥१८॥

हे सीते! सुनो। मेरे प्रति की जानेवाली प्रेमाभक्तिका दो प्रकारसे आस्वादन किया जाता है॥१८॥

संयोग और वियोग—

आमार संयोगे सुख सम्भोग बोलय।
आमार वियोगे सुख विप्रलम्भ हय॥१९॥

मेरे संयोगसे उत्पन्न सुखको सम्भोग कहते हैं और मेरे वियोगसे उत्पन्न सुखको विप्रलम्भ कहते हैं॥१९॥

भगवान्‌की कृपासे विप्रलम्भरसका आस्वादन—

भक्त मोर नित्यसङ्गी सम्भोग वाञ्छय।
मम कृपावशे तार विप्रलम्भ हय॥२०॥

यद्यपि मेरे नित्यसङ्गी भक्त सदैव सम्भोगकी ही इच्छा करते हैं, तथापि मेरी कृपासे उन्हें विप्रलम्भका भी आस्वादन होता है॥२०॥

विप्रलम्भसे उत्पन्न दुःख भी परम सुखका कारण—

विप्रलम्भे दुःख जेइ आमार कारण।
परम आनन्द ताहा जाने भक्तजन॥२१॥

विप्रलम्भ–शेषे जबे सम्भोग उदय।
पूर्वापेक्षा कोटिगुण सुख ताहे हय॥२२॥

भक्त जानते हैं कि श्रीकृष्णके वियोगसे जो दुःख उत्पन्न होता है, वास्तवमें वह परम आनन्द है। क्योंकि विप्रलम्भके बाद जो सम्भोग होता है, उसमें पहलेकी अपेक्षा करोड़ों गुणा अधिक सुखकी प्राप्ति होती है॥२१–२२॥

सेइ त' सुखेर हेतु आमार विच्छेद।
स्वीकार करह तुमि, बले चारि वेद॥२३॥

मेरा वियोग भी सुख प्रदान करनेवाला है। इसीलिए उसी सुखकी प्राप्ति हेतु तुम भी मेरे वियोगको स्वीकार करती हो, जिसका चारों वेदोंमें वर्णन किया गया है॥२३॥

माता कौशल्या ही श्रीशचीदेवी—

श्रीगौराङ्ग–अवतारे कौशल्या–जननी।
शचीदेवी अदिति वेदेते जा'र ध्वनि॥२४॥

जिन्हें वेदोंमें अदिति कहा गया है, वही माता कौशल्या मेरे श्रीगौराङ्ग–अवतारमें शचीदेवीके नामसे परिचित होंगी॥२४॥

भगवती श्रीसीतादेवी ही गौरलीलामें श्रीविष्णुप्रियादेवी—

तुमि विष्णुप्रियारूपे सेविबे आमारे।
विच्छेदे श्रीगौरमूर्त्ति करिबे प्रचारे॥२५॥

तुम विष्णुप्रियादेवीके रूपमें मेरी सेवा करोगी और मेरे वियोगमें मेरी श्रीगौरमूर्त्तिको प्रकाशित करोगी॥२५॥

वनवासके उपरान्त होनेवाली लीलाका सङ्केत—

तोमार विच्छेदे कभु स्वर्णसीता करि'।
भजिब तोमारे आमि अयोध्या–नगरी॥२६॥

इसी अवतारमें मैं तुम्हारे वियोगमें स्वर्णकी सीता बनाकर अयोध्या नगरीमें तुम्हारी आराधना करूँगा॥२६॥

श्रीविष्णुप्रियादेवी द्वारा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके विग्रहकी आराधना करनेका कारण—

तार विनिमये तुमि नदीया—नगरे।
गौराङ्ग—प्रतिमा करि' पूजिबे आमारे॥२७॥

उसके बदले तुम इस नदिया नगरमें श्रीगौराङ्गका श्रीविग्रह बनाकर मेरी आराधना करोगी॥२७॥

एइ गूढ़ कथा सीता गोपनीय अति।
लोकेते प्रकाश नाहि हइबे सम्प्रति॥२८॥

हे सीते! यह उपाख्यान बहुत गोपनीय है, अभी लोगोंके समक्ष यह प्रकाशित नहीं होगा॥२८॥

अयोध्या आदि अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा नवद्वीप भगवान्का परम प्रिय स्थान—

एइ नवद्वीप मोर बड़ प्रिय स्थान।
अयोध्यादि नाहि हय इहार समान॥२९॥

यह नवद्वीप नामक स्थान मुझे बहुत अधिक प्रिय है। अयोध्या आदि स्थान कभी भी इसके समान नहीं हो सकते॥२९॥

एइ रामवट—वृक्ष कलि आगमने।
अदर्शन ह'ये सीता र'बे सङ्गोपने॥३०॥

हे सीते! यह रामवट नामक वृक्ष कलियुगके आनेपर साधारण लोगोंकी दृष्टिसे ओझल होकर गुप्त रूपमें यहाँपर वास करेगा॥३०॥

नवद्वीपमें श्रीराम पादाङ्कभूमि—

एइरूपे राम–सीता लक्ष्मण–सहित।
एइस्थाने कतदिन ह'ये अवस्थित॥३१॥
दण्डक अरण्ये गेला कार्य साधिवारे।
रामेर कुटीर–स्थान पाओ देखिवारे॥३२॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मणके साथ कुछ दिनों तक इसी स्थानपर वास करनेके उपरान्त अपनी लीलाकी पूर्ति हेतु दण्डकारण्य चले गये। हे जीव! तुम उस स्थानका दर्शन करो, जहाँपर भगवान् श्रीरामचन्द्रकी कुटिया थी॥३१-३२॥

भगवान् रामचन्द्रके मित्र गुहकका श्रीगौरलीलामें सदानन्द भट्टाचार्यके रूपमें जन्म—

राममित्र गुहक प्रभुर इच्छा–वशे।
एइस्थाने जन्मिलेन विप्रेर औरसे॥३३॥

श्रीरामचन्द्रके मित्र गुहकने प्रभुकी इच्छासे यहाँपर एक विप्रके औरससे जन्म ग्रहण किया था॥३३॥

सदानन्द विप्र भट्टाचार्य नाम ताँर।
राम बिना त्रिजगते नाहि जाने आर॥३४॥

गौरलीलामें गुहकका नाम सदानन्द भट्टाचार्य था, वे श्रीरामके अतिरिक्त त्रिभुवनमें और कुछ भी नहीं जानते थे॥३४॥

श्रीमन् महाप्रभुके आविर्भावके समय श्रीसदानन्द विप्रकी योगपीठमें उपस्थिति—

जेइदिन प्रभु मोर जन्मे मायापुरे।
सेइदिन सदानन्द छिल मिश्र–घरे॥३५॥

जिस दिन मेरे प्रभुने मायापुरमें जन्म ग्रहण किया, उस दिन सदानन्द भट्टाचार्य भी श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरमें उपस्थित थे॥३५॥

सदानन्द विप्र द्वारा देवताओंको पहचानना—

प्रभुर जनमकाले जत देवगण।
मिश्रेर भवने शिशु करे दरशन॥३६॥

परम साधक विप्र चिने देवगणे।
जानिल आमार प्रभु जन्मिल एखाने॥३७॥

श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके समय जब सभी देवता श्रीजगन्नाथ मिश्रके भवनमें आकर श्रीगौरहरिका

दर्शन कर रहे थे। उस परम साधक ब्राह्मण सदानन्द भट्टाचार्यने देवताओंको पहचान लिया और उन्हें स्तुति करते हुए देखकर समझ गये कि यहाँपर मेरे प्रभु आविर्भूत हुए हैं॥३६-३७॥

ध्यानमें श्रीरामचन्द्रके स्थानपर अवतारी श्रीगौरसुन्दरके दर्शन—

परम कौतुके विप्र आइल निज-घरे।
इष्टध्याने देखे विप्र गौराङ्गसुन्दरे॥३८॥

अत्यधिक प्रसन्न होकर ब्राह्मण अपने घर लौट आया और अपने इष्टदेवता (श्रीरामचन्द्र) का ध्यान करने लगा। ध्यानमें उसने श्रीरामचन्द्रके स्थानपर श्रीगौराङ्गसुन्दरके दर्शन किये॥३८॥

सिंहासने बसियाछे श्रीगौराङ्गराय।
ब्रह्मा आदि देवगण चामर ढुलाय॥३९॥

उसने देखा कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभु सिंहासनपर विराजमान हैं और ब्रह्मा आदि देवता उन्हें चामर ढुला रहे हैं॥३९॥

श्रीसदानन्द भट्टाचार्यको भगवत्-तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति—

पुनः देखे रामचन्द्र दुर्वादलश्याम।
निकटे लक्ष्मणवीर श्रीअनन्तधाम॥४०॥

वामे सीता, सम्मुखे भकत हनुमान।
देखिया विप्रेर हैल प्रभु–तत्त्वज्ञान॥४१॥

उसने पुनः दुर्वादलश्याम वर्णवाले श्रीरामचन्द्रको देखा। श्रीरामचन्द्रकी दायीं ओर लक्ष्मण, बायीं ओर सीता तथा सामने भक्त हनुमान विराजमान थे। यह सब देखकर ब्राह्मणको प्रभुके तत्त्वका ज्ञान हो गया॥४०–४१॥

परम आनन्दे विप्र मायापुरे गिया।
अलक्ष्ये गौराङ्ग देखे नयन भरिया॥४२॥

परमान्दित होकर ब्राह्मण मायापुरमें जाकर अलक्षित रूपसे जी भरकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शन करने लगा॥४२॥

'धन्य आमि' 'धन्य आमि' बले बारबार।
गौररूपे रामचन्द्र सम्मुखे आमार॥४३॥

वह ब्राह्मण बार–बार अपने मन–ही–मन कहने लगा—मैं धन्य हूँ, मैं धन्य हूँ, क्योंकि मेरे समक्ष श्रीरामचन्द्र श्रीगौरहरिके रूपमें विराजमान हैं॥४३॥

सङ्कीर्त्तनके समय सदानन्द भट्टाचार्यका नृत्य—

कतदिने सङ्कीर्त्तन आरम्भ हइल।
सदानन्द 'गौर' बलि' ताहाते नाचिल॥४४॥

कुछ समय बाद जब श्रीधाम नवद्वीपमें सङ्कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ, तब सदानन्दने भी 'गौर' नामका उच्चारण करते हुए कीर्त्तनमण्डलीमें नृत्य किया था॥४४॥

मोदद्रुमद्वीप, व्रजका श्रीभाण्डीरवन

ओहे 'जीव', एइस्थाने श्रीभाण्डीरवन।
निर्मल भकतगण करे दरशन॥४५॥

हे जीव! शुद्ध चित्तवाले भक्त इस स्थानपर श्रीभाण्डीरवनका दर्शन करते हैं॥४५॥

सेइ सब कथा शुनि', नित्यधामे हेरि'।
नाचेन भकतगण नित्यानन्दे घेरि'॥४६॥

इन सब उपाख्यानोंको सुनकर और नित्यधामका दर्शन करके भक्तलोग श्रीनित्यानन्द प्रभुको घेरकर नृत्य करने लगे॥४६॥

श्रीजीवेर अङ्गे हय सात्विक विकार।
'हा गौराङ्ग' बलि' जीव करेन चीत्कार॥४७॥

श्रीजीवके अङ्गोंमें सात्विक विकार उदित हो आये और वे "हा गौराङ्ग! हा गौराङ्ग!" कहकर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे॥४७॥

श्रीनारायणीदेवीके वासस्थानपर श्रीनित्यानन्द प्रभुका विश्राम—

सेइ ग्रामे सेइ दिन नारायणी-घरे।
रहिलेन नित्यानन्द प्रफुल्ल अन्तरे॥४८॥

उस दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु अत्यधिक आनन्दित होकर उस गाँवमें स्थित श्रीनारायणीदेवीके घरपर ही रहे॥४८॥

परम पवित्र सती व्यासेर जननी।
श्रीवैष्णव गणे सेवा करिल आपनि॥४९॥

परम पवित्र सती नारायणीदेवी, जो कि व्यास (चैतन्यलीलाके व्यास श्रीवृन्दावनदास ठाकुर) की माता हैं, उन्होंने स्वयं सभी वैष्णवोंकी सेवा की॥४९॥

परदिन प्राते सबे चलि' कत दूर।
प्रवेशिल अनायासे श्रीवैकुण्ठपुर॥५०॥

अगले दिन प्रातःकाल कुछ दूर चलनेपर सभीने श्रीवैकुण्ठपुरमें प्रवेश किया॥५०॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा-आज्ञा करिते पालन।
नदीया-माहात्म्य गाय दीन अकिञ्चन॥५१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीकी आज्ञाका पालन करने हेतु दीन-अकिञ्चन (श्रीभक्तिविनोद ठाकुर) द्वारा नदियाके माहात्म्यका गान किया जा रहा है॥५१॥

चतुर्दश अध्याय समाप्त।

पञ्चदश अध्याय

मङ्गलाचरण—

पञ्चतत्त्व सहित गौराङ्ग जय जय।
जय जय नवद्वीप गौराङ्ग—आलय॥१॥

पञ्चतत्त्व सहित श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी जय हो! जय हो। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके वासस्थान श्रीनवद्वीप-धामकी जय हो! जय हो॥१॥

श्रीवैकुण्ठपुर

श्रीवैकुण्ठपुरे आसि' प्रभु नित्यानन्द।
श्रीजीवे कहेन तबे हासि' मन्द मन्द॥२॥

''नवद्वीप अष्टदल एक पार्श्वे हय।
एइ त' वैकुण्ठपुरी शुनह निश्चय॥३॥

श्रीवैकुण्ठपुरमें पहुँचकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए श्रीजीवसे कहा—निश्चित रूपसे जानो कि आठ दलवाले नवद्वीपकी उत्तरी सीमापर स्थित यह स्थान वैकुण्ठपुरी है॥२-३॥

परव्योम श्रीवैकुण्ठ नारायण–स्थान।
विरजार पारे स्थिति एइ त' सन्धान॥४॥

भगवान् श्रीनारायणका स्थान श्रीवैकुण्ठ विरजाके उसपार परव्योममें स्थित है॥४॥

मायार नाहिक तथा गति कदाचन।
श्री–भू–लीला–शक्ति–सेव्य तथा नारायण॥५॥

वैकुण्ठमें श्री, भू और लीला नामक तीन शक्तियाँ भगवान् श्रीनारायणकी सेवा करती हैं। वहाँपर माया कभी भी प्रवेश नहीं कर सकती॥५॥

चिन्मय भूमिर ब्रह्म हय त' किरण।
चर्मचक्षे जड़दृष्टि करे सर्वजन॥६॥

चिन्मय भूमि श्रीवैकुण्ठलोककी किरण (आभा) ही ब्रह्म है। जड़ नेत्रोंसे लोग केवल इस वैकुण्ठपुर नामक स्थानको जड़मय स्थानके रूपमें ही देख पाते हैं॥६॥

इसी स्थानपर श्रीनारदको श्रीगौरसुन्दरका दर्शन प्राप्त—

एइ नारायण–धामे नित्य निरञ्जने।
नारद देखिल कभु चिन्मय लोचने॥७॥

नारायणे देखे पुनः गौराङ्गसुन्दर।
देखि' हेथा कतदिने रहे मुनिवर॥८॥

इस वैकुण्ठपुरमें श्रीनारदजीने अपने चिन्मय नेत्रोंसे पहले नित्य निरञ्जन भगवान् श्रीनारायणके दर्शन किये थे, तदुपरान्त श्रीगौराङ्गसुन्दरके दर्शन करनेके उपरान्त श्रीनारदने बहुत दिनों तक इस स्थानपर वास किया था॥७-८॥

श्रीवैकुण्ठपुरसे सम्बन्धित श्रीरामानुजाचार्यका प्राचीन उपाख्यान—

आर एक कथा गूढ़ आछे पुरातन।
जगन्नाथ-क्षेत्रे आइल आचार्य-लक्ष्मण॥९॥

इस स्थानसे सम्बन्धित एक बहुत पुराना गूढ़ उपाख्यान है। एक बार श्रीलक्ष्मण आचार्य (श्रीरामानुजाचार्य) जगन्नाथ पुरीमें आये॥९॥

श्रीरामानुजाचार्यको भगवान् श्रीजगन्नाथका दर्शन-प्राप्त—

बहु स्तवे तुष्ट कैल देव जगन्नाथे।
कृपा करि' जगन्नाथ आइल साक्षाते॥१०॥

उन्होंने अनेक स्तव पाठ करके भगवान् श्रीजगन्नाथको प्रसन्न किया और भगवान् जगन्नाथने कृपा करके उन्हें अपना दर्शन प्रदान किया॥१०॥

श्रीरामानुजके प्रति भगवान् श्रीजगन्नाथका आदेश—

साक्षाते आसिया प्रभु बलिल वचन।
नवद्वीपधाम तुमि करह दर्शन ॥११ ॥

श्रीजगन्नाथदेवने कहा—हे रामानुज! तुम जाकर नवद्वीपधामके दर्शन करो ॥११ ॥

श्रीजगन्नाथदेव द्वारा श्रीगौरावतारकी सूचना—

अति अल्पदिने आमि नदीया-नगरे।
प्रकट हइब जगन्नाथमिश्र-घरे ॥१२ ॥

मैं बहुत ही थोड़े दिनोंमें नदिया नगरमें जगन्नाथ मिश्रके घर आविर्भूत होऊँगा ॥१२ ॥

परव्योम, श्रीनवद्वीपके एक भागमें विराजमान—

नवद्वीप हय मोर अति प्रियस्थान।
परव्योम तार एकदेशे अधिष्ठान ॥१३ ॥

श्रीनवद्वीप मेरा बहुत प्रिय स्थान है। परव्योम तो उसके केवल एक भागमें ही अवस्थित है ॥१३ ॥

तुमि मोर नित्यदास भकत-प्रधान।
अवश्य देखिबे तुमि नवद्वीप-स्थान ॥१४ ॥

तुम मेरे नित्यदास और भक्तोंमें प्रधान हो। तुम अवश्य ही श्रीनवद्वीपका दर्शन करना॥१४॥

तव शिष्यगण दास्य–रसेते मगन।
हेथाय थाकुक, तुमि करह गमन॥१५॥

तुम्हारे सभी शिष्य दास्यरसमें निमग्न हैं, इसलिए उन्हें यहींपर छोड़कर तुम अकेले ही वहाँ जाओ॥१५॥

नवद्वीपके दर्शन बिना मनुष्य–जीवन व्यर्थ—

नवद्वीप ना देखे जे पाइया शरीर।
मिथ्या तार जन्म ओहे रामानुज धीर॥१६॥

हे रामानुज! हे धीर! मानव जन्म प्राप्त करके भी जो श्रीनवद्वीपधामका दर्शन नहीं करता, उसका पृथ्वीपर जन्म लेना ही व्यर्थ है॥१६॥

रङ्गस्थान श्रीवेङ्कट यादव अचल।
नवद्वीप कलामात्र हय से–सकल॥१७॥

श्रीरङ्गम, श्रीवेङ्कट (तिरुपति) और यादव अचल (प्रभास तीर्थके निकट स्थित हिरण्य नदीका वह तट, जहाँपर परस्पर युद्ध करते–करते सभी

यादवोंका नाश हुआ था) ये सभी श्रीनवद्वीपकी कलामात्र हैं अर्थात् ये सब स्थान श्रीनवद्वीपके एक अंशमात्र हैं॥१७॥

अतएव नवद्वीप करिया गमन।
देख गौराङ्गेर रूप केशवनन्दन॥१८॥

अतएव हे केशवनन्दन (रामानुज)! श्रीनवद्वीप जाकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रूपका दर्शन करो॥१८॥

श्रीरामानुजके प्रति भगवान् श्रीजगन्नाथके कृपा-अशीर्वादरूपी वचन—

भक्ति प्रचारिते तुमि आइले धरातले।
सार्थक हउक जन्म गौर-कृपाबले॥१९॥

भक्तियोगका प्रचार करनेके लिए ही तुम इस संसारमें आये हो। श्रीगौरहरिकी कृपासे तुम्हारा जन्म सार्थक हो॥१९॥

नवद्वीप देखि' तुमि जाओ कूर्मस्थान।
शिष्यगण-सने तथा हइबे मिलन॥"२०॥

श्रीनवद्वीपका दर्शन करके तुम कूर्मस्थान चले जाना। वहींपर ही तुम्हारा पुनः अपने शिष्योंसे मिलन होगा॥२०॥

श्रीरामानुज द्वारा भगवान् श्रीजगन्नाथसे श्रीगौरतत्त्वकी जिज्ञासा—

एत शुनि' लक्ष्मणाचार्य जुड़ि' दुइ कर।
जगन्नाथे निवेदन करे अतःपर॥२१॥

इतना सुनकर श्रीलक्ष्मणाचार्यने हाथ जोड़कर श्रीजगन्नाथसे निवेदन किया॥२१॥

"तोमार कृपाय प्रभु गौर–कथा शुनि'।
कोन तत्त्व गौरचन्द्र ताहा नाहि जानि॥"२२॥

हे प्रभो! आपकी कृपासे मैंने पहली बार आपके श्रीमुखसे श्रीगौरहरिके विषयमें सुना अवश्य है, किन्तु श्रीगौरचन्द्रके तत्त्वके विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता॥२२॥

भगवान् श्रीजगन्नाथ द्वारा श्रीगौरतत्त्वका वर्णन—

रामानुजे कृपा करि' जगबन्धु बले।
"गोलोकेर नाथ कृष्ण जानेन सकले॥२३॥

जाँहार विलासमूर्त्ति प्रभु नारायण।
सेइ कृष्ण परतत्त्व धाम वृन्दावन॥२४॥

श्रीरामानुजके प्रति कृपा करके जगबन्धु श्रीजगन्नाथने कहा—सभी जानते हैं कि श्रीकृष्ण गोलोकके नाथ हैं तथा भगवान् श्रीनारायण उनकी विलासमूर्त्ति हैं,

श्रीकृष्ण ही परमतत्त्व हैं तथा श्रीधाम वृन्दावनमें वास करते हैं॥२३-२४॥

श्रीकृष्ण और श्रीगौर-तत्त्व अभिन्न—

सेइ कृष्ण पूर्णरूपे नित्य गौरहरि।
सेइ वृन्दावनधाम नवद्वीप-पुरी॥२५॥

हे रामानुज! वे श्रीकृष्ण ही पूर्ण रूपमें नित्य श्रीगौरहरि हैं और वही श्रीवृन्दावनधाम ही श्रीनवद्वीप नगरी है॥२५॥

नवद्वीपे आमि नित्य गौराङ्गसुन्दर।
नवद्वीप श्रेष्ठधाम जगत्-भितर॥२६॥

जगत्के अन्यान्य सभी धामोंसे श्रेष्ठ श्रीनवद्वीप-धाममें मैं नित्य श्रीगौराङ्गसुन्दरके रूपमें वास करता हूँ॥२६॥

आमार कृपाय धाम आछे भूमण्डले।
मायागन्ध नाहि तथा सर्वशास्त्र बले॥२७॥

यद्यपि मेरी कृपासे यह धाम इस भूमण्डलपर स्थित है, तथापि सभी शास्त्र वर्णन करते हैं कि वहाँपर मायाकी गन्ध भी नहीं है॥२७॥

भूमण्डलपर स्थित श्रीनवद्वीपधामको श्वेतद्वीपसे हीन समझने-वालोंकी गति—

भूमण्डले आछे बलि' यदि भाव हीन।
तबे तव भक्तिक्षय ह'बे दिन दिन॥२८॥

यदि कोई विचार करे कि भूमण्डलपर स्थित होनेके कारण यह श्रीनवद्वीपधाम (श्रीश्वेतद्वीपकी तुलनामें) हीन है, तो ऐसे व्यक्तिकी भक्ति दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जायेगी॥२८॥

आमार अचिन्त्य शक्ति से चिन्मय-धामे।
आमार इच्छाय राखियाछे मायाश्रमे॥२९॥

मेरी इच्छासे ही मेरी अचिन्त्यशक्तिने उस चिन्मय धामको इस जड़जगत्‌में लाकर रखा है॥२९॥

भगवत्-कृपासे ही अधोक्ष्ज भगवत्-तत्त्वकी उपलब्धि सम्भवपर—

युक्तिर अतीत तत्त्व शास्त्र नाहि पाय।
केवल जानेन भक्त आमार कृपाय॥"३०॥

युक्तिसे अतीत तत्त्व केवल शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे ही प्राप्त नहीं हो जाते। मेरी कृपासे केवल मेरे भक्त ही इसे जान सकते हैं॥३०॥

जगन्नाथ–वाक्य शुनि' रामानुज धीर।
श्रीगौराङ्गप्रेमे तबे हइल अस्थिर॥३१॥
बले,—''प्रभु बड़इ आश्चर्य लीला तव।
वेदशास्त्र नाहि जाने तोमार वैभव॥३२॥

भगवान् श्रीजगन्नाथके वचन सुनकर दृढ़ और शान्त चित्तवाले श्रीरामानुज श्रीगौराङ्गप्रेममें अस्थिर होकर कहने लगे—हे प्रभो! आपकी लीलाएँ बहुत आश्चर्यजनक हैं। आपके वैभवको वेदशास्त्र आदि भी नहीं जानते हैं॥३१-३२॥

शास्त्रेते विशेषरूपे श्रीगौराङ्ग–लीला।
केन प्रभु जगन्नाथ व्यक्त ना करिला॥३३॥

हे प्रभो जगन्नाथ! पहले मैं चिन्ता कर रहा था कि शास्त्रोंमें स्पष्ट रूपसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी लीलाओंका वर्णन क्यों नहीं किया गया है?॥३३॥

गाढ़रूपे श्रुति–पुराणादि देखि जबे।
कभु गौरतत्त्व स्फूर्त्ति चित्ते पाइ तबे॥३४॥

किन्तु जब मैंने सूक्ष्म रूपसे श्रुति और पुराण आदि पर विचार किया, तब कहीं जाकर गौरतत्त्व चित्तमें स्फुरित हुआ॥३४॥

भगवान् श्रीजगन्नाथकी कृपासे श्रीरामानुजके सभी संशय दूर—

तव आज्ञा प्राप्त ह'ये छाड़िल संशय।
गौर–लीला–रस हृदे हइल उदय॥३५॥

अब आपके आज्ञारूपी उपदेशसे मेरा सारा संशय दूर हो गया है और हृदयमें गौरलीलारूपी रस आविर्भूत हुआ है॥३५॥

श्रीगौरतत्त्व प्रचार हेतु श्रीरामानुजका आग्रह—

आज्ञा हय नवद्वीप करिया गमन।
प्रचारिब गौर–लीला ए तिन भुवन॥३६॥

यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं श्रीनवद्वीप जाकर श्रीगौरलीलाका तीनों लोकोंमें प्रचार करूँ॥३६॥

गूढ़शास्त्र व्यक्त करि' जाना'ब सबारे।
गौरभक्त करि' बल ए तिन संसारे॥"३७॥

गूढ़ शास्त्रोंको व्यक्त करके (अर्थात् उनमेंसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके विषयमें लिखे गये प्रमाणोंको प्रकाशित करके) त्रिभुवनमें सबको श्रीगौरहरिका भक्त बना दूँ॥३७॥

भगवान् श्रीजगन्नाथ द्वारा निषेध—

रामानुज–आग्रह देखिया जगन्नाथ।
बले,—"रामानुज नाहि बल ऐछे बात॥३८॥

रामानुजके आग्रहको देखकर श्रीजगन्नाथने कहा—हे रामानुज! अभी ऐसी बातें मत करो॥३८॥

गौरलीला अति गूढ़ राखिबे गोपने।
से–लीलार अप्रकटे पाबे सर्वजने॥३९॥

श्रीगौरहरिकी लीलाके तत्त्वको अति गूढ़ रूपमें अपने तक ही रखो। (श्रीमन् महाप्रभुकी) लीलाके अप्रकट होनेपर सभी लोग उसके विषयमें अपने आप ही जान जायेंगे॥३९॥

महाभाग्यवान श्रीरामानुजके प्रति भगवान् श्रीजगन्नाथकी आज्ञा—

तुमि दास्य–रस मोर करह प्रचार।
निजे निजे चित्ते गौर भज अनिबार॥"४०॥

तुम मेरे दास्यरसका ही प्रचार करो और स्वयं अपने चित्तमें निरन्तर श्रीगौरहरिका भजन करो॥४०॥

श्रीरामानुजाचार्यका श्रीनवद्वीप आगमन—

सङ्केत पाइया रामानुज महाशय।
गोपने श्रीनवद्वीपे हइल उदय॥४१॥

श्रीजगन्नाथसे इङ्गित प्राप्त करके श्रीरामानुज महाशय गुप्त रूपसे श्रीनवद्वीपमें आ गये॥४१॥

विष्वक्सेन द्वारा श्रीरामानुजको श्रीवैकुण्ठपुरमें लाना—

पाछे व्यक्त हय गौरलीला असमये।
से–कारणे रामानुजे विष्वक्सेन ल'ये॥४२॥
परव्योम श्रीवैकुण्ठपुरेते राखय।
एइ स्थान देखि' रामानुज मुग्ध हय॥४३॥

(श्रीरामानुजको नवद्वीपमें आया देखकर श्रीविष्वक्सेनने मन–ही–मन विचार किया कि कहीं श्रीरामानुज भावाविष्ट होकर नवद्वीपके तत्त्वको प्रकाशित न कर दे तथा) कहीं गौरलीला समयसे पहले ही व्यक्त न हो जाये, इसी कारणसे विष्वक्सेन[१] श्रीरामानुजको इस श्रीवैकुण्ठपुरमें ले आये। इस स्थानको देखकर रामानुज मुग्ध हो गये॥४२–४३॥

श्रीवैकुण्ठपुरमें श्रीरामानुजको भगवान् श्रीनारायणके दर्शन प्राप्त—

श्री–भू–लीला–निषेवित परव्योमपति।
देखा दिल रामानुजे कृपा करि' अति॥४४॥

---

[१] श्रीलप्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर श्रीचैतन्य–भागवतके अपने गौड़ीयभाष्य (२/१/१९०) में विष्वक्सेनके सम्बन्धमें लिखते हैं कि वे भगवान् श्रीविष्णुके निर्माल्यको धारण करनेवाले पार्षद हैं।

परव्योमपति भगवान् श्रीनारायणने कृपा करके श्रीरामानुजको अपनी श्री, भू और लीला शक्तिसे सेवित रूपके दर्शन कराये॥४४॥

रामानुज निज इष्टदेवेर दर्शने।
आपनारे धन्य मानि गणे मने मने॥४५॥

श्रीरामानुज अपने इष्टदेवका दर्शनकर मन–ही–मन अपने आपको धन्य मानने लगे॥४५॥

श्रीरामानुजको श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्त—

क्षणेके लक्ष्मण देखे पुरट–सुन्दर।
जगन्नाथमिश्रसुत–रूप मनोहर॥४६॥

एक ही क्षण बाद श्रीरामानुजने श्रीनारायणके स्थानपर अति मनोहर श्रीजगन्नाथ मिश्रके पुत्र श्रीगौरहरिके सुन्दर रूपका दर्शन किया॥४६॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा श्रीरामानुजपर कृपा—

रूपेर छटाय रामानुज मूर्छा जाय।
श्रीगौर धरिल पद ताँहार माथाय॥४७॥

श्रीगौरहरिकी रूपमाधुरीकी छटासे श्रीरामानुज मूर्च्छित हो गये और तब कृपा करके श्रीगौरहरिने

उनके मस्तकपर अपना श्रीचरणकमल रख दिया॥४७॥

श्रीरामानुज द्वारा श्रीमन् महाप्रभुकी स्तुति—

दिव्यज्ञाने रामानुज करिल स्तवन।
नदीया–प्रकट–लीला पाब दरशन॥४८॥

दिव्यज्ञान प्राप्त करके श्रीरामानुज स्तुति करते हुए कहने लगे—हे प्रभो! क्या मैं नदियामें आपकी प्रकटलीलाका दर्शन कर पाऊँगा?॥४८॥

एइ बलि' प्रेमे काँदे रामानुजस्वामी।
बले,—"नवद्वीप छाड़ि नाहि जाब आमि॥"४९॥

ऐसा कहकर श्रीरामानुजाचार्य प्रेमसे भरकर क्रन्दन करते हुए कहने लगे—मैं नवद्वीप छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा॥४९॥

श्रीगौरहरि द्वारा श्रीरामानुजको वर प्रदान—

कृपा करि' गौरहरि बलिल वचन।
"पूर्ण हबे इच्छा तव केशवनन्दन॥५०॥

श्रीगौरहरिने कृपा करके मधुर वाणीसे कहा—हे केशवनन्दन! तुम्हारी इच्छा अवश्य ही पूर्ण होगी॥५०॥

जे–काले नदीया–लीला प्रकट हइबे।
तखन द्वितीय जन्म नवद्वीपे पाबे॥"५१॥

जिस समय इस नदियामें मेरी लीला प्रकाशित होगी, उस समय तुम भी श्रीनवद्वीपमें जन्म ग्रहण करोगे॥५१॥

श्रीरामानुजाचार्यकी दक्षिण–यात्रा—

एइ बलि' गौरहरि हैल अन्तर्ध्यान।
सुस्थ ह'ये रामानुज करिल प्रयाण॥५२॥

इतना कहकर श्रीगौरहरि अन्तर्धान हो गये तथा श्रीरामानुजने सन्तुष्ट होकर पुनः अपनी यात्रा प्रारम्भ की॥५२॥

कतदिने कूर्मस्थाने हैल उपस्थित।
तथा देखा हैल शिष्यगणेर सहित॥५३॥

थोड़े दिनोंमें ही वे कूर्मस्थान पहुँचे और वहींपर उनकी अपने शिष्योंसे भेंट हुई॥५३॥

दाक्षिणात्ये गिया दास्यरस व्यक्त करे।
नवद्वीप श्रीगौराङ्ग भाविया अन्तरे॥५४॥

मन-ही-मन श्रीनवद्वीपके श्रीगौराङ्ग महाप्रभुमें अपने चित्तको आविष्ट करके, बाहरी रूपसे पूरे दक्षिण भारतमें दास्यरसका प्रचार करने लगे॥५४॥

श्रीगौरलीलामें श्रीरामानुजाचार्यका आविर्भाव—

गौराङ्गेर कृपावशे एइ नित्यधामे।
जनमिल रामानुज श्रीअनन्त-नामे॥५५॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी कृपासे इस नित्यधाममें श्रीरामानुजने श्रीअनन्त नामसे जन्म ग्रहण किया॥५५॥

वल्लभ-आचार्यगृहे करिया गमन।
लक्ष्मी-गौराङ्गेर विभा करे दरशन॥५६॥

श्रीवल्लभ आचार्य (श्रीलक्ष्मीप्रियादेवीके पिता) के घरपर जाकर उन्होंने (श्रीअनन्तने) श्रीलक्ष्मीप्रिया और श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका विवाह होते देखा॥५६॥

अनन्तेर गृहे स्थान देख भक्तगण।
हेथा नारायण-भक्त छिल बहुजन॥५७॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे भक्तों! अनन्तका घर जिस स्थानपर था, उस स्थानका दर्शन करो।

यहाँ भगवान् श्रीनारायणके बहुत भक्त वास करते थे॥५७॥

तात्कालिक राजगण एइ पीठस्थाने।
नारायण–सेवा प्रकाशिल सबे जाने॥५८॥

सभी जानते हैं कि उस समयके राजाओंने इस पीठ स्थानपर भगवान् श्रीनारायणकी सेवा प्रकाशित की थी॥५८॥

श्रीनवद्वीपमें निःश्रेयस कानन—

निःश्रेयस–वन एइ विरजार पार।
भक्तगण देखि' पाय आनन्द अपार॥५९॥

विरजाके उसपार स्थित निःश्रेयस नामक वनका दर्शन करके सभी भक्त अत्यधिक आनन्दित होते हैं॥५९॥

महत्पुर, व्रजका काम्यवन

एइरूप पूर्वकथा बलिते बलिते।
सबे उपनीत महत्पुर–सन्निहिते॥६०॥

इस प्रकार प्राचीन उपाख्यानको सुनते–सुनाते सभी लोग महत्पुरके निकट पहुँच गये॥६०॥

प्रभु बले,—एइ स्थाने आछे काम्यवन।
परम भकतिसह कर दरशन॥६१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—यह स्थान व्रजका काम्यवन है। तुम सभी परम भक्तिपूर्वक इसका दर्शन करो॥६१॥

पञ्चवट एइ स्थाने छिल पूर्वकाले।
प्रभुर इच्छाय एबे गेल अन्तराले॥६२॥

प्रचीन कालमें यहाँपर पाँच वट (बरगद) के वृक्ष थे। श्रीमन् महाप्रभुकी इच्छासे अभी वे वृक्ष अन्तर्धान हो गये हैं॥६२॥

महत्पुरका अपर नाम मातापुर—

एबे एइ स्थान मातापुर-नामे कय।
पूर्व-नाम शास्त्रसिद्ध महत्पुर हय॥६३॥

यद्यपि आजकल सभी लोग इस स्थानको मातापुर नामसे पुकारते हैं, तथापि शास्त्रोंमें वर्णित इसका पुराना नाम महत्पुर है॥६३॥

महत्पुरसे सम्बन्धित पाण्डवोंका उपाख्यान—

द्रौपदीर सह पाण्डुपुत्र पञ्चजन।
अज्ञातवासेते गौड़े कैल आगमन॥६४॥

अज्ञातवासके समय द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डवोंने गौड़देशमें आगमन किया था॥६४॥

एकचक्रा नामक ग्राममें महाराज युधिष्ठिरका स्वप्न-दर्शन—

एकचक्रा-ग्रामे स्वप्ने राजा युधिष्ठिर।
नदीया-माहात्म्य जानि' हइल अस्थिर॥६५॥

जब वे एकचक्रा नामक ग्राममें वास कर रहे थे, उस समय युधिष्ठिर महाराज स्वप्नमें नदियाके माहात्म्यको जानकर अस्थिर हो गये॥६५॥

द्रौपदी सहित पाण्डवोंका महत्पुर आगमन—

परदिन नवद्वीपे-दर्शनेर आशे।
एइ स्थाने आइल सबे परम उल्लासे॥६६॥

अगले दिन श्रीनवद्वीपधामके दर्शनकी आशासे सभी परम उल्लासपूर्वक श्रीनवद्वीपके अन्तर्गत इस स्थानपर उपस्थित हुए॥६६॥

पाण्डवों द्वारा नवद्वीपवासियोंके भाग्यकी प्रशंसा—

नवद्वीप-शोभा हेरि' पाण्डुपुत्रगण।
गौड़वासीगण-भाग्य करे प्रशंसन॥६७॥

श्रीनवद्वीपकी सुन्दरताको देखकर पाण्डुपुत्र गौड़देश वासियोंके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे॥६७॥

कतदिन करिलेन एइ स्थाने वास।
असुर राक्षसगणे करिल विनाश॥६८॥

कुछ दिनों तक इस स्थानपर वास करके उन्होंने बहुत-से असुर राक्षसोंका वध किया॥६८॥

युधिष्ठिर-टीला और द्रौपदीकुण्ड

युधिष्ठिर-टिला एइ देख सर्वजन।
द्रौपदीर कुण्ड हेथा कर दरशन॥६९॥

युधिष्ठिर-टीलाके नामसे प्रसिद्ध इस स्थानका दर्शन करो और निकटमें स्थित इस द्रौपदीकुण्डका भी दर्शन करो॥६९॥

स्थानेर माहात्म्य जानि' राजा युधिष्ठिर।
एइ स्थाने कतदिन हइलेन स्थिर॥७०॥

इस स्थानके माहात्म्यको समझकर महाराज युधिष्ठिरने बहुत दिनों तक यहाँपर वास किया था॥७०॥

महाराज युधिष्ठिरको स्वप्नमें श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्त—

एकदिन स्वप्ने देखे गौराङ्गेर रूप।
सर्वदिक आलो करे अति अपरूप॥७१॥

एक दिन स्वप्नमें अपने श्रीअङ्गोंकी छटासे सभी दिशाओंको उज्ज्वल बना देनेवाले श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके आश्चर्यजनक रूपका महाराज युधिष्ठिरने दर्शन किया॥७१॥

श्रीयुधिष्ठिर महाराजके प्रति श्रीमन् महाप्रभुके वचन—

हासिते हासिते गौर बलिल वचन।
अति गोप्यरूप एइ कर दरशन॥७२॥

आमि कृष्ण नन्दसुत तोमार आलये।
मित्रभावे थाकि सदा निजजन ह'ये॥७३॥

मुस्कराते हुए श्रीगौरहरिने युधिष्ठिर महाराजसे कहा—तुम मेरे इस दुर्लभ रूपका दर्शन करो। मैं नन्दनन्दन श्रीकृष्ण मित्रभावसे सदैव तुम्हारे घरपर परिवारके सदस्योंकी भाँति रहता हूँ॥७२-७३॥

एइ नवद्वीपधाम सर्वधामसार।
कलिते प्रकट ह'ये नाशे अन्धकार॥७४॥

यह श्रीनवद्वीपधाम अन्यान्य सभी धामोंका सारस्वरूप है। यह धाम कलियुगमें प्रकाशित होकर जीवोंके अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करता है॥७४॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा युधिष्ठिर महाराजको वर-प्रदान—

तुमि सबे आछ चिरकाले दास मम।
आमार प्रकटकाले पाइबे जनम ॥७५ ॥

तुम सभी चिरकालसे मेरे दास हो। (गौरहरिके रूपमें) मेरे आविर्भूत होनेपर तुमलोग भी पुनः जन्म प्राप्त करोगे ॥७५ ॥

उत्कलदेशेते सिन्धुतीरे तोमासह।
एकत्रे पुरुषोत्तमे रब अहरहः ॥७६ ॥

उत्कल प्रदेश (उड़ीसा) स्थित श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमें समुद्रके तटपर मैं अपना समय निरन्तर तुम्हारे साथ रहकर ही व्यतीत करूँगा ॥७६ ॥

पाण्डवोंके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका उपदेश—

एइ स्थान हैते एबे जाओ ओढ्र देश।
से देश पवित्र करि' नाश जीव-क्लेश ॥७७ ॥

अब तुमलोग यहाँसे ओढ्रदेश (उड़ीसा) में जाओ और उस स्थानको पवित्र करके जीवोंके कष्टोंको दूर करो ॥७७ ॥

पाण्डवोंका उड़ीसा-गमन—

स्वप्न देखि' युधिष्ठिर भ्रातृगणे बले।
युक्ति करि' छय जने उढ्रदेशे चले ॥७८ ॥

नींद खुलनेके बाद महाराज युधिष्ठिरने अपने भाईयोंको स्वप्नके विषयमें बताया और उनसे विचार-विमर्श करके द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव उड़ीसादेशकी ओर चलने लगे॥७८॥

नवद्वीप छाड़िते हइल बड़ क्लेश।
तथापि पालन करे प्रभुर आदेश॥७९॥

यद्यपि श्रीनवद्वीपधामको छोड़ते समय उन्हें बहुत दुःख हो रहा था, तथापि उन्होंने श्रीमन् महाप्रभुके आदेशका पालन किया॥७९॥

महत्पुरमें श्रीलमध्वाचार्यका आगमन

एइ स्थाने मध्वमुनि शिष्यगण ल'ये।
रहिलेन कतदिन धामवासी ह'ये॥८०॥

इसी स्थानपर श्रीमध्वमुनि (श्रीलमध्वाचार्य) ने अपने शिष्योंके साथ रहकर बहुत दिनों तक धामवास किया था॥८०॥

श्रीलमध्वाचार्यको स्वप्नमें श्रीमन् महाप्रभुके दर्शन-प्राप्त—

मध्वेरे करिया कृपा गौराङ्गसुन्दर।
स्वप्ने देखाइल रूप अति मनोहर॥८१॥

श्रीमन् मध्वाचार्यपर अत्यधिक कृपा करके श्रीगौराङ्गसुन्दरने स्वप्नके माध्यमसे उन्हें अपने परम मनोहर रूपका दर्शन कराया था॥८१॥

हासि' हासि' गौरचन्द्र मध्वाचार्ये बले।
''तुमि नित्यदास मम जाने त' सकले॥८२॥

मुस्कराते हुए श्रीगौरचन्द्रने श्रीमध्वाचार्यको कहा कि सभी जानते हैं, तुम मेरे नित्य दास हो॥८२॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा मध्वसम्प्रदायको स्वीकार करनेकी सूचना—

नवद्वीपे जबे आमि प्रकट हइब।
तव सम्प्रदाय आमि स्वीकार करिब॥८३॥

जब मैं श्रीनवद्वीपमें आविर्भूत होऊँगा, तब मैं तुम्हारे सम्प्रदायको स्वीकार करूँगा॥८३॥

श्रीलमध्वाचार्यके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका आदेश—

एबे सर्वदेशे तुमि करिया यतन।
मायावाद असच्छास्त्र कर उत्पाटन॥८४॥

अभी तुम अथाह प्रयास करके सभी स्थानोंसे मायावादरूपी असत् शास्त्रको जड़से उखाड़ फेंको॥८४॥

श्रीमूर्त्ति–माहात्म्य तुमि कर' परकाश।
तव शुद्ध मत आमि करिब विकाश॥"८५॥

तुम श्रीविग्रहके माहात्म्यको प्रकाशित करो। मैं तुम्हारे शुद्ध मतको और अधिक विकसित करूँगा॥८५॥

एत बलि' गौरचन्द्र हइल अन्तर्धान।
निद्रा भाङ्गि मध्वमुनि हइल अज्ञान॥८६॥

इतना कहकर श्रीगौरचन्द्र अन्तर्धान हो गये। नींद खुलनेपर स्वप्नका स्मरण करके श्रीमध्वमुनि मूर्च्छित हो गये॥८६॥

श्रीलमध्वाचार्यका विलाप—

आर कि देखिब रूप पुरटसुन्दर।
बलिया क्रन्दन करे मध्व अतःपर॥८७॥

स्वस्थ होनेपर "क्या मैं पुनः उस स्वर्ण कान्तिसे युक्त सुन्दर रूपका दर्शन कर सकूँगा"—ऐसा कहते–कहते श्रीमध्वमुनि क्रन्दन करने लगे॥८७॥

दैववाणी हैल तबे निर्मल आकाशे।
आमारे गोपने भजि' आइस मम पाशे॥८८॥

उसी समय निर्मल आकाशसे एक दैववाणी हुई कि तुम गुप्त रूपसे मेरा भजन करो। मेरे भजनके फलस्वरूप तुम मेरे ही पास आओगे॥८८॥

सुस्थिर हइया मध्वाचार्य महाशय।
मायावादी दिग्विजये करिल विजय॥८९॥

दैववाणी सुनकर श्रीमध्वाचार्य महाशयने धैर्य धारण किया और तदनन्तर मायावादियोंपर दिग्विजय प्राप्त करने हेतु निकल पड़े॥८९॥

श्रीरुद्रद्वीप

एइ सब पूर्वकथा बलिते बलिते।
रुद्रद्वीपे उपनीत देखिते देखिते॥९०॥

इन सब प्राचीन उपाख्यानोंको सुनते-सुनाते सभी लोग देखते-ही-देखते रुद्रद्वीप पहुँच गये॥९०॥

प्रभु नित्यानन्द बले,—"एइ रुद्रखण्ड।
भागीरथी-प्रभावे हइल दुइ खण्ड॥९१॥

वहाँ पहुँचकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—यह रुद्रद्वीप भागीरथीके प्रभावसे दो खण्डोंमें विभाजित हो गया है॥९१॥

लोकवास नाहि हेथा प्रभुर इच्छाय।
पश्चिमेर द्वीप देख पूर्वपारे जाय॥९२॥

श्रीमन् महाप्रभुकी इच्छासे अभी यहाँपर लोगोंका वासस्थान नहीं है। देखो! पश्चिमका द्वीप श्रीगङ्गाके कटावके कारण पूर्वपारकी ओर जा रहा है॥९२॥

श्रीशङ्करपुर

हेथा हइते देख ऐ श्रीशङ्करपुर।
शोभा पाय गङ्गातीरे देख कतदूर॥९३॥

अभी यहाँसे श्रीशङ्करपुरका दर्शन करो। देखो! यह स्थान गङ्गाके तटपर कितनी दूर तक शोभायमान है॥९३॥

श्रीशङ्कराचार्यका श्रीनवद्वीपमें आगमन

शङ्कर आचार्य जबे करे दिग्विजय।
नवद्वीप–जये तथा उपस्थित हय॥९४॥

श्रीशङ्कराचार्य दिग्विजय करते समय एकबार श्रीनवद्वीपपर विजय प्राप्त करने हेतु यहाँपर उपस्थित हुए थे॥९४॥

वैष्णवराज श्रीशङ्कराचार्य—

मनेते वैष्णवराज आचार्य शङ्कर।
बाहिरे अद्वैतवादी मायार किङ्कर॥९५॥

यद्यपि मनसे आचार्य शङ्कर वैष्णवराज ("वैष्णवानां यथा शम्भु") थे, तथापि बाहरसे उन्होंने (मायावादी) मायाके दास अद्वैतवादी संन्यासीका वेष धारण किया हुआ था॥९५॥

परम स्वतन्त्र श्रीभगवान्‌की आज्ञासे श्रीशङ्कराचार्य द्वारा प्रच्छन्न बौद्धमतका प्रचार—

निजे रुद्र–अंश सदा प्रतापे प्रचुर।
प्रच्छन्न बौद्धेर मत प्रचारेते शूर॥९६॥

यद्यपि वे स्वयं रुद्र (शङ्कर) के अंश थे और बहुत प्रतिभाशाली थे। तथापि उन्होंने बहुत दक्षतापूर्वक प्रच्छन्न बौद्धमतका प्रचार किया॥९६॥

श्रीशङ्कराचार्यके प्रति श्रीमन् महाप्रभुकी आज्ञा—

प्रभुर आज्ञाय रुद्र एइ कार्य करे।
आइलेन जबे तेंह नदीया–नगरे॥९७॥

स्वप्ने प्रभु गौरचन्द्र दिला दरशन।
कृपा करि' बले ता'रे मधुर वचन॥९८॥

''तुमि त' आमार दास मम आज्ञा धरि'।
प्रचारिछ मायावाद बहु यत्न करि'॥९९॥

भगवान्‌की आज्ञासे ही श्रीशङ्कराचार्य मायावादका प्रचार कर रहे थे। जब वे नदिया नगरमें आये, तब श्रीगौरचन्द्रने उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और कृपापूर्वक मधुर वचनोंसे कहा—तुम तो मेरे दास हो। तुम मेरी आज्ञाका पालन करते हुए बहुत परिश्रमसे मायावादका प्रचार कर रहे हो॥९७-९९॥

एइ नवद्वीपधाम मम प्रिय अति।
हेथा मायावाद कभु ना पाइबे गति॥१००॥

किन्तु यह श्रीनवद्वीपधाम मुझे बहुत प्रिय है, इसलिए यहाँपर मायावादका प्रचार सम्भवपर नहीं है॥१००॥

वृद्धशिव हेथा प्रौढ़ामायारे लइया।
कल्पित आगमगणे देन प्रचारिया॥१०१॥
मम भक्तगणे द्वेष करे जेइ जन।
ताहारे केवल तेंह करेन वञ्चन॥१०२॥

वृद्धशिव यहाँपर प्रौढ़ामायाको अपने साथ लेकर आगम शास्त्रकी कल्पित व्याख्याका प्रचार

करते हैं, किन्तु केवल उन्हीं लोगोंमें, जो मेरे भक्तोंसे द्वेष करते हैं, क्योंकि वे उनकी वञ्चना करना चाहते हैं॥१०१-१०२॥

मायावाद एक दुष्टमत—

एइस्थाने साधारणे मम भक्त हय।
दुष्टमत-प्रचारेर स्थान इहा नय॥१०३॥

साधारणतः यह स्थान मेरे भक्तोंका होनेके कारण मायावाद जैसे दुष्टमतोंका प्रचार करनेके लिए उपयुक्त नहीं है॥१०३॥

अतएव तुमि कर अन्यत्र गमन।
नवद्वीपवासीगणे ना कर पीड़न॥"१०४॥

अतएव तुम किसी दूसरे स्थानपर चले जाओ, नवद्वीपवासियोंको पीड़ा मत पहुँचाओ॥१०४॥

श्रीशङ्कराचार्यका अन्य स्थानपर प्रस्थान—

स्वप्ने नवद्वीप-तत्त्व जानिया तखन।
भक्त्यावेशे अन्य देशे करिल गमन॥१०५॥

स्वप्नमें श्रीनवद्वीपके तत्त्वको जानकर श्रीशङ्कराचार्य भक्तिके आवेशमें भरकर (श्रीमन् महाप्रभुकी दूसरे

स्थानपर जानेकी आज्ञाका पालन करने हेतु प्रसन्नचित्तसे) दूसरे स्थानपर चले गये॥१०५॥

रुद्रद्वीप (ग्यारह रुद्रोंका स्थान)

एइ रुद्रद्वीप हय रुद्रगणस्थान।
हेथा रुद्रगण गौर–गुण करे गान॥१०६॥

यह रुद्रद्वीप (ग्यारह) रुद्रोंका स्थान है। यहाँपर वे सभी एकसाथ मिलकर श्रीगौरहरिका गुणगान करते हैं॥१०६॥

श्रीनीललोहित रुद्र—

श्रीनील–लोहित–रुद्रगण अधिपति।
महानन्दे नृत्य हेथा करे निति निति॥१०७॥

श्रीनीललोहित वर्णवाला रुद्र (जिनका कण्ठ नीला और मस्तक लोहित वर्ण है) इन सभी रुद्रोंके अधिपति हैं। वे निरन्तर यहाँपर अत्यधिक आनन्दित होकर नृत्य करते हैं॥१०७॥

रुद्रनृत्य देखि' आकाशेते देवगण।
आनन्देते करे सबे पुष्प वरिषण॥१०८॥

उनके नृत्यको देखकर आकाशसे देवता लोग भी आनन्दित होकर पुष्पोंकी वर्षा करते हैं॥१०८॥

श्रीनवद्वीपमें श्रीविष्णुस्वामीका आगमन

कदाचित् विष्णुस्वामी आसि' दिग्विजये।
रुद्रद्वीपे रहे रात्रे शिष्यगण ल'ये॥१०९॥

कभी एक समय श्रीविष्णुस्वामी भी दिग्विजय करते हुए अपने शिष्योंके साथ यहाँपर उपस्थित हुए थे और इसी रुद्रद्वीपमें ही उन्होंने रात बितायी थी॥१०९॥

'हरि' 'हरि' बलि' नृत्य करे शिष्यगण।
विष्णुस्वामी श्रुति–स्तुति करेन पठन॥११०॥

यहींपर "हरि, हरि" कहते हुए उनके सभी शिष्य नृत्य करने लगे और स्वयं श्रीविष्णुस्वामी श्रुतियोंमें वर्णित कुछ स्तुतियाँ पाठ करने लगे॥११०॥

श्रीविष्णुस्वामीको नीललोहित रुद्रके दर्शन प्राप्त—

भक्ति आलोचना देखि' ह'ये हरषित।
कृपा करि' देखा दिल श्रीनील–लोहित॥१११॥

भक्तिकी आलोचना होते देखकर श्रीनीललोहित रुद्रने अत्यधिक प्रसन्नचित्तसे कृपापूर्वक उन्हें अपना दर्शन दिया॥१११॥

श्रीविष्णुस्वामी द्वारा श्रीनीललोहित रुद्रकी स्तुति—

वैष्णव–सभाय रुद्र हइल उपनीत।
देखि' विष्णुस्वामी अति हैल चमकित॥११२॥
कर जुड़ि' स्तव करे विष्णु ततक्षण।
दयार्द्र हइया रुद्र बलेन वचन॥११३॥
"तोमरा वैष्णवजन मम प्रिय अति।
भक्ति–आलोचना देखि' तुष्ट मम मति॥११४॥

जैसे ही श्रीनीललोहित रुद्र वैष्णव सभामें उपस्थित हुए, उनके रूपको देखकर श्रीविष्णु–स्वामी अत्यधिक आश्चर्य–चकित होकर उसी समय हाथ जोड़कर उनका स्तव करने लगे। उनके प्रति दयालु होकर रुद्र कहने लगे—तुम वैष्णवलोग मुझे बहुत प्रिय हो। तुमलोगोंको भक्तिकी आलोचना करते देखकर मेरा मन बहुत सन्तुष्ट हुआ॥११२–११४॥

श्रीनीललोहित रुद्रका स्नेहपूर्ण आदेश—

वर माग दिब आमि हइया सदय।
वैष्णवेर अदेय मोर किछु नाहि हय॥"११५॥

तुम मुझसे अपनी इच्छानुसार वर माँगो। मैं दयापूर्वक तुम्हें मुँहमाँगा वर प्रदान करूँगा, क्योंकि

ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसे मैं वैष्णवोंको प्रदान नहीं करता॥११५॥

श्रीविष्णुस्वामी द्वारा वर-प्रार्थना—

दण्डवत् प्रणमिया विष्णु महाशय।
कर जुड़ि' वर मागे प्रेमानन्दमय॥११६॥

"एइ वर देह प्रभु आमा सबाकारे।
भक्ति-सम्प्रदाय सिद्धि लभि अतःपरे॥"११७॥

दण्डवत् प्रणाम करनेके उपरान्त श्रीविष्णुस्वामी हाथ जोड़कर परमान्दित होते हुए वर माँगने लगे—हे प्रभो! आप हम सभीको ऐसा वर दीजिये, जिससे हम सभी किसी भक्ति-सम्प्रदायमें सिद्धि प्राप्त कर सकें॥११६-११७॥

श्रीनीललोहित रुद्र द्वारा वर प्रदान—

परम आनन्दे रुद्र वर करि' दान।
निज-सम्प्रदाय बलि' करिल आख्यान॥११८॥

श्रीरुद्रने परम आनन्दपूर्वक उन्हें वर प्रदान किया, और उन्हें अपने सम्प्रदायमें स्वीकृति प्रदान की॥११८॥

परमान्दित श्रीविष्णुस्वामीका नृत्य—

सेइ हैते विष्णुस्वामी स्वीय सम्प्रदाय।
श्रीरुद्र–नामेते ख्याति दिया नाचे गाय॥११९॥

तबसे श्रीविष्णुस्वामी अपने सम्प्रदायको श्रीरुद्र–सम्प्रदायके नामसे प्रचार करते हुए नृत्य और गान करने लगे॥११९॥

रुद्रकृपाबले विष्णु एइ स्थाने रहिया।
भजिब श्रीगौरचन्द्र प्रेमेर लागिया॥१२०॥

रुद्रकी कृपासे श्रीविष्णुस्वामी प्रेम–प्राप्ति हेतु इसी स्थानपर रहकर श्रीगौरचन्द्रका भजन करने लगे॥१२०॥

भगवत्–कृपा, भक्त–कृपाकी अनुगमिनी—

स्वप्ने आसि' श्रीगौराङ्ग विष्णुरे बलिल।
मम भक्त रुद्र कृपा तोमारे हइल॥१२१॥

स्वप्नमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने श्रीविष्णुस्वामीको कहा कि तुमपर मेरे भक्त रुद्रकी कृपा हुई है॥१२१॥

श्रीविष्णुस्वामीके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका उपदेश—

धन्य तुमि नवद्वीपे पाइले भक्तिधन।
शुद्धाद्वैत–मत प्रचारह एइक्षण॥१२२॥

तुम धन्य हो! क्योंकि तुमने श्रीनवद्वीपमें भक्तिरूपी धनको प्राप्त किया है। अब तुम शुद्धाद्वैत मतका प्रचार करो॥१२२॥

श्रीमन् महाप्रभुकी प्रकटलीलाके समय श्रीविष्णुस्वामीका श्रीवल्लभभट्टके रूपमें जन्म-ग्रहण—

कतदिने ह'बे मोर प्रकट-समय।
श्रीवल्लभभट्ट-रूपे हइबे उदय॥१२३॥

कुछ समयके बाद जब मैं (श्रीगौरहरिके रूपमें) आविर्भूत होऊँगा, तब तुम भी श्रीवल्लभभट्टके रूपमें जन्म ग्रहण करोगे॥१२३॥

श्रीक्षेत्रे आमारे तुमि करि' दरशने।
सम्प्रदाये सिद्धि पाबे गिया महावने॥१२४॥

श्रीक्षेत्रमें मेरे दर्शन करनेके पश्चात् तुम महावन जाकर अपने सम्प्रदायको पुष्ट करोगे॥१२४॥

ओहे जीव! श्रीवल्लभ गोकुले एखन।
तुमि तथा गेले पा'बे ता'र दरशन॥१२५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! श्रीवल्लभाचार्य इस समय गोकुलमें ही हैं। तुम जब व्रजमें जाओगे, तो तुम्हें उनके दर्शन प्राप्त होंगे॥१२५॥

पारडाङ्गा

एत बलि' नित्यानन्द दक्षिणाभिमुखे।
पारडाङ्गा श्रीपुलिने चलिलेन सुखे॥१२६॥

इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पारडाङ्गा नामक श्रीपुलिनकी ओर सुखपूर्वक चलने लगे॥१२६॥

श्रीनवद्वीपमें श्रीरासमण्डल और श्रीधीरसमीरका स्थान—

पुलिने जाइया प्रभु नित्यानन्दराय।
श्रीरासमण्डल धीरसमीर देखाय॥१२७॥

श्रीभागीरथीके पुलिनपर जाकर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीरासमण्डल और श्रीधीरसमीरके दर्शन कराने लगे॥१२७॥

बले,—''जीव! एइ देख नित्य-वृन्दावन।
वृन्दावन-लीला हेथा पाय दरशन॥''१२८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—हे जीव! इस नित्य वृन्दावनका दर्शन करो। यहाँपर वृन्दावनमें हुई लीलाओंका दर्शन प्राप्त होता है॥१२८॥

दिव्य श्रीवृन्दावनका नाम-श्रवण करनेमात्रसे ही श्रीजीवमें प्रेमका उदय—

वृन्दावन शुनि' जीव प्रेमेते विह्वल।
नयनेते बहे दरदर प्रेमजल॥१२९॥

वृन्दावनका नाम सुनकर जीव प्रेमसे विह्वल हो गये और उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी॥१२९॥

प्रभु बले,—श्रीगौराङ्ग ल'ये भक्तजन।
एइ स्थाने रास-पद्य करिल कीर्त्तन॥१३०॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने अपने भक्तों सहित इस स्थानपर रासलीलाके श्लोकोंका कीर्त्तन किया था॥१३०॥

रासलीला-स्थली श्रीवंशीवट

महारास-लीलास्थान यथा वृन्दावने।
तथा एइ स्थान जीव जाह्नवी-पुलिने॥१३१॥

हे जीव! वृन्दावनमें जो महारासस्थली (वंशीवट) नामक लीलाभूमि है, वही नवद्वीपमें जाह्नवीका पुलिन है॥१३१॥

सौभाग्यशाली व्यक्तिको भगवान्‌की रासलीलाके दर्शन प्राप्त—

नित्यरास हय हेथा गोपीगण—सने।
दरशन करे प्रभु भाग्यवान् जने॥१३२॥

यहाँपर श्रीकृष्ण नित्यप्रति गोपियोंके साथ रासलीला करते हैं। कभी-कभी कोई सौभाग्यशाली जीव उसका दर्शन करते हैं॥१३२॥

इहार पश्चिमे देख श्रीधीरसमीर।
भजनेर स्थान एइ शुन ओहे धीर॥१३३॥

रासस्थलीके पश्चिममें श्रीधीरसमीरका दर्शन करो। हे परम बुद्धिमान और गम्भीर जीव! सुनो। यह भजनका स्थान है॥१३३॥

श्रीधीरसमीर

ब्रजे धीरसमीर ये यमुनार तीरे।
सेइ स्थान हेथा गङ्गापुलिन—भीतरे॥१३४॥

व्रजमें जो धीरसमीर यमुनाके तटपर विराजमान है, वही यहाँपर गङ्गाके तटपर स्थित है॥१३४॥

देखिते गङ्गार तीर, वस्तुतः ता' नय।
गङ्गार पश्चिमधारे श्रीयमुना वय॥१३५॥

देखनेमें तो यह गङ्गाका तट लगता है, किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है, क्योंकि गङ्गाके पश्चिम तटपर श्रीयमुना बहती हैं॥१३५॥

यमुनार तीरे एइ पुलिन सुन्दर।
अतएव वृन्दावन बले विश्वम्भर॥१३६॥

इसलिए तो यमुनाके तटपर स्थित इस सुन्दर पुलिनको श्रीशचीनन्दन वृन्दावन कहकर पुकारते थे॥१३६॥

वृन्दावने जत स्थान लीलार आछय।
से-सब जानह जीव एइ स्थाने हय॥१३७॥

वृन्दावनमें लीलाके जितने भी स्थान हैं। हे जीव! वे सभी यहाँपर विराजमान हैं॥१३७॥

नवद्वीप अभिन्न वृन्दावन, श्रीगौर और श्रीकृष्णमें अभेद—

वृन्दावने-नवद्वीपे किछु नाहि भेद।
गौर-कृष्णे कभु नाहि करिबे प्रभेद॥१३८॥

श्रीधाम वृन्दावन और श्रीनवद्वीपधाममें कुछ भी भेद नहीं है। हे जीव! तुम श्रीगौरहरि और श्रीकृष्णमें कभी भी भेद मत देखना॥१३८॥

महाभावे गरगर नित्यानन्दराय।
वृन्दावन देखाइया 'जीवे' ल'ये जाय॥१३९॥

महाभावमें डूबकर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीजीवको वृन्दावनके दर्शन करानेके उपरान्त आगे बढ़ने लगे॥१३९॥

कतदूरे उत्तरेते करिया गमन।
रुद्रद्वीपे सेइ रात्रि करिल यापन॥१४०॥

कुछ दूर उत्तर दिशाकी ओर जाकर रुद्रद्वीपमें ही उन्होंने रात व्यतीत की॥१४०॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा-पद जाहार सम्पद।
नदीया-माहात्म्य गाय से भक्तिविनोद॥१४१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमल ही जिनकी एकमात्र सम्पत्ति है, उसी भक्तिविनोद द्वारा श्रीनदियाके माहात्म्यका गान किया जा रहा है॥१४१॥

पञ्चदश अध्याय समाप्त।

षोडश अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय नदीयाविहारी–गौरचन्द्र।
जय एकचक्रा–पति प्रभु–नित्यानन्द॥१॥

नदियाविहारी श्रीगौरचन्द्रकी जय हो! जय हो। एकचक्रा नामक ग्रामके अधिपति श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो॥१॥

जय शान्तिपुरनाथ अद्वैत ईश्वर।
रामचन्द्रपुरवासी जय गदाधर॥२॥

शान्तिपुरके नाथ श्रीअद्वैत प्रभुकी जय हो। रामचन्द्रपुरके निवासी श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो॥२॥

जय जय गौड़भूमि चिन्तामणिसार।
कलियुगे कृष्ण यथा करिला विहार॥३॥

चिन्तामणिके सारस्वरूप उस श्रीगौड़मण्डलकी जय हो! जय हो। जहाँपर कलियुगमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी लीलाएँ की हैं॥३॥

श्रीबिल्वपुष्करिणी, व्रजका बेलवन

श्रीजाह्नवी पार ह'ये पद्मार नन्दन।
किछुदूरे गिया बले देख भक्तगण॥४॥
बिल्वपक्ष—नाम एइ स्थान मनोहर।
बेलपुखुरिया बलि' बले सर्व नर॥५॥

पद्मावतीनन्दन श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीजाह्नवीको पार करके कुछ दूर तक चलनेके उपरान्त भक्तोंसे कहने लगे—देखो! बिल्वपक्ष नामक यह स्थान परम मनोहर है। आजकल सभी इसे बेलपुखुरिया (बेलपुखुर) कहते हैं॥४-५॥

व्रजधामे जारे शास्त्रे बले बिल्ववन।
नवद्वीपे सेइ स्थान कर दरशन॥६॥

शास्त्र व्रजधाममें जिस स्थानको बिल्ववन (बेलवन) कहते हैं, नवद्वीपमें उसी स्थानका दर्शन करो॥६॥

पञ्चमुख बिल्वकेश नामक शिवका स्थान—

पञ्चवक्त्र बिल्वकेश आछिल हेथाय।
एकपक्ष बिल्वदले आराधिया ताँय॥७॥
ब्राह्मण सज्जनगणे तुषिल ताँहारे।
कृष्णभक्ति वर दिल ताहा सबाकारे॥८॥

यहाँपर पञ्चमुख बिल्वकेश नामक शिवजी विराजमान थे, अनेक ब्राह्मणोंने पन्द्रह दिनों तक बेलके पत्तों द्वारा उनकी आराधना की थी। श्रीशिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें श्रीकृष्णभक्तिका वर प्रदान किया था॥७-८॥

श्रीनवद्वीपमें श्रीनिम्बादित्य

सेइ विप्रगण-मध्ये निम्बादित्य छिल।
विशेष करिया पञ्चवक्त्रे आराधिल॥९॥

उन ब्राह्मणोंमें श्रीनिम्बादित्य भी विद्यमान थे, उन्होंने बहुत भक्तिपूर्वक पञ्चमुख शङ्करजीकी आराधना की॥९॥

आशुतोष श्रीशिव द्वारा श्रीनिम्बादित्यका पारमार्थिक पथ-प्रदर्शन—

कृपा करि' पञ्चवक्त्र कहिल तखन।
''एइ ग्राम-प्रान्ते आछे दिव्य बिल्ववन॥१०॥

उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर पञ्चमुख शङ्करने श्रीनिम्बादित्यको कहा—इस ग्रामकी सीमापर एक दिव्य बिल्ववन (बेलवन) है॥१०॥

सेइ वनमध्ये चतुःसन आछे ध्याने।
ताँदेर कृपाय तव ह'बे दिव्यज्ञाने॥११॥

उस वनमें चतुःसन (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) ध्यानमें मग्न हैं। उनकी कृपासे तुम्हें दिव्यज्ञानकी प्राप्ति होगी॥११॥

गुरुकृपासे सर्वार्थ सिद्धि—

चतुःसन गुरु तव, ताँदेर सेवाय।
सर्व अर्थ लाभ तव हइबे हेथाय॥"१२॥

चतुःसन तुम्हारे गुरु हैं। उनकी सेवासे तुम्हारी सब प्रकारकी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी॥१२॥

श्रीनिम्बादित्यका बिल्ववनमें आगमन—

एत बलि' महेश्वर हइल अन्तर्धान।
निम्बादित्य अन्वेषण करि' पाय स्थान॥१३॥

इतना कहकर महेश्वर अन्तर्धान हो गये। श्रीनिम्बादित्य उनके द्वारा बताये गये स्थानको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इस बिल्ववनमें आ पहुँचे॥१३॥

श्रीनिम्बादित्यको चतुःसनके दर्शन प्राप्त—

बिल्ववन-मध्ये देखे वेदी मनोहर।
चतुःसन बसियाछे ताहार ऊपर॥१४॥

सनक, सनन्द आर ऋषि सनातन।
श्रीसनत्कुमार—एइ ऋषि चारिजन॥१५॥

उन्होंने श्रीसनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार नामक चार ऋषियोंको बिल्ववनमें एक सुन्दर वेदीके ऊपर बैठे हुए देखा॥१४-१५॥

चतुःसनका उदार चरित्र—

वृद्धकेश—सन्निधाने अन्य अलक्षित।
वस्त्रहीन सुकुमार उदार चरित॥१६॥

वृद्धकेश नामक शिवके निकट बैठे हुए परम उदार-चरित्रवाले उन चार वस्त्रहीन सुकुमारोंको कोई भी साधारण व्यक्ति नहीं देख सकता था॥१६॥

श्रीनिम्बादित्य द्वारा 'हरे कृष्ण' नामका उच्चारण—

देखि' निम्बादित्याचार्य परम कौतुके।
'हरे कृष्ण' 'हरे कृष्ण' डाकि' बले सुखे॥१७॥

उन्हें देखकर श्रीनिम्बादित्याचार्य उत्सुकतापूर्वक अत्यधिक आनन्दसे भरकर "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण" कहकर पुकारने लगे॥१७॥

हरिनामके श्रवणसे श्रीचतुःसनका ध्यान भङ्ग—

हरिनाम शुनि' काने ध्यान भङ्ग हैल।
सम्मुखे वैष्णवमूर्त्ति देखिते पाइल॥१८॥

हरिनाम सुननेसे उनका ध्यान भङ्ग हो गया और उन्होंने अपने समक्ष एक वैष्णवको खड़े हुए देखा॥१८॥

श्रीनिम्बादित्यके प्रति श्रीचतुःसनकी अपार करुणा—

वैष्णव देखिया सबे ह'ये हृष्टमन।
निम्बादित्ये क्रमे क्रमे देय आलिङ्गन॥१९॥

उन चारों कुमारोंने प्रसन्नतापूर्वक एक-एक करके श्रीनिम्बादित्यको आलिङ्गन प्रदान किया॥१९॥

चतुःसन द्वारा श्रीनिम्बादित्यका परिचय-जिज्ञासा—

"के तुमि, केन वा हेथा बल परिचय।
तोमार प्रार्थना मोरा पुरा'ब निश्चय॥"२०॥

उन्होंने श्रीनिम्बादित्यसे पूछा—तुम कौन हो? यहाँ किसलिए आये हो? अपना परिचय बताओ। हम तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण करेंगे॥२०॥

श्रीनिम्बादित्य द्वारा अपना परिचय प्रदान—

शुनि' निम्बादित्य दण्डवत् प्रणमिया।
निज परिचय देय विनीत हइया॥२१॥

उनकी बात सुनकर सबसे पहले श्रीनिम्बादित्यने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् विनीत होकर अपना परिचय देने लगे॥२१॥

परम कृपामय भगवान्‌का दृढ़ निश्चय—

निम्बार्कैर परिचय करिया श्रवण।
श्रीसनत्‌कुमार कय सहास्य वदन॥२२॥
"कलि घोर हइबे जानिया कृपामय।
भक्ति प्रचारिते चित्ते करिल निश्चय॥२३॥

श्रीनिम्बार्क (श्रीनिम्बादित्य) का परिचय जानकर श्रीसनत् कुमारने मुस्कराते हुए कहा—घोर कलियुग आनेवाला है। ऐसा जानकर जीवोंके परम कल्याण हेतु परम कृपामय सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्णने अपने चित्तमें भक्तिका प्रचार करनेका दृढ़ निश्चय किया॥२२-२३॥

भक्तिके प्रचार हेतु भगवान् द्वारा चार वैष्णव आचार्योंको प्रेरण—

चारिजन भक्ते शक्ति करिया अर्पण।
भक्ति प्रचारिते विश्वे करिल प्रेरण॥२४॥

भगवान्‌ने चार भक्तोंमें अपनी शक्तिका सञ्चार करके उन्हें जगत्‌में भक्तिका प्रचार करने हेतु भेजा॥२४॥

रामानुज, मध्व, विष्णु—एइ तिनजन।
तुमि त' चतुर्थ हओ भक्त महाजन॥२५॥

वे चार भगवत्-शक्तिसम्पन्न महाजन श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और हे भक्तप्रवर! चौथे तुम हो॥२५॥

'श्री'-देवी करिल रामानुजे अङ्गीकार।
ब्रह्मा मध्वाचार्ये, रुद्र विष्णुके स्वीकार॥२६॥

श्रीलक्ष्मीदेवीने श्रीरामानुजाचार्यको, श्रीब्रह्माने श्रीमध्वाचार्यको और श्रीरुद्रने श्रीविष्णुस्वामीको अपने अपने भक्ति-सम्प्रदायमें अङ्गीकार किया है॥२६॥

सद्गुरुकी अपेक्षा सद्शिष्यका मिलना दुर्लभ—

आमरा तोमाके आज जानिनु आपन।
शिष्य करि' धन्य हइ, एइ प्रयोजन॥२७॥

आजसे हम तुम्हें अपने भक्ति-सम्प्रदायमें स्वीकार कर रहे हैं। तुम्हें अपना शिष्य बनाकर धन्य हो जाना ही हमारा प्रयोजन है॥२७॥

श्रीसनत् कुमार द्वारा अपने पूर्व इतिहासका वर्णन—

पूर्वे मोरा अभेद-चिन्ताय छिनु रत।
कृपायोगे सेइ पाप हैल दूरगत॥२८॥

हम पहले अभेद ब्रह्मज्ञानकी चिन्तामें निमग्न रहते थे, किन्तु भगवान्‌की विशेष कृपासे हमारा वह पाप दूर हो गया है॥२८॥

एबे शुद्धभक्ति अति उपादेय जानि'।
संहिता रचना करियाछि एकखानि॥२९॥

अब हमने जान लिया है कि शुद्धभक्ति ही उत्कृष्ट वस्तु है। हमने भक्तिपर आधारित एक संहिताकी रचना भी की है॥२९॥

सनत्कुमार-संहिता इहार नाम हय।
एइमते दीक्षा तव हइबे निश्चय॥३०॥

उसका नाम सनत्कुमार-संहिता है। उसी संहिताके मतानुसार ही तुम्हारी दीक्षा होगी॥३०॥

परम बुद्धिमान श्रीनिम्बादित्य—

गुरु-अनुग्रह देखि' निम्बार्क धीमान्।
अविलम्बे आइला करि' भागीरथी-स्नान॥३१॥

श्रीगुरुपादपद्मके ऐसे अनुग्रहको देखकर बुद्धिमान श्रीनिम्बार्क बिना किसी विलम्बके भागीरथीमें स्नान करके आये॥३१॥

गुरुपादाश्रय—

साष्टाङ्गे पड़िया बले सदैन्य वचन।
"ए अधमे तार' नाथ पतितपावन॥"३२॥

उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम करके दीनतापूर्वक कहा कि हे नाथ! पतितपावन! इस अधमका उद्धार कीजिये॥३२॥

श्रीनिम्बादित्यको युगल-मन्त्रकी प्राप्ति—

चतुःसन कैल श्रीयुगल-मन्त्र दान।
भावमार्गे उपासना करिल विधान॥३३॥

श्रीचतुःसनने उन्हें युगल (श्रीराधाकृष्णका) मन्त्र प्रदान किया तथा भावमार्गसे श्रीराधाकृष्णकी आराधना करनेकी शिक्षा प्रदान की॥३३॥

मन्त्र लभि' निम्बादित्य सिद्धपीठस्थाने।
उपासना करिलेन संहिता-विधाने॥३४॥

मन्त्र प्राप्त करके श्रीनिम्बादित्य आचार्यने इसी सिद्ध पीठमें बैठकर सनत्कुमार-संहिताके मतानुसार युगलकिशोरकी आराधना की॥३४॥

श्रीनिम्बादित्यकी मन्त्र-सिद्धि—

कृपा करि' राधाकृष्ण ता'रे देखा दिल।
रूपेर छटाय चतुर्दिके आलो हैल॥३५॥

श्रीराधाकृष्णने कृपा करके उन्हें अपना दर्शन प्रदान किया। श्रीराधाकृष्णके रूपकी छटासे चारों दिशाओंमें प्रकाश छा गया॥३५॥

श्रीराधाकृष्ण द्वारा श्रीगौरतत्त्वका वर्णन—

मृदु मृदु हासिमुखे बलेन वचन।
धन्य तुमि निम्बादित्य करिले साधन॥३६॥

अतिप्रिय नवद्वीप आमा दोंहाकार।
हेथा दोंहे एकरूप शचीर कुमार॥३७॥

मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उन्होंने कहा—हे निम्बादित्य! तुम धन्य हो। तुमने इस नवद्वीपमें बैठकर हमारी आराधना की है। यह नवद्वीप हम दोनोंको बहुत प्रिय है। हम दोनों यहाँपर मिलकर एक ही रूप धारण करके श्रीशचीनन्दनके रूपमें सदैव वास करते हैं॥३६-३७॥

श्रीराधाकृष्णका गौररूपमें दर्शन—

बलिते बलिते गौर-रूप प्रकाशिल।
रूप देखि निम्बादित्य विह्वल हइल॥३८॥

इतना कहते-कहते उन्होंने अपने गौररूपको प्रकाशित किया। उनके उस रूपको देखकर श्रीनिम्बादित्य परम विह्वल हो गये॥३८॥

बले,—"कभु नाहि देखि, नाहि शुनि काने।
हेन अपूर्व रूप आछे कोनखाने॥"३९॥

श्रीनिम्बादित्यने कहा—मैंने न तो कभी ऐसे अपूर्व रूपका दर्शन किया है और न ही अपने कानोंसे ऐसे रूपके विषयमें कभी श्रवण किया है॥३९॥

श्रीनिम्बादित्यके प्रति श्रीमन् महाप्रभुके स्नेहपूर्ण वचन—

कृपा करि' महाप्रभु बलिल तखन।
"ए रूप गोपन एबे कर महाजन॥४०॥

श्रीमन् महाप्रभुने कृपा करके कहा—हे निम्बादित्य महाजन! अभी इस रूपके विषयमें किसीको कुछ मत बताना, इसे गुप्त रखना॥४०॥

प्रचारह कृष्णभक्ति युगल–विलास।
युगल–विलासे मोर अत्यन्त उल्लास॥४१॥

अभी तुम युगल–विलासरूपी कृष्णभक्तिका प्रचार करो। हे निम्बार्क! युगल–विलासमें मुझे अत्यन्त उल्लासकी प्राप्ति होती है॥४१॥

जे–समये गौररूप प्रकट हइबे।
श्रीविद्याविलासे तबे बड़ रङ्ग ह'बे॥४२॥

जिस समय मेरा गौररूप प्रकाशित होगा। उस समय मैं विद्या-विलासरूपी अनेक लीलाएँ करूँगा॥४२॥

श्रीगौरलीलाके समय श्रीनिम्बादित्यका केशव काश्मीरीके रूपमें जन्म—

से-समये काश्मीर-प्रदेशे जन्म ल'ये।
भ्रमिबे भारतवर्ष दिग्विजयी ह'ये॥४३॥

उस समय तुम काश्मीर-प्रदेशमें जन्म ग्रहण करोगे और पूरे भारतवर्षमें दिग्विजयी बनकर भ्रमण करोगे॥४३॥

केशवकाश्मीरी-नामे सकले तोमाय।
महाविद्यावान् बलि' सर्वत्रेते गाय॥४४॥

तुम्हारा नाम केशव काश्मीरी होगा तथा सभी तुम्हें महाविद्वान मानेंगे॥४४॥

भ्रमिते भ्रमिते एइ नवद्वीपधामे।
आसिया थाकिबे तुमि मायापुर-ग्रामे॥४५॥

भ्रमण करते-करते तुम इस श्रीनवद्वीपधाममें आकर श्रीमायापुर ग्राममें रहोगे॥४५॥

नवद्वीपे बड़ बड़ अध्यापकगण।
तव नाम शुनि' करिबेक पलायन॥४६॥

श्रीनवद्वीपके बड़े–बड़े अध्यापक तुम्हारा नाम सुननेमात्रसे ही पलायन कर जायेंगे॥४६॥

आमि त' तखन विद्याविलासे मातिब।
पराजिया तोमा सबे आनन्द लभिब॥४७॥

उस समय मैं विद्याविलासके रसमें मत्त रहूँगा, इसलिए तुम्हें पराजित करके मैं सभी बालकोंके साथ बहुत आनन्दित होऊँगा॥४७॥

सरस्वती–कृपाबले जानि मम तत्त्व।
आश्रय करिबे मोरे छाड़िया महत्त्व॥४८॥

देवी सरस्वतीकी कृपासे तुम मेरे तत्त्वको जान जाओगे और अपने अहङ्कारको छोड़कर मेरा आश्रय स्वीकार करोगे॥४८॥

भक्ति दान करि' आमि तोमारे तखन।
भक्ति प्रचारिते पुनः करिब प्रेरण॥४९॥

तुम्हें भक्तिका दान करनेके उपरान्त मैं पुनः तुम्हें भक्तिका प्रचार करनेके लिए भेजूँगा॥४९॥

श्रीनिम्बादित्यके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका आदेश—

अतएव द्वैताद्वैत—मत प्रचारिया।
तुष्ट कर एबे मोरे गोपन करिया॥५०॥

अतएव अभी मेरे स्वरूपको गुप्त रखकर तुम द्वैताद्वैत (निम्बार्क) मतका प्रचार करके मुझे सन्तुष्ट करो॥५०॥

अचिन्त्यभेदाभेद, द्वैताद्वैत मतका सार—

जबे आमि सङ्कीर्त्तन आरम्भ करिब।
तोमादेर मत—सार निजे प्रचारिब॥५१॥

जब मैं प्रकट होकर सङ्कीर्त्तन आरम्भ करूँगा, उस समय मैं भी तुम्हारे द्वैताद्वैत मतके सारका प्रचार करूँगा॥५१॥

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा चारों वैष्णव-सम्प्रदायोंकी दो-दो सार वस्तुओंको ग्रहण करना

श्रीमध्व—सम्प्रदायकी दो सार वस्तुएँ—

मध्व हइते सारद्वय करिब ग्रहण।
एक हय केवल—अद्वैत निरसन॥५२॥
कृष्णमूर्त्ति नित्य जानि' ताँहार सेवन।
सेइ त' द्वितीय सार जान महाजन॥५३॥

हे महाजन! मैं मध्व-सम्प्रदायसे केवलाद्वैतका खण्डन और श्रीकृष्णके विग्रहको नित्य मानकर उनकी सेवा नामक दो सार वस्तुओंको ग्रहण करूँगा॥५२-५३॥

श्रीरामानुज-सम्प्रदायकी दो सार वस्तुएँ—

रामानुज हैते आमि लइ दुइ सार।
अनन्य भकति, भक्तजन-सेवा आर॥५४॥

श्रीरामानुजसे अनन्यभक्ति और भक्तोंकी सेवा नामक दो सार वस्तुओंको स्वीकार करूँगा॥५४॥

श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायकी दो सार वस्तुएँ—

विष्णु हैते दुइ सार करिब स्वीकार।
त्वदीय-सर्वस्व-भाव, रागमार्ग आर॥५५॥

श्रीविष्णुस्वामीसे त्वदीय-सर्वस्व-भाव (भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे सर्वस्व हैं) और रागमार्ग नामक दो सार वस्तुओंको स्वीकार करूँगा॥५५॥

श्रीनिम्बादित्य-सम्प्रदायकी दो सार वस्तुएँ—

तोमा हैते लब आमि दुइ महासार।
एकान्त राधिकाश्रय, गोपीभाव आर॥"५६॥

तुम्हारे (श्रीनिम्बादित्य-सम्प्रदायसे) भी एकान्त राधिकाश्रय (अनन्य भावसे श्रीमती राधाजीके श्रीचरणकमलोंका आश्रय)[१] और गोपीभाव नामक दो महासार वस्तुओंको स्वीकार करूँगा॥५६॥

एत बलि' गौरचन्द्र हैल अदर्शन।
प्रेमे निम्बादित्य कत करिल रोदन॥५७॥

इतना कहकर श्रीगौरचन्द्र अन्तर्धान हो गये और श्रीनिम्बादित्य प्रेममें मत्त होकर क्रन्दन करने लगे॥५७॥

---

[१] जैसा कि हमारे पूर्वाचार्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी अपने श्रीविलापकुसुमाञ्जलि नामक ग्रन्थमें वर्णन करते हैं—

आशा भरैरमृतसिन्धुमयैः कथञ्चित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे
प्राणैर्व्रजेन च वरोरू वकारिणापि॥

हे वरोरू राधे! मेरी आशा अमृतसमुद्रको प्राप्त करनेकी भाँति अत्यन्त दुर्लभ है। मैं उसे प्राप्त करनेकी आशामें बड़ी उत्कण्ठापूर्वक अपने जीवनके दिन व्यतीत कर रहा हूँ। अब आप ही मुझ दुःखीपर कृपा करें। आपकी कृपाके बिना मेरा जीवन, मेरा व्रजवास और तो और कृष्णदास्य, यह सब कुछ व्यर्थ है।

कार्यसिद्धि हेतु, सर्वप्रथम श्रीगुरुपादपद्ममें प्रणाम—

गुरुपादपद्मे नमि' चले देशान्तर।
कृष्णभक्ति प्रचारिते हइया तत्पर॥५८॥

(श्रीमन् महाप्रभुके आदेशका भलीभाँति पालन करने हेतु) श्रीनिम्बादित्यने सर्वप्रथम अपने गुरुपादपद्मको प्रणाम किया और फिर कृष्णभक्तिका प्रचार करनेमें तत्पर होकर दूसरे स्थानपर चले गये॥५८॥

रुक्मपुर (रामतीर्थ)

दूर हैते रामतीर्थ जीवेरे देखाय।
कोलासुरे हलधर वधिल यथाय॥५९॥

करिलेन गङ्गास्नान ल'ये यदुगण।
रुक्मपुर बलि' नाम प्रकाश एखन॥६०॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने दूरसे ही श्रीजीवको रामतीर्थ नामक स्थानके दर्शन कराये, जहाँपर श्रीबलदेव प्रभुने कोल नामक असुरका वध करनेके उपरान्त सभी यादवोंके साथ गङ्गास्नान किया था। आजकल यह स्थान रुक्मपुरके नामसे प्रसिद्ध है॥५९-६०॥

नवद्वीप परिक्रमा ऐ एकशेष।
कार्त्तिक मासेते तथा माहात्म्य विशेष॥६१॥

यह स्थान भी श्रीनवद्वीप परिक्रमाकी एक सीमापर है। कार्त्तिक मासमें इस स्थानपर वास करनेका विशेष माहात्म्य है॥६१॥

भरद्वाजटीला

बिल्वपक्ष छाड़ि' प्रभु ल'ये भक्तगण।
भरद्वाजटिला–ग्रामे करे आरोहण॥६२॥

बिल्वपक्षसे श्रीनित्यानन्द प्रभु सभी भक्तोंके साथ भरद्वाजटीला नामक ग्राममें उपस्थित हुए॥६२॥

श्रीभरद्वाज मुनिका नवद्वीप आगमन—

नित्यानन्द बले,—''एइ स्थाने मुनिवर।
आइलेन देखि' तीर्थ श्रीगङ्गासागर॥६३॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा—एक बार श्रीगङ्गासागर नामक तीर्थके दर्शन करनेके उपरान्त श्रीभरद्वाज मुनि इस स्थानपर आये थे॥६३॥

श्रीभरद्वाज मुनि द्वारा श्रीगौरचन्द्रकी आराधना—

हेथा श्रीगौरचन्द्र करि' आराधन।
रहिलेन कतदिन मुनि महाजन॥६४॥

श्रीभरद्वाज मुनिने श्रीगौरचन्द्रकी आराधना करते हुए यहाँपर अनेक दिनों तक वास किया था॥६४॥

भक्तवशवर्ती भगवान् श्रीगौरहरि द्वारा मुनिको अपने दर्शन प्रदान—

ताँर आराधने तुष्ट ह'ये विश्वम्भर।
निज–रूपे देखा दिला सदय अन्तर॥६५॥

मुनिरे बलिल, तव इष्ट सिद्ध ह'बे।
आमार प्रकटकाले आमारे देखिबे॥"६६॥

उनकी आराधनासे सन्तुष्ट होकर श्रीविश्वम्भरने कृपापूर्वक उन्हें अपने रूपका दर्शन कराया और कहा—तुम्हारी जो इच्छा है, वह अवश्य पूर्ण होगी। मेरी प्रकटलीलाके समय तुम मेरे दर्शन प्राप्त करोगे॥६५–६६॥

एइ कथा बलि' प्रभु हैल अन्तर्द्धान।
भरद्वाज महाप्रेमे हइल अज्ञान॥६७॥

इतना कहकर श्रीमन् महाप्रभु अन्तर्धान हो गये और भरद्वाज मुनि अत्यधिक प्रेमके स्फुरित होनेसे मूर्च्छित हो गये॥६७॥

कतदिन थाकि' एइ टिलार उपर।
अन्यतीर्थ दरशने गेला मुनिवर॥६८॥

अनेक दिनों तक इस टीलेपर वास करनेके उपरान्त श्रीभरद्वाज मुनि दूसरे तीर्थोंके दर्शन करने चले गये॥६८॥

भारुइडाङ्गा, भरद्वाजटीलाका ही अपर नाम—

लोकेते भारुइडाङ्गा बले एइ स्थाने।
महातीर्थ हय एइ शास्त्रेर विधाने॥६९॥

अब लोग इस स्थानको भारुइडाङ्गा कहते हैं, शास्त्रोंके अनुसार यह एक महान तीर्थ है॥६९॥

श्रीधाम मायापुर प्रत्यागमन—

बलिते बलिते सबे जाय मायापुर।
आगुवाड़ि लय सबे ईशानठाकुर॥७०॥

ऐसा कहते-सुनते सभी ईशान ठाकुरके पीछे-पीछे चलते हुए मायापुर पहुँच गये॥७०॥

प्रेमदाता शिरोमणि श्रीनित्यानन्द प्रभुका नृत्य—

महाप्रेमे नित्यानन्द करेन नर्त्तन।
सकल वैष्णव मिलि' करेन कीर्त्तन॥७१॥

प्रेमसे विह्वल होकर श्रीनित्यानन्द प्रभु नृत्य कर रहे थे और सभी वैष्णव मिलकर कीर्त्तन कर रहे थे॥७१॥

योगपीठका माहात्म्य—

जगन्नाथ–मिश्रालय सर्व पीठसार।
नाम–सह यथा श्रीगौराङ्ग–अवतार॥७२॥

श्रीजगन्नाथ मिश्रका घर (योगपीठ) अन्यान्य सभी पीठोंका सारस्वरूप है, क्योंकि यहाँपर श्रीनाम प्रभुके साथ श्रीगौराङ्ग महाप्रभु आविर्भूत हुए हैं॥७२॥

सेइदिन प्रभु–गृहे प्रभुर जननी।
वैष्णवगणेरे अन्न खाओयान आपनि॥७३॥

उस दिन श्रीमन् महाप्रभुके घरपर श्रीशचीमाताने सभी वैष्णवोंको अपने हाथोंसे प्रसाद खिलाया॥७३॥

परिक्रमाके अन्तमें महासमारोह—

कि आनन्द हैल तथा ना हय वर्णन।
महासमारोहे हय नाम–सङ्कीर्त्तन॥७४॥

वहाँपर जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सब लोग महासमारोहके साथ नामसङ्कीर्त्तन करने लगे॥७४॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट–प्रार्थना—

निताइ–जाह्नवा–पदछाया जार आश।
ए भक्तिविनोद गाय नदीया–विलास॥७५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे भक्तिविनोद द्वारा नदियाकी लीलाओंका गान किया जा रहा है॥७५॥

षोडश अध्याय समाप्त।

श्रीवास–अङ्गन

सप्तदश अध्याय
श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजीव गोस्वामीके प्रश्न-उत्तर

मङ्गलाचरण—

जय जय गोराचाँद जय नित्यानन्द।
जयाद्वैत गदाधर प्रेम—रसानन्द॥१॥

श्रीगौरचन्द्रकी जय हो! जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी जय हो। श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो। प्रेमरूपी रसके आनन्दकी जय हो॥१॥

प्रेमका भण्डार श्रीनामसङ्कीर्त्तन—

जय श्रीवासादि भक्त नवद्वीप जय।
जय नामसङ्कीर्त्तन प्रेमेर निलय॥२॥

श्रीवास आदि भक्तवृन्दकी जय हो। श्रीनवद्वीप-धामकी जय हो। प्रेमके भण्डार श्रीनामसङ्कीर्त्तनकी जय हो॥२॥

नित्य सङ्कीर्त्तन-स्थली श्रीवास-अङ्गनमें श्रीनित्यानन्द प्रभु—

बसियाछे नित्यानन्द श्रीवास-अङ्गने।
गौरप्रेमे वारिधारा बहे दु'नयने॥३॥

अगले दिन प्रातः श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवास-अङ्गनमें विराजमान थे और गौरप्रेममें विभोर होनेके कारण उनके दोनों नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा प्रवाहित हो रही थी॥३॥

चारिदिके वैष्णव-सज्जन अगणन।
गौरप्रेम-पारावारे मग्न सर्वजन॥४॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुको चारों ओरसे असंख्य वैष्णवों और सज्जन व्यक्तियोंने घेर रखा था तथा सभी श्रीगौरप्रेमरूपी समुद्रमें डूब रहे थे॥४॥

श्रीजीव गोस्वामीका श्रीवास-अङ्गनमें आगमन—

कतक्षणे श्रीजीव गोस्वामी महाशय।
श्रीयुगल-प्रेमे मत्त, हइल उदय॥५॥

उसी समय श्रीयुगलप्रेममें मत्त श्रीजीव गोस्वामी भी वहाँपर उपस्थित हुए॥५॥

लीलास्थलीका दर्शन करनेकी विधि—

दण्डवत्-प्रणमिया नित्यानन्द-पाय।
श्रीवास-अङ्गने तबे गड़ागड़ि जाय॥६॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम करके श्रीजीव श्रीवास-अङ्गनकी रजमें लोट-पोट होने लगे॥६॥

यतने श्रीनित्यानन्द जिज्ञासे वचन।
कतदिन परे जाबे तुमि वृन्दावन॥७॥

बहुत प्रयत्न करके (अपने भावका सम्वरण करके) श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीजीवसे पूछा कि तुम कितने दिन बाद वृन्दावन जाओगे॥७॥

शरणागत व्यक्तिके लिए प्रभु आज्ञा ही सर्वोपरि—

जीव बले,—प्रभु-आज्ञा सर्वोपरि हय।
आज्ञा पाइले करि' आमि वृन्दावनाश्रय॥८॥

श्रीजीवने कहा—प्रभुकी आज्ञा ही सर्वोपरि होती है। आपकी आज्ञा होनेपर मैं वृन्दावनके लिए प्रस्थान करूँगा॥८॥

श्रीजीव गोस्वामीका परिप्रश्न—

दुइ एक कथा मोर आछे जिज्ञासिते।
उत्तर दाओ हे प्रभु, ए दासेर हिते॥९॥

जानेसे पहले मैं आपसे एक-दो प्रश्न पूछना चाहता हूँ, हे प्रभो! कृपया उनका उत्तर प्रदानकर अपने इस दासका कल्याण कीजिये॥९॥

एइ नवद्वीपधाम हय वृन्दावन।
तबे केन वृन्दावन–गमने यतन॥"१०॥

यह श्रीनवद्वीपधाम तो श्रीवृन्दावनधाम ही है, फिर वृन्दावन जानेके लिए प्रयत्न ही क्यों किया जाय?॥१०॥

कृष्णतत्त्वविद् अखण्डगुरुतत्त्व श्रीनित्यानन्द प्रभुका उत्तर—

जीव–प्रश्न शुनि' प्रभु करेन उत्तर।
बड़ गुह्यकथा एइ शुन अतःपर॥११॥

श्रीजीवके प्रश्नको सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने उत्तर देते हुए कहा—यह बहुत गूढ़ बात है, इसलिए बड़े ध्यानसे सुनो॥११॥

प्रभुर प्रकट–लीला यतदिन रय।
देख जेन बहिर्मुख–जने ना जानय॥१२॥

देखो! किन्तु यह ध्यान रखना कि जब तक श्रीमन् महाप्रभुकी लीला प्रकट रहेगी, तब तक कोई भी बहिर्मुख व्यक्ति इसके बारेमें न जान पाये॥१२॥

श्रीनवद्वीप और श्रीवृन्दावनमें श्रेष्ठ और निम्नका कोई विचार नहीं—

नवद्वीप—वृन्दावन हय एक तत्त्व।
परस्पर किछु नाहि हीनत्त्व—महत्त्व॥१३॥

श्रीनवद्वीप और श्रीवृन्दावन एक ही तत्त्व हैं, उनमें श्रेष्ठ और निम्नका कोई विचार नहीं है॥१३॥

अनधिकारी व्यक्तिका व्रजरसमें प्रवेश असम्भव—

सेइ वृन्दावनधाम रसेर आधार।
से रस ना पाय जा'र नाहि अधिकार॥१४॥

यद्यपि श्रीवृन्दावनधाम रसका आधार है, तथापि जिसका अधिकार नहीं है, वह उस रसको प्राप्त नहीं कर सकता॥१४॥

श्रीवृन्दावनधामकी जीवोंपर कृपा—

कृपा करि' सेइ धाम नवद्वीप हय।
हेथा रस—अधिकार जीवे उपजय॥१५॥

इसलिए कृपा करके वही श्रीवृन्दावनधाम नवद्वीपके रूपमें जीवोंको रसास्वादन करनेका अधिकार प्रदान करता है॥१५॥

राधाकृष्ण–लीला हय सर्वरस–सार।
सहसा ताहाते नाहि हय अधिकार॥१६॥

श्रीराधाकृष्णकी लीला सभी रसोंका सार है, इसलिए उसमें सहसा किसीको अधिकार प्राप्त नहीं होता॥१६॥

कत जन्म तपस्या करिया हय ज्ञान।
ज्ञान परिपक्वे पाय रसेर सन्धान॥१७॥

बहुत जन्मों तक तपस्या करनेपर तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानके परिपक्व होनेपर रसके विषयमें जाननेकी इच्छा होती है॥१७॥

रसरूपी महाधनको प्राप्त करना सुदुर्लभ—

ताहाते व्याघात बहु आछे सर्वक्षण।
अतएव सुदुर्लभ रस महाधन॥१८॥

ऐसा होनेपर भी उसे प्राप्त करनेमें प्रतिक्षण अनेक प्रकारकी बाधाएँ हैं, इसलिए रसरूपी महाधनको प्राप्त करना बहुत कठिन है॥१८॥

अपराध, व्रजरस–प्राप्तिमें बाधा—

जेइ सेइ ब्रजे गिया नाहि पाय रस।
अपराध–वशे रस हय त' विरस॥१९॥

केवलमात्र व्रजमें जानेसे ही सभीको उस रसकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि अपराधके कारण रस विरस हो जाता है॥१९॥

घोर कलिकाले अपराध सर्वकाल।
जीवेर जीवन स्वल्प बड़इ जञ्जाल॥२०॥

इस घोर कलियुगमें जीव सब समय अपराधोंसे घिरा रहता है और उसपर भी थोड़े दिनोंके इस जीवनमें बहुत प्रकारके जञ्जाल हैं॥२०॥

इच्छा करनेपर भी व्रजरसकी प्राप्ति असम्भव—

इच्छा करिलेओ ब्रजरस लभ्य नय।
अतएव कृष्ण–कृपा रस हेतु हय॥२१॥

इच्छा करनेपर भी व्रजरसकी प्राप्ति सम्भवपर नहीं है। अतएव एकमात्र कृष्णकृपा ही रसकी प्राप्तिका कारण है॥२१॥

स्वयं श्रीराधाकृष्ण द्वारा जीवोंको व्रजरसका आस्वादन करानेकी इच्छा हेतु श्रीगौरहरिरूप धारण—

राधाकृष्ण कृपा करि' जीवेर उपर।
वृन्दावन–सह समुदित अतःपर॥२२॥

एक मूर्त्ति राधाकृष्ण प्रभु गौरहरि।
शचीगर्भे नवद्वीपे एबे अवतरि' ॥२३॥

इसीलिए जीवोंपर कृपा करनेके लिए श्रीराधा-कृष्ण श्रीवृन्दावनधाम सहित इस नवद्वीपमें अपने मिलित स्वरूप श्रीगौरहरिके रूपमें शचीमाताके गर्भसे आविर्भूत हुए हैं॥२२-२३॥

श्रीगौरहरि द्वारा प्रशस्त मार्गसे व्रजरसकी प्राप्ति सम्भवपर—

रस-अधिकार जीवे करेन प्रदान।
अपराध बाधा कभु नाहि पाय स्थान॥२४॥

श्रीगौरहरि जीवोंको रसमें अधिकार प्राप्त करनेका ऐसा मार्ग प्रशस्त करते हैं, जिसमें अपराध किसी प्रकारकी बाधा उत्पन्न नहीं कर पाते॥२४॥

व्रजरसमें अधिकार प्राप्त करनेका उपाय—

हेथा वास करि' नाम करिले आश्रय।
रसे अधिकार जन्मे, अपराध क्षय॥२५॥

नामका आश्रय करके श्रीनवद्वीपधाममें वास करनेसे रसमें अधिकार उत्पन्न होता है और सभी प्रकारके अपराध दूर हो जाते हैं॥२५॥

स्वल्पदिने कृष्णप्रेम हय त' उज्ज्वल।
युगल–रसेर वार्त्ता हय त' प्रबल॥२६॥

थोड़े ही दिनोंमें श्रीकृष्णप्रेम हृदयमें प्रकाशित होता है और साधकके हृदयमें श्रीराधाकृष्णके रसको जाननेकी प्रबल लालसा उत्पन्न हो जाती है॥२६॥

तबे जीव गौर–कृपा करिया अर्जन।
युगल–रसेर पीठ पाय वृन्दावन॥२७॥

इस प्रकार जीव श्रीगौरहरिकी कृपा प्राप्त करके युगलकिशोरके रस–पीठ (लीलास्थली) श्रीवृन्दावनको प्राप्त करता है॥२७॥

श्रीजीव गोस्वामीके प्रति श्रीनित्यानन्द प्रभुका आदेश—

गूढ़तत्त्व एइ, नाहि कह जा'रे ता'रे।
नवद्वीप–वृन्दावने भेद हैते नारे॥२८॥

यह बहुत ही गूढ़ तत्त्व है, इसलिए इस तत्त्वका जिस किसीको भी उपदेश मत देना। (अतएव यह स्पष्ट है कि) श्रीनवद्वीप और श्रीवृन्दावनमें कोई भेद हो ही नहीं सकता॥२८॥

प्रेमदाता शिरोमणि श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीव गोस्वामीको व्रजवास प्रदान—

तोमार आश्रय एबे रसपीठ हय।
अतएव वृन्दावन करह आश्रय॥२९॥
एइ धामे वृन्दावन हय त' उदय।
तबु ब्रजधाम तव हउक आश्रय॥३०॥

यद्यपि इसी नवद्वीपधाममें वृन्दावन प्रकाशित होते हैं, तथापि अब तुम श्रीराधाकृष्णकी लीलास्थली श्रीवृन्दावनका आश्रय करनेके अधिकारी हो, अतएव अब श्रीव्रजधाम ही तुम्हारा आश्रय हो॥२९-३०॥

व्रजरस-प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम नवद्वीपधामका आश्रय स्वीकार करना ही साधकका कर्त्तव्य—

ब्रजरस-अधिकारे नवद्वीपाश्रय।
जीवेर कर्त्तव्य सदा वल्लभ-तनय॥३१॥

हे वल्लभतनय! मनुष्यका कर्त्तव्य है कि व्रजरसमें अधिकार प्राप्त करनेके लिए पहले श्रीनवद्वीपधामका आश्रय ग्रहण करे॥३१॥

ब्रजरस प्राप्तस्थले वृन्दावन-वास।
जीवेर यथाय हय रसेर उल्लास॥३२॥

व्रजरस प्राप्त होनेपर श्रीवृन्दावनधाममें वास करना चाहिये, क्योंकि वहाँपर जीवोंको रसमें उल्लासकी प्राप्ति होती है॥३२॥

श्रीनवद्वीपधामकी कृपासे अनायास व्रजकी प्राप्ति—

नवद्वीप—कृपा जबे लभे साधुजन।
तबे अनायासे लभे धाम वृन्दावन॥३३॥

जब किसी सज्जन व्यक्तिको श्रीनवद्वीपधामकी कृपा प्राप्त होती है, तब उसे अनायास ही श्रीवृन्दावनधामकी प्राप्ति हो जाती है॥३३॥

प्रभुर सिद्धान्त शुनि' 'जीव' महाशय।
परम आनन्दे प्रभुर चरण धरय॥३४॥
चरण धरिया बले,—''कथा एक आर।
आछे मोर, शुन प्रभु सर्वसारात्सार॥३५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके मुखसे इन सब गूढ़ सिद्धान्तोंको सुनकर श्रीजीव गोस्वामीने परमानन्दपूर्वक उनके श्रीचरणकमलोंको धारण करके कहा—सार वस्तुओंके भी सारको जाननेवाले हे प्रभो! मेरा एक और प्रश्न है॥३४-३५॥

श्रीजीव गोस्वामीका प्रश्न—

एइ नवद्वीपे वास करे बहुजन।
सबे केन कृष्णभक्ति ना करे अर्जन॥३६॥

धामे बैसे, तबु केन अपराध रय।
आमार हइल एबे विषम संशय॥३७॥

यद्यपि इस श्रीनवद्वीपमें तो बहुत-से लोग वास करते हैं, तब भी सभी श्रीकृष्णकी भक्ति क्यों नहीं करते? मेरे मनमें एक दुर्बोध्य संशय उत्पन्न हुआ है कि धाममें (विशेषतः श्रीनवद्वीपमें) वास करनेपर भी उनमें अपराध कैसे रह सकते हैं?॥३६-३७॥

किसे तबे निश्चिन्त हइबे विष्णुजन।
बल प्रभु विश्वधाम नित्य निरञ्जन॥"३८॥

फिर विष्णुजन अर्थात् वैष्णवलोग कैसे निश्चिन्त होंवे? हे विश्वधाम! हे नित्य निरञ्जन! कृपया समाधान बताइये॥३८॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा-पदछाया आश जार।
से भक्तिविनोद कहे अकिञ्चन छार॥३९॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंकी सुशीतल छायाको प्राप्त करनेकी आशासे दीन-हीन अकिञ्चन भक्तिविनोद द्वारा श्रीनवद्वीपधामके माहात्म्यका गान किया जा रहा है॥३९॥

सप्तदश अध्याय समाप्त।

व्रज–विलास

अष्टादश अध्याय

मङ्गलाचरण—

जय जय श्रीगौराङ्ग शचीर नन्दन।
जय पद्मावतीसुत जाह्नवा–जीवन॥१॥

शचीनन्दन श्रीगौरहरिकी जय हो! जय हो। श्रीजाह्नवादेवीके जीवनस्वरूप पद्मावतीनन्दन श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो॥१॥

जय सीतापति जय जय गदाधर।
जय श्रीवासादि जत गौर–परिकर॥२॥

सीतापति श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो! श्रीगदाधर पण्डितकी जय हो! जय हो। श्रीवासादि गौर परिकरोंकी जय हो॥२॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीव गोस्वामीके (सप्तदश अध्यायके अन्तमें पूछे गये) प्रश्नका उत्तर—

शुनिया 'जीवेर' प्रश्न नित्यानन्दराय।
बलेन निगूढ़ तत्त्व वैष्णव–सभाय॥३॥

श्रीजीव गोस्वामीके प्रश्नको सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने वैष्णवसभामें निगूढ़ तत्त्वोंका उपदेश दिया॥३॥

जीवोंका विश्रामस्थल—

“शुन ‘जीव’! वृन्दावन नवद्वीपधाम।
अजस्र आनन्दमय जीवेर विश्राम॥४॥

हे जीव! सुनो। असीम आनन्दमय श्रीवृन्दावन और श्रीनवद्वीपधाम जीवोंका विश्रामस्थल है॥४॥

शुद्ध जीवगण जड़ा प्रकृतिर पार।
सदा वास करे हेथा कृष्ण–परिवार॥५॥

शुद्धजीव सदैव जड़ प्रकृतिके उसपार श्रीकृष्णके परिवारके रूपमें वास करते हैं॥५॥

धामका स्वरूप—

एइ धाम नित्यधाम विशुद्ध चिन्मय।
जड़ देशकाल हेथा पाय पराजय॥६॥

यह धाम नित्य, शुद्ध और चिन्मय है। यहाँपर जड़ीय देश कालका कोई प्रभाव नहीं है॥६॥

एइ धामेर देश काल चिदानन्दमय।
जड़धर्म–विपर्यय सदा लक्ष्य हय॥७॥

इस धाममें भूमि, काल और अन्यान्य सभी वस्तुएँ चिदानन्दमय हैं। यहाँपर सदैव चित्–धर्म देखा जाता है॥७॥

गृहद्वार, नद–नदी, कानन चत्वर।
चिन्मय सकल जान अति मनोहर॥८॥

यहाँके घर, नदी, झरने, वन, लीलाभूमि इत्यादि सभी चिन्मय और परम मनोहर हैं॥८॥

सेइ त' आनन्दधाम प्रकृतिर पार।
अचिन्त्य कृष्णेर शक्ति परम उदार॥९॥

यह आनन्दमयधाम प्रकृतिसे परे है। यहाँ श्रीकृष्णकी जो शक्ति कार्य करती है, वह अचिन्त्य और परम उदार है॥९॥

सेइ शक्तिक्रमे धाम हेथा अवतार।
जीवेर निस्तार जन्य कृष्ण–इच्छासार॥१०॥

जीवोंका उद्धार करनेकी श्रीकृष्णकी इच्छाको जानकर ही वह अचिन्त्यशक्ति उस धामको इस जगत्‌में प्रकाशित करती है॥१०॥

धाम—मध्ये कभु नहे जड़—अवस्थिति।
जड़बद्ध जीव नाहि पाय हेथा गति॥११॥

न तो धाममें कोई जड़ वस्तु ही रह सकती है और न ही कोई जड़बद्ध जीव धाममें प्रवेश कर सकता है॥११॥

धामेर उपरे जड़माया पाति' जाल।
आच्छादिया राखे एइ धाम चिरकाल॥१२॥

जड़माया अपने जालके द्वारा सब समय धामको ढककर रखती है॥१२॥

अभक्तोंका धामवास—

श्रीकृष्णचैतन्ये जा'र नाहिक सम्बन्ध।
जालेर उपरे वास करे सेइ अन्ध॥१३॥

जिसका श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है, वह (वास्तविक तत्त्वसे अनजान) अन्धा व्यक्ति माया द्वारा बिछाये गये जालके ऊपर ही वास करता है॥१३॥

मने भावे आमि आछि नवद्वीपपुरे।
प्रौढ़ामाया मुग्ध करि' राखे ता'रे दूरे॥१४॥

यद्यपि वह मन-ही-मन चिन्ता करता है कि मैं श्रीनवद्वीपधाममें वास कर रहा हूँ, किन्तु वास्तवमें प्रौढ़ामाया उसे मुग्ध करके धामसे दूर रखती है॥१४॥

एकमात्र साधुसङ्गसे ही सम्बन्धज्ञानकी उपलब्धि सम्भवपर—

यदि कोन भाग्योदये साधु-सङ्ग पाय।
तबे कृष्णचैतन्य-सम्बन्ध आसे ताय॥१५॥

यदि किसी सौभाग्यसे ऐसे व्यक्तिको साधुसङ्गकी प्राप्ति होती है, तब उसे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके साथ अपने सम्बन्धकी उपलब्धि होती है॥१५॥

सम्बन्ध निगूढ़-तत्त्व वल्लभ-नन्दन।
सहजे ना बुझे बद्धजीव सेइ धन॥१६॥

हे वल्लभनन्दन! सम्बन्धज्ञान एक अति गूढ़ तत्त्व है। बद्धजीव इस सम्बन्धरूपी परम धनको सहज ही नहीं समझ सकते॥१६॥

कपटी व्यक्तिका गौरनाम उच्चारण—

मुखे बले श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु मोर।
हृदय सम्बन्धहीन सदा माया-भोर॥१७॥

यद्यपि अनेकों लोग मुख–ही–मुखसे तो कहते हैं कि श्रीकृष्णचैतन्य ही मेरे प्रभु हैं, तथापि उनका हृदय सम्बन्धज्ञानकी गन्धसे शून्य, सदैव मायामें विभोर रहता है॥१७॥

धर्मध्वजी, कपटीका विचार—

सेइ सब लोक बैसे मायाजालोपरि।
कभु शुद्धभक्ति नाहि पाय हरि हरि॥१८॥
धर्मध्वजी सुकपटी सदा दैन्यहीन।
दम्भगुणे आपनाके भावे समीचीन॥१९॥

यद्यपि ऐसे लोग मायाके जालपर बैठे रहनेके कारण कभी भी भगवान् श्रीहरिकी शुद्धभक्तिको प्राप्त नहीं कर पाते तथापि धर्मध्वजी (जो व्यक्ति वास्तवमें तो धार्मिक नहीं है, किन्तु लोगोंकी वञ्चना करने हेतु वेशभूषा और कथोपकथन द्वारा अपने आपको धार्मिक कहकर प्रचार करता है।), पाखण्डी, कपटी, दैन्यसे रहित केवल अहङ्कारके कारण अपने आपको श्रेष्ठ समझता है॥१८–१९॥

वैष्णवोंके चार स्वाभाविक लक्षण—

सेइ दम्भ छाड़े साधु–चरण–प्रसादे।
तृण हैते आपनाके दीन करि' साधे॥२०॥

वृक्षापेक्षा हय ता'र सहिष्णुता–गुण।
अमानी आपनि अन्ये सम्माने निपुण॥२१॥

एकमात्र साधुओंकी कृपासे ऐसा व्यक्ति भी अहङ्कारको त्यागकर अपने आपको तृणसे अधिक दीन–हीन मानने लगता है, वह वृक्षकी अपेक्षा और अधिक सहिष्णु बन जाता है। अपने सम्मानकी बिल्कुल भी आशा नहीं करता तथा दूसरोंको सम्मान देनेमें बहुत निपुण हो जाता है॥२०–२१॥

एइ चारि गुणे गुणी कृष्णगुण गाय।
चैतन्य–सम्बन्ध—ता'र बसेन हियाय॥२२॥

जब वह इन चारों गुणोंमें गुणी होकर सदैव श्रीकृष्णका गुणगान गाता है, तब कहीं जाकर उसके हृदयमें श्रीचैतन्य महाप्रभुसे उसका जो नित्य सम्बन्ध है, स्फुरित होता है॥२२॥

पाँच प्रकारके रस—

श्रीकृष्ण–सम्बन्ध—शान्त, दास्य, सख्य आर।
वात्सल्य, मधुर इति पञ्च–परकार॥२३॥

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकारके रसों द्वारा जीवोंका श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध होता है॥२३॥

शान्त–दास्य भावे करि' गौराङ्ग–भजन।
लभे वात्सल्यादि रस कृष्णे साधुजन॥२४॥

शान्त और दास्यभावसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करनेसे साधुओंको श्रीकृष्णके प्रति वात्सल्य आदि रसोंकी प्राप्ति होती है॥२४॥

जीवका स्वरूप

जा'र जेइ सम्बन्ध–जनित सिद्ध–भाव।
ताहार भजने सेइ भावेर प्रभाव॥२५॥

जिस जीवका भगवान्‌के साथ जैसा नित्य सिद्ध सम्बन्ध है, भजनके प्रभावसे वही भाव उसके हृदयमें स्फुरित होता है॥२५॥

श्रीगौर और श्रीकृष्णमें भेदबुद्धि करनेवालेकी गति—

गौर–कृष्णे भेद जा'र सेइ जीव छार।
श्रीकृष्ण–सम्बन्ध कभु ना हय ताहार॥२६॥

श्रीगौरहरि और श्रीकृष्णमें भेद देखनेवाले दुष्ट जीवोंको कभी भी श्रीकृष्ण–सम्बन्धकी प्राप्ति नहीं होती है॥२६॥

साधुसङ्गे दैन्य आदि गुण जा'र हय।
सेइ जीव दास्यरसे गौराङ्ग भजय॥२७॥

किन्तु साधुसङ्गके फलस्वरूप जिसमें दीनता आदि गुण स्फुरित होते हैं, वही जीव दास्यरससे श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका भजन करता है॥२७॥

श्रीगौरहरिको महाप्रभु कहकर पुकारनेका कारण—

दास्यरस–पराकाष्ठा गौराङ्ग–भजने।
महाप्रभु श्रीगौराङ्ग बले साधुजने॥२८॥

श्रीगौराङ्ग–भजनमें दास्यरसकी ही पराकाष्ठा है। इस दास्यरसकी प्रमुखताके कारण ही भक्त श्रीगौराङ्गको महाप्रभु कहकर पुकारते हैं॥२८॥

मधुर–प्रेमेते जा'र हय अधिकार।
राधाकृष्ण–रूपे गौर–भजन ताहार॥२९॥

मधुरप्रेममें जिसका अधिकार होता है, वह श्रीगौरहरिका श्रीराधाकृष्णके रूपमें भजन करता है॥२९॥

युगलविलास हेतु श्रीगौराङ्ग महाप्रभु द्वारा दो रूप धारण—

राधाकृष्ण ऐक्य मोर श्रीगौराङ्ग राय।
युगल–विलासे ऐक्ये स्वतः नाहि भाय॥३०॥

श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलित स्वरूप श्रीगौराङ्ग महाप्रभु हैं। युगलविलासमें श्रीराधा और श्रीकृष्णका

ऐक्य स्वाभाविक रूपसे अच्छा नहीं लगता अर्थात् युगलविलास हेतु ही श्रीगौराङ्ग महाप्रभु दो रूप धारण करते हैं॥३०॥

दास्यभावके परिपक्व होनेपर ही मधुररसका उदय—

दास्य परिपक्वे जबे जीवेर हृदये।
श्रीमधुर-रस उदे मूर्त्तिमान ह'ये॥३१॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका दास्यभावसे भजन करते-करते जब दास्यभाव परिपक्व हो जाता है, तब जीवके हृदयमें श्रीमधुररस मूर्त्तिमान स्वरूपमें प्रकाशित होता है॥३१॥

से-समये भजनीय तत्त्व गौरहरि।
राधाकृष्ण-रूप ह'ये ब्रजे अवतरि॥३२॥
नित्यलीलारसे सेइ भक्तके डुबाय।
राधाकृष्ण-नित्यलीला ब्रजधाम पाय॥३३॥

उस समय भजनीय तत्त्व श्रीगौरहरि श्रीराधाकृष्णके रूपमें व्रजमें अवतरित होते हैं और भक्तको नित्यलीलाके रसमें डुबो देते हैं। तब जीव श्रीराधाकृष्णकी नित्यलीला भूमि व्रजको प्राप्त करता है॥३२-३३॥

व्रज और नवद्वीपका निगूढ़ सम्बन्ध—

नवद्वीपे ब्रजे जेइ निगूढ़ सम्बन्ध।
एक ह'ये दुइ हय नाहि देखे अन्ध॥३४॥

परमार्थके विषयमें अन्धे व्यक्ति नवद्वीप और व्रजमें जो निगूढ़ सम्बन्ध है अर्थात् वे एक होनेपर भी दो रूपोंमें कैसे प्रकाशित हैं, नहीं देख पाते॥३४॥

श्रीगौरहरि ही मधुररसमें श्रीराधाकृष्ण—

सेइ त' सम्बन्ध गौरे–कृष्णे जान सार।
मधुर रसेते गौर युगल–आकार॥३५॥

हे जीव! श्रीकृष्ण और श्रीगौरमें भी वैसा ही सम्बन्ध है (अर्थात् वे एक होकर भी दो रूपोंमें प्रकाशित हैं)। श्रीगौरहरि ही मधुररसमें युगलकिशोर श्रीराधाकृष्णके रूपमें आविर्भूत होते हैं॥३५॥

एइसब तत्त्व तो'रे रूप–सनातन।
जानाइबे अल्पदिने वल्लभ–नन्दन॥३६॥

हे वल्लभनन्दन! थोड़े ही दिनोंमें तुम्हें श्रीरूप और श्रीसनातन इन सभी तत्त्वोंके विषयमें बतलायेंगे॥३६॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीवको शीघ्र वृन्दावन जानेका आदेश प्रदान—

तो'रे वृन्दावने प्रभु दिल अधिकार।
विलम्ब ना कर 'जीव', ब्रजे जेते आर॥३७॥

श्रीमन् महाप्रभुने तुम्हें श्रीधामवृन्दावनमें रहनेका अधिकार प्रदान किया है। इसलिए हे जीव! तुम व्रज जानेमें और अधिक विलम्ब मत करो॥३७॥

प्रेमदाता शिरोमणि श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीजीवके हृदयमें शक्ति-सञ्चार—

एत बलि' प्रभु तार मस्तके चरण।
अर्पण करिया शक्ति करे सञ्चारण॥३८॥

इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनके मस्तकपर अपने चरणकमल अर्पण करके शक्ति सञ्चारित की॥३८॥

महाप्रेमे श्रीजीव गोस्वामी कतक्षण।
नित्यानन्द-पदतले रहे अचेतन॥३९॥

महाप्रेममें मत्त होकर श्रीजीव गोस्वामी बहुत देर तक मूर्च्छित होकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें पड़े रहे॥३९॥

श्रीवास-अङ्गने 'जीव' गड़ागड़ि जाय।
सात्त्विक विकार सब देहे शोभा पाय॥४०॥

चेतनता प्राप्त करनेपर श्रीजीव श्रीवास-अङ्गनकी रजमें लोट-पोट होने लगे। उनकी देहमें सात्त्विक विकार शोभा पाने लगे॥४०॥

श्रीजीव गोस्वामीका विषाद—

काँदिया काँदिया बले,—"दुर्भाग्य आमार।
ना देखिनु ए नयने नदीया-विहार॥४१॥

श्रीजीव क्रन्दन करते हुए कहने लगे कि मैं अपने ही दुर्भाग्यके कारण अपने इन नेत्रोंसे श्रीमन् महाप्रभु द्वारा नदियामें किये गये विहारका दर्शन नहीं कर पाया॥४१॥

जीव निस्तारिते लीला कैल गौरराय।
से-लीला ना देखि' मोर दिन वृथा जाय॥"४२॥

जगत्के जीवोंका उद्धार करनेके लिए ही श्रीगौरहरिने लीला की थी। किन्तु उन लीलाओंके दर्शन नहीं कर पानेके कारण मेरे दिन व्यर्थ ही बीत रहे हैं॥४२॥

श्रीजीवके वृन्दावन जानेका समाचार—

श्रीजीव जाइबे ब्रजे करिया श्रवण।
श्रीवास—अङ्गने आइल जत साधुजन॥४३॥

श्रीजीव व्रज जायेंगे, ऐसा सुनकर बहुत—से सज्जन व्यक्ति साधु—महात्मा श्रीवास—अङ्गनमें उपस्थित हुए॥४३॥

वृद्ध—सब श्रीजीवे करेन आशीर्वाद।
कनिष्ठ वैष्णव मागे श्रीजीव—प्रसाद॥४४॥

वृद्ध वैष्णव श्रीजीवको आशीर्वाद देने लगे और जो (वैष्णव) श्रीजीवसे आयुमें कम थे, वे उनसे कृपारूपी प्रसाद माँगने लगे॥४४॥

श्रीजीव गोस्वामी द्वारा दयाके सागर वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें प्रार्थना—

कर जुड़ि बले' 'जीव' सकल वैष्णवे।
''मम अपराध किछुमात्र नाहि ल'बे॥४५॥

हाथ जोड़कर श्रीजीव सभी वैष्णवोंसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे—कृपया आपलोग मेरा कोई अपराध ग्रहण नहीं करना॥४५॥

श्रीचैतन्यदेवके दास ही जगत्के गुरु तथा वाञ्छाकल्पतरु—

तोमरा चैतन्य–दास जगतेर गुरु।
ए क्षुद्र जीवेरे दया कर कल्पतरु॥४६॥
श्रीकृष्णचैतन्ये मोर थाक् रति–मति।
नित्यानन्द प्रभु ह'क् जन्मे जन्मे गति॥४७॥

आप सभी लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुके दास और जगत्के गुरु हैं। हे वाञ्छाकल्पतरु (सब प्रकारकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले वैष्णव)! इस क्षुद्र जीवके प्रति ऐसी दया करें जिससे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके प्रति मेरी रति–मति हो और श्रीनित्यानन्द प्रभु जन्म–जन्मान्तरमें मेरे प्रभु हों॥४६–४७॥

श्रीजीव गोस्वामीकी दैन्यपूर्ण उक्ति—

नाहि बुझि बाल्यकाले छाड़िलाम घर।
तुमि सब जीवनेर बन्धु अतःपर॥४८॥

मैंने बाल्यकालमें ही घर–बार त्याग कर दिया है। मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ, अब आपलोग ही मेरे एकमात्र बन्धु हैं॥४८॥

वैष्णवानुकम्पा बिना कृष्ण नाहि पाइ।
वैष्णव–चरणधूलि देह सबे भाइ॥"४९॥

वैष्णवोंकी कृपाके बिना श्रीकृष्णकी प्राप्ति सम्भवपर नहीं है, इसलिए हे भाईयो! आप सभी मुझे अपने चरणोंकी रज प्रदान कीजिये॥४९॥

श्रीजीवका योगपीठ प्रस्थान—

एत बलि' सकले करिया स्तुति–नति।
नित्यानन्द प्रभुर लइया अनुमति॥५०॥
जगन्नाथगृहे गिया शचीर चरणे।
ब्रजे जाइते आज्ञा लय विकलित–मने॥५१॥

इतना कहकर श्रीजीवने सबके चरणोंमें प्रणाम करते हुए स्तुति की और श्रीनित्यानन्द प्रभुकी अनुमतिसे श्रीजगन्नाथ मिश्रके घर जाकर माता श्रीशचीदेवीके चरणकमलोंमें गिरकर व्याकुल हृदयसे व्रज जानेकी आज्ञा माँगी॥५०–५१॥

माता शची द्वारा श्रीजीवको आशीर्वाद—

श्रीचरणरेणु दिया शचीदेवी ताय।
आशीर्वाद करि' 'जीवे' करिल विदाय॥५२॥

श्रीशचीदेवीने अपने श्रीचरणोंकी रज देकर श्रीजीवको आशीर्वाद प्रदान करते हुए विदा किया॥५२॥

श्रीजीव द्वारा गङ्गा पार करना—

काँदिते काँदिते 'जीव' भागीरथी पार।
'हा गौराङ्ग' बलि' जाय, आज्ञा जानि' सार॥५३॥

प्रभुकी आज्ञाको ही सर्वस्व मानकर श्रीजीवने "हा गौराङ्ग! हा गौराङ्ग!" कहते हुए क्रन्दन करते-करते भगवती-भागीरथीको पार किया॥५३॥

कतक्षण चलि' चलि' नवद्वीप-सीमा।
पार ह'ये जाय 'जीव' अनन्त-महिमा॥५४॥

कुछ देर तक चलनेके उपरान्त श्रीजीव गोस्वामीने अनन्त महिमाशाली श्रीनवद्वीपकी सीमाको पार किया॥५४॥

श्रीजीव द्वारा नवद्वीपधामको प्रणाम तथा वृन्दावनकी ओर प्रस्थान—

नवद्वीपधाम छाड़ि, श्रीजीव तखन।
साष्टाङ्ग प्रणमि' चले यथा वृन्दावन॥५५॥

श्रीजीव ने वहींसे ही श्रीनवद्वीपधामको साष्टाङ्ग प्रणामकर श्रीवृन्दावनकी ओर प्रस्थान किया॥५५॥

ब्रजधाम, श्रीयमुना, रूप-सनातन।
जागिते लागिल हृदे जीवेर तखन॥५६॥

उस समय श्रीजीवके हृदयमें व्रजधाम, श्रीयमुना और श्रीरूप-सनातन स्फुरित होने लगे॥५६॥

स्वप्नयोग द्वारा मार्गमें श्रीगौरहरिके दर्शन—

पथिमध्ये रात्रे स्वप्न देखे गौरराय।
जीवेरे बलेन,—"तुमि जाओ मथुराय॥५७॥

मार्गमें रात्रिके समय उन्होंने स्वप्नमें श्रीगौरहरिके दर्शन किये, जो उनसे कह रहे थे कि तुम मथुरा जाओ॥५७॥

श्रीमन् महाप्रभुका आदेश—

अति प्रिय तुमि आर रूप-सनातन।
एकत्रे करह भक्तिशास्त्र-प्रकटन॥५८॥

तुम और रूप-सनातन मुझे बहुत प्रिय हो। तुम सब मिलकर भक्तिशास्त्रोंको प्रकाशित करो॥५८॥

श्रीजीवके प्रति श्रीमन् महाप्रभुका आशीर्वाद—

आमार युगल-सेवा तोमार जीवन।
श्रीब्रजविलास सदा करह दर्शन॥"५९॥

मेरी श्रीराधाकृष्णके रूपमें युगल-सेवा ही तुम्हारा जीवन हो और तुमलोग सदैव व्रजकी लीलाओंके दर्शन करो॥५९॥

स्वप्न देखि जीवेर आनन्द हैल अति।
ब्रजधाम–प्रति धाय सुसत्वर गति॥६०॥

स्वप्न देखकर श्रीजीव परमानन्दित हुए और व्रजधामकी ओर द्रुतगतिसे चलने लगे॥६०॥

ब्रजे गिया श्रीजीव गोस्वामी महाशय।
जे जे–कार्य साधिल ता वर्णन ना हय॥६१॥

व्रजमें जाकर श्रीजीव गोस्वामिपादने जो–जो कार्य किये, उनका वर्णन करना सम्भवपर नहीं है॥६१॥

भाग्यवान् जन परे करिबे वर्णन।
शुनिबे आनन्दचित्ते जत साधुजन॥६२॥

बादमें सौभाग्यशाली व्यक्ति उनका वर्णन करेंगे और सभी साधुव्यक्ति आनन्दित होकर उनका श्रवण करेंगे॥६२॥

ग्रन्थकार द्वारा दैन्य–प्रकाश—

छारबुद्धि ए भक्तिविनोद अभाजन।
श्रीधाम–भ्रमणवार्त्ता करिल वर्णन॥६३॥

भगवत्-कृपापात्र नहीं होनेपर भी अधम बुद्धियुक्त भक्तिविनोदने श्रीधाम परिक्रमाके विषयमें वर्णन किया है॥६३॥

ग्रन्थकारकी वैष्णवोंके चरणकमलोंमें प्रार्थना—

वैष्णव-चरणे मोर एइ से प्रार्थना।
श्रीगौर-सम्बन्ध मोर हउक योजना॥६४॥

वैष्णवोंके चरणोंमें मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है कि वे मुझपर ऐसी कृपा करें, जिससे श्रीगौरहरिके साथ मेरा सम्बन्ध जुड़ जाये॥६४॥

ग्रन्थकारकी अभिलाषा—

श्रीगौर-सम्बन्धसह नवद्वीप वास।
हउक अचिरे मोर एइ अभिलाष॥६५॥

अतिशीघ्र श्रीगौरहरिके साथ सम्बन्धयुक्त होकर मैं नवद्वीपमें वास करूँ, यही मेरी एकमात्र अभिलाषा है॥६५॥

वैष्णवोचित स्वाभाविक दीनता—

विषयगर्त्तेर कीट अति दुराचार।
भक्तिहीन कामरत क्रोधे मत्त आर॥६६॥

ए हेन दुर्जन आमि मायार किङ्कर।
श्रीगौर–सम्बन्ध किसे पाइ अतःपर॥६७॥

वैष्णवोंकी कृपाके बिना विषयरूपी गड्ढेमें पड़ा हुआ कीट, दुराचारी, भक्तिहीन, काममें रत, क्रोधमें मत्त और मायाका दास मेरे जैसा व्यक्ति किस प्रकार श्रीगौरहरिसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता है?॥६६–६७॥

श्रीनवद्वीपधामके प्रति ग्रन्थकारकी प्रार्थना—

नवद्वीपधाम मोरे अनुग्रह करि'।
उदित हउन हृदे तबे आमि तरि॥६८॥

यदि श्रीनवद्वीपधाम मेरे प्रति अनुग्रह प्रकाशित करके मेरे हृदयमें उदित हों, तभी मेरा उद्धार हो सकता है॥६८॥

ग्रन्थकारकी प्रौढ़ामायाके प्रति निष्ठा—

प्रौढ़ामाया कुलदेवी–कृपा अकपट।
भरसा तरिते मात्र अविद्या–सङ्कट॥६९॥

मुझे विश्वास है कि कुलदेवी प्रौढ़ामायाकी अकपट कृपा ही इस अविद्यारूपी सङ्कटसे मेरा उद्धार कर सकती है॥६९॥

ग्रन्थकार द्वारा वृद्धशिवके श्रीचरणोंमें प्रार्थना—

वृद्धशिव क्षेत्रपाल हउन सदय।
चिद्धाम आमार चक्षे हउन उदय॥७०॥

क्षेत्रपाल वृद्धशिव मुझपर दया करें, ताकि चिन्मयधाम मेरे दृष्टिगोचर हो सके॥७०॥

ग्रन्थकार द्वारा धामवासियोंके श्रीचरणोंमें प्रार्थना—

नवद्वीप वासी जत गौरभक्तगण।
ए पामर–शिरे सबे दाओ श्रीचरण॥७१॥

हे नवद्वीपवासी गौरभक्तो! मुझ पामरके सिरपर अपने श्रीचरणकमल समर्पण कीजिये॥७१॥

एइ त' प्रार्थना मोर शुन सर्वजन।
अचिरेते जेन पाइ चैतन्य–चरण॥७२॥

आप सभी मेरी इस प्रार्थनाको सुनिये ताकि मैं शीघ्र ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंको प्राप्त कर सकूँ॥७२॥

ग्रन्थकार द्वारा गूढ़ रहस्यका उद्‌घाटन—

नित्यानन्द–श्रीजाह्नवा–आदेश पाइया।
वर्णिलाम नवद्वीप अति दीन हइया॥७३॥

दीन–हीन होनेपर भी मैंने श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके आदेशसे ही श्रीनवद्वीपधामका वर्णन किया है॥७३॥

'श्रीनवद्वीपधाम–माहात्म्य' ग्रन्थकी विशेषता—

नवद्वीप गौर–नित्यानन्द नाममय।
एइ ग्रन्थ विरचित हइल निश्चय॥७४॥

अतएव एइ ग्रन्थ परम पावन।
रचना–दोषेते दोषी नहे कदाचन॥७५॥

यह ग्रन्थ श्रीनवद्वीप और श्रीगौर–नित्यानन्द प्रभुके नामोंसे भरा हुआ है, इसलिए यह निश्चित है कि यह ग्रन्थ परम पवित्र है और रचनाके दोषसे कदापि दोषी नहीं है॥७४–७५॥

ग्रन्थकारका अनुरोध—

एइ ग्रन्थ पाठ करि' गौरभक्तजन।
परिक्रमा–फल सदा करुन अर्जन॥७६॥

इस ग्रन्थको पाठ करके गौरभक्त परिक्रमाके वास्तविक फलको अर्जन करें॥७६॥

'श्रीनवद्वीपधाम–माहात्म्य' ग्रन्थकी फलश्रुति—

परिक्रमाकाले ग्रन्थ कैले आलोचन।
शतगुण फल हय शास्त्रेर वचन॥७७॥

परिक्रमा करते समय जो इस ग्रन्थकी आलोचना करता है, उसे परिक्रमा करनेका सौ गुणा अधिक फल प्राप्त होता है, यही शास्त्रोंकी वाणी है॥७७॥

ग्रन्थकारकी सेवारूप अभीष्ट-प्रार्थना—

निताइ-जाह्नवा-पदछाया आश जार।
नदीया-माहात्म्य गाय दीनहीन छार॥७८॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके श्रीचरण-कमलोंकी सुशीतल छाया प्राप्तिकी आशासे दीन-हीन-अधम भक्तिविनोद द्वारा श्रीनदियाके माहात्म्यका गान किया गया है॥७८॥

अष्टादश अध्याय समाप्त।

श्रीनगर-कीर्त्तन

बड़ सुखेर खबर गाई।
सुरभि–कुञ्जेते नामेर हाट खुलेछे खोद–निताइ॥
बड़ मजार कथा ताइ।
श्रद्धा मूल्ये शुद्धनाम सेइ हाटेते बिकाय॥
जत भक्तवृन्द बसि।
अधिकारी देखे' नाम बेचछे दर कषि॥
यदि नाम किनबे भाई।
आमार सङ्गे चल महाजनेर काछे जाई॥
तुमि किनबे कृष्णनाम।
दस्तुरि लइब आमि, पूर्ण ह'बे काम॥
बड़ दयाल नित्यानन्द।
श्रद्धामात्र लये देन परम आनन्द॥
एकबार देखले चक्षे जल।
गौर बले निताइ देन सकल सम्बल॥
देन शुद्ध कृष्ण–शिक्षा।
जाति, धन, विद्याबल ना करे अपेक्षा॥
अमनि छाड़े मायाजाल।
गृहे थाके, वने थाके, ना थाके जञ्जाल॥

आर नाइको कलिर भय।
आचण्ड़ाले देन नाम निताइ दयामय॥
भकतिविनोद डाकि' कय।
निताइचाँदेर चरण बिना आर नाहि आश्रय॥

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी सभीको आह्वान करते हुए कह रहे हैं कि मैं बड़े सुखका समाचार सभीको सुना रहा हूँ कि स्वयं श्रीनित्यानन्द प्रभुने सुरभीकुञ्जमें नामका बाजार खोल दिया है। उससे भी अधिक आनन्दकी बात यह है कि वे केवलमात्र श्रद्धारूपी मूल्यको लेकर नामको बेच रहे हैं। जितने भी भक्तवृन्द आते हैं, उनमेंसे वे अधिकारी देखकर दाम बढ़ाते हुए नाम बेच रहे हैं। हे भाई! यदि नाम खरीदनेकी इच्छा है, तो मेरे साथ चलो, तुम्हें महाजनके पास ले जाऊँ। यदि तुम कृष्णनाम खरीदना चाहते हो, तो मैं उसमें दस्तुरी (commission) लूँगा, जिससे मेरी अभिलाषा भी पूर्ण हो जायेगी अर्थात् मेरा भी उद्धार हो जायेगा। श्रीनित्यानन्द प्रभु बड़े दयालु हैं, केवल श्रद्धा लेकर ही परम आनन्दमय प्रेमको प्रदान करते हैं। यदि वे किसीकी आँखोंसे एक

बार भी अश्रु बहते हुए देख लेते हैं, तो गौर कहकर सम्पूर्ण प्रेमधन उसे प्रदान कर देते हैं। वे जाति, धन, विद्याका बल, पौरुष इत्यादिकी अपेक्षा नहीं करके शुद्ध रूपसे कृष्ण-विषयक शिक्षा प्रदान करते हैं, जिससे मायारूपी जाल भी दूर चला जाता है। फिर कोई घरमें रहे अथवा वनमें रहे उसे किसी प्रकारकी कोई असुविधा नहीं होती, यहाँ तक कि कलिका भी कोई भय नहीं रहता। जो श्रीनित्यानन्द प्रभु आचण्डाल अर्थात् चण्डाल सहित सभीको नाम प्रदान करके उनका उद्धार करते हैं, ऐसे दयामय श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरण बिना मेरा दूसरा कोई आश्रय नहीं है।

उच्छ्वास-दैन्यमयी-प्रार्थना

भवार्णवे पड़े मोर आकुल पराण।
किसे कूल पा'व, ता'र ना पाई सन्धान॥

ना आछे करम-बल, नाहि ज्ञान-बल।
याग-योग तपोधर्म—ना आछे सम्बल॥

नितान्त दुर्बल आमि, ना जानि साँतार।
ए विपदे के आमारे करिबे उद्धार??

विषय–कुम्भीर ताहे भीषण–दर्शन।
कामेर तरङ्ग सदा करे उत्तेजन॥

प्राक्तन वायुर वेग सहिते ना पारि।
कान्दिया अस्थिर मन, ना देखि काण्डारी॥

ओगो श्रीजाह्नवा देवी! ए दासे करुणा।
कर आजि निजगुणे, घुचाओ यन्त्रणा॥

तोमार चरण–तरी करिया आश्रय।
भवार्णव पा'र हब क'रेछि निश्चय॥

तुमि नित्यानन्द–शक्ति कृष्णभक्ति–गुरु।
ए दासे करह दान पदकल्पतरु॥

कत कत पामरेरे क'रेछ उद्धार।
तोमार चरणे आज ए काङ्गाल छार॥

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

इस संसारसमुद्रमें पड़कर मेरे प्राण छटपटा रहे हैं, मुझे कैसे किनारा मिलेगा, इसका भी मुझे ज्ञान नहीं है। मुझमें कर्मका बल नहीं है और न ही ज्ञानका। याग, योग, तप आदिमेंसे भी कोई मेरा सम्बल नहीं है अर्थात् इनमेंसे कोई भी मेरे

काम नहीं आ सकता। मैं अत्यधिक दुर्बल हूँ और तैरना भी नहीं जानता हूँ। इस अवस्थासे मेरा कौन उद्धार करेगा? इस समुद्रमें विषय-वासनारूप बड़े भयानक मगरमच्छ हैं और कामवासनारूपी लहरियाँ सर्वदा उत्तेजित करती हैं। पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्म तेज वायुके समान हैं, जिनको सहन करना अत्यधिक कठिन है। मैं किसी भी उद्धार-कर्त्ताको न देखकर रो-रोकर बेहाल हो रहा हूँ। हे श्रीजाह्नवादेवी! इस दीन सेवकके प्रति अपने गुणोंसे इतनी करुणा करें कि जिससे मेरी सम्पूर्ण यन्त्रणा मिट जाए। मैंने ऐसा निश्चय किया है कि आपकी चरणरूपी नौकाका आश्रयकर इस समुद्रको पार करूँ। आप श्रीनित्यानन्द प्रभुकी शक्ति हैं और कृष्णभक्तिकी गुरु हैं, अतः इस दीन दासको अपने चरण-कल्पवृक्षकी छाया प्रदान करें। आपने अनेक पामरोंका उद्धार किया है, आज आपके श्रीचरणोंमें यह कङ्गाल भी यही प्रार्थना करता है।

नगर भ्रमिया आमार गौर

नगर भ्रमिया आमार गौर ऐलो घरे।
गौर ऐलो घरे आमार निताइ ऐलो घरे॥

पापी तापी उद्धार दिया गौर ऐलो घरे।
पापी तापीउद्धार दिया निताइ ऐलो घरे॥

नाम–प्रेम बिलाइया गौर ऐलो घरे।
नाम–प्रेम बिलाइया निताइ ऐलो घरे॥

धूल झड़ी शचीमाता गौर कोले करे।
धूल झड़ी पद्मावती निताइ कोले करे॥

नगर—श्रीनवद्वीपधाम, तापी—दुःखी, आमार—मेरे, ऐलो—लौट आये, बिलाइया—वितरण करके, झड़ी—झाड़कर, कोले—गोदमें

नित्यानन्द-श्रीजाह्नवा-आदेश पाइया।
वर्णिलाम नवद्वीप अति दीन हइया॥

दीन-हीन होनेपर भी मैंने श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीजाह्नवादेवीके आदेशसे ही श्रीनवद्वीपधामका वर्णन किया है।

परिक्रमाकाले ग्रन्थ कैले आलोचन।
शतगुण फल हय शास्त्रेर वचन॥

परिक्रमा करते समय जो इस ग्रन्थकी आलोचना करता है, उसे परिक्रमा करनेका सौ गुणा अधिक फल प्राप्त होता है, यही शास्त्रोंकी वाणी है।

श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य १८/७३, ७७